M.A. Political Science (Previous) (DDE)

Semester – II

Paper Code – 20POL22C7

INDIAN GOVERNMENT & POLITICS - II

भारतीय सरकार और राजनीति - II

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr. Mamta Devi*

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price :

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

Semester – II

Syllabi – Book Maping Table

इकाई संग्रह	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
ईकाई–1	भारतीय संघवाद	8–50
	संघवाद : प्रकृति एवं कार्यपद्धति,	10–22
	राज्य स्वायत्ता की मांग तथा पृथकतावादी आन्दोलन	23–34
	केन्द्र–राज्य सम्बन्ध	35–50
ईकाई–2	भारतीय न्यायपालिका	51–84
	सर्वोच्च न्यायालय	53–62
	उच्च न्यायालय	62–66
	न्यायिक पुनर्निरीक्षण	66–71
	न्यायिक सक्रियता	71–75
	जनहित एवं न्यायिक सुधार	75–81
ईकाई–3	भारत में दलीय व्यवस्था का स्वरूप व कार्यप्रणाली	85–170
	राजनैतिक दल	87–126
	दबाव समूह	129–148
	जनमत,	151–154
	मीडिया	157–160
	किसान आन्दोलन	163–168
ईकाई–4	भारतीय राजनीति एवं चुनौतियाँ	171–273
	राजनीति और जाति	173–182
	वर्णन राजनीति,	186–189
	महिलाओं की स्थिति एवं विकास,	192–200
	दलित मुद्दे	203–211
	क्षेत्रीयवाद	214–227
	राष्ट्र निर्माण की समस्या एवं राष्ट्रीयएकीकरण	231–254
	पंचायती राज	257–271

Semester - II

विषय सूची

इकाई संग्रह	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
ईकाई–1	भारतीय संघवाद	8–50
1.0	ईकाई परिचय	8
1.1	ईकाई उद्देश्य	8–9
1.2	संघवाद : प्रकृति एवं कार्यपद्धति	10–20
1.2.1	परिचय	10
1.2.2	उद्देश्य	10
1.2.3	संघवाद का स्वरूप	11–19
1.2.4	निष्कर्ष	19
1.2.5	मुख्य शब्दावली	19–20
1.2.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	20
1.2.7	सन्दर्भ सूची	20–22
1.3	राज्य स्वायत्ता की मांग तथा पृथकतावादी आन्दोलन	23–31
1.3.1	परिचय	23
1.3.2	उद्देश्य	24
1.3.3	राज्यों की स्वायत्ता का अर्थ	24–31
1.3.4	निष्कर्ष	31–32
1.3.5	मुख्य शब्दावली	32
1.3.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	32–33
1.3.7	सन्दर्भ सूची	33–34
1.4	केन्द्र–राज्य सम्बन्ध	35–47
1.4.1	परिचय	35

1.4.2	उद्देश्य	35–36
1.4.3	केन्द्र–राज्य सम्बन्ध	36–47
1.4.4	निष्कर्ष	47–48
1.4.5	मुख्य शब्दावली	48
1.4.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	48–49
1.4.7	सन्दर्भ सूची	49–50
ईकाई–2	भारत की न्याय व्यवस्था	51–84
2.0	ईकाई परिचय	51
2.1	ईकाई उद्देश्य	51
2.2	भारत की न्याय व्यवस्था (सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, न्यायिक पुनर्निरीक्षण, न्यायिक सक्रियता, जनहित याचिका एवं न्यायिक सुधार)	52–81
2.2.1	परिचय	52–53
2.2.2	उद्देश्य	53
2.2.3	सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं सम्बन्धित विशेष शक्तियाँ	53–81
2.2.4	निष्कर्ष	81
2.2.5	मुख्य शब्दावली	81–82
2.2.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	82
2.2.7	सन्दर्भ सूची	82–84
ईकाई–3	भारत में दलीय व्यवस्था का स्वरूप व कार्यप्रणाली	85–170
3.0	ईकाई परिचय	85–86
3.1	ईकाई उद्देश्य	86
3.2	भारतीय राजनीतिक दल	87–125
3.2.1	परिचय	87

3.2.2	उद्देश्य	87
3.2.3	भारतीय राजनीतिक दलों का विकास	87–125
3.2.4	निष्कर्ष	125
3.2.5	मुख्य शब्दावली	125
3.2.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	126
3.2.7	सन्दर्भ सूची	126–128
3.3	भारतीय राजनीति में दबाव समूह	129–147
3.3.1	परिचय	129
3.3.2	उद्देश्य	129
3.3.3	दबाव समूह अर्थ एवं परिभाषा	129–147
3.3.4	निष्कर्ष	147–148
3.3.5	मुख्य शब्दावली	148
3.3.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	148
3.3.7	सन्दर्भ सूची	148–150
3.4	जनमत	151–154
3.4.1	परिचय	151–152
3.4.2	उद्देश्य	152
3.4.3	जनमत का महत्त्व	152–154
3.4.4	निष्कर्ष	154
3.4.5	मुख्य शब्दावली	154
3.4.6	अभ्यास हेतु प्रश्न	154–155
3.4.7	सन्दर्भ सूची	155–156
3.5	मीडिया	157–160
3.5.1	परिचय	157
3.5.2	उद्देश्य	157

3.5.3	मीडिया का महत्त्व	157–160
3.5.4	निष्कर्ष	160
3.5.5	मुख्य शब्दावली	160
3.5.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	160
3.5.7	सन्दर्भ सूची	160–162
3.6	किसान आन्दोलन	163–167
3.6.1	परिचय	163–164
3.6.2	उद्देश्य	164
3.6.3	विभिन्न किसान आन्दोलन	164–167
3.6.4	निष्कर्ष	167–168
3.6.5	मुख्य शब्दावली	168
3.6.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	168
3.6.7	सन्दर्भ सूची	168–170
ईकाई–4	भारतीय राजनीति और चुनौतियाँ	171–273
4.0	ईकाई परिचय	171
4.1	ईकाई उद्देश्य	171–172
4.2	जाति और भारतीय राजनीति	173–182
4.2.1	परिचय	173
4.2.2	उद्देश्य	173
4.2.3	जाति का परम्परागत अर्थ एवं स्वरूप	173–182
4.2.4	निष्कर्ष	182
4.2.5	मुख्य शब्दावली	182–183
4.2.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	183
4.2.7	सन्दर्भ सूची	183–185
4.3	वर्ग राजनीति	186–189

4.3.1	परिचय	186
4.3.2	उद्देश्य	186
4.3.3	भारत में वर्ग राजनीति का स्वरूप	186–189
4.3.4	निष्कर्ष	188
4.3.5	मुख्य शब्दावली	188–189
4.3.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	189
4.3.7	सन्दर्भ सूची	189–191
4.4	महिलाओं की स्थिति और विकास	192–200
4.4.1	परिचय	192
4.4.2	उद्देश्य	192
4.4.3	महिलाओं की स्थिति	192–200
4.4.4	निष्कर्ष	199–200
4.4.5	मुख्य शब्दावली	200
4.4.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	200
4.4.7	सन्दर्भ सूची	200–202
4.5	दलित	203–211
4.5.1	परिचय	203–204
4.5.2	उद्देश्य	204
4.5.3	दलित मुद्दे एवं आरक्षण का प्रावधान	205–211
4.5.4	निष्कर्ष	210
4.5.5	मुख्य शब्दावली	210–211
4.5.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	211
4.5.7	सन्दर्भ सूची	211–213
4.6	क्षेत्रीयवाद	214–227
4.6.1	परिचय	214

4.6.2	उद्देश्य	214–215
4.6.3	क्षेत्रवाद के कारण	215–227
4.6.4	निष्कर्ष	227
4.6.5	मुख्य शब्दावली	227
4.6.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	227–228
4.6.7	सन्दर्भ सूची	228–230
4.7	राष्ट्र–निर्माण की समस्या एवं राष्ट्रीय एकीकरण	231–254
4.7.1	परिचय	231
4.7.2	उद्देश्य	231
4.7.3	राष्ट्र–निर्माण व राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या	231–254
4.7.4	निष्कर्ष	253–254
4.7.5	मुख्य शब्दावली	254
4.7.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	254
4.7.7	सन्दर्भ सूची	254–256
4.8	पंचायती राज	257–271
4.8.1	परिचय	257–258
4.8.2	उद्देश्य	258
4.8.3	संविधान तथा पंचायती राज	258–271
4.8.4	निष्कर्ष	271
4.8.5	मुख्य शब्दावली	271
4.8.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	271–272
4.8.7	सन्दर्भ सूची	272––273

समैस्टर – 2

ईकाई – 1

भारतीय संघवाद

1.0 ईकाई परिचय

भारतीय संविधान निर्माताओं के सामने मुख्य प्रश्न था कि संविधान का स्वरूप एकात्मक हो या संघात्मक। लेकिन संविधान निर्माताओं ने अपनी सूझबूझ के आधार पर बीच का मार्ग चुना अर्थात् आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन करके संविधान को बनाया। भारतीय संविधान सिद्धान्त में तो संघात्मक है लेकिन व्यवहार में उसका झुकाव एकात्मकता की ओर है।

भारतीय संविधान का स्वरूप आज भी संविधान विशेषज्ञों के मध्य विवाद का विषय बना हुआ है। संविधान के अंगीकृत हो जाने के बाद भी यह विवाद समाप्त नहीं हुआ। हमारे संविधान–निर्माताओं का ध्येय कोई मौलिक संविधान बनाना नहीं था अपितु वे तो एक 'कामचलाऊ' और 'व्यवहारिक' संविधान बनाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने प्रचलित संघीय संविधानों से केवल ऐसे तत्त्वों को लिया जिन्हें उन्होंने उपयोगी समझा। भारतीय संविधान के व्यवहारिक रूप में एकात्मकता की तरफ झुकाव होने से केन्द्र व राज्यों के मध्य भी लगातार तनाव बना रहता है। राज्य जहां अधिक स्वायत्ता की मांग करते है तो केन्द्र उनकी मांगों को अनसुना कर देता है। राज्य व केन्द्र में विरोधी सरकार होने पर केन्द्र सरकार राज्यों पर अपनी स्वेच्छाचारी शक्तियों का उपयोग करती रही है। जिससे दोनों के मध्य विवाद पैदा होते हैं।

1.1 उद्देश्य

- सरकारों के संघीय व एकात्मक स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन
- भारत के संघीय स्वरूप का आलोचनात्मक मूल्यांकन
- भारतीय संविधान के एकात्मकता की तरफ झुकाव के कारण जानना

- क्या पिछले 70 वर्षों में भारतीय संघवाद का स्वरूप बदलता रहा है या नहीं इन बदलावों के पीछे क्या कारण है
- केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का मूल्यांकन

1.2 संघवाद : प्रकृति तथा कार्यपद्धति
(Federalism : Nature and Working)

1.2.1 परिचय

भारतीय संविधान निर्माता भारत के लिए एक संघीय राज्य की व्यवस्था चाहते थे। लेकिन वे इस बात से भी सहमत थे कि प्रत्येक इकाई सरकार को अपने विकास का पूर्ण अवसर मिलें। अतः उनका विचार था कि भारत एक ऐसा संघात्मक शासन होना चाहिए जिसमें केन्द्र शक्तिशाली हो।

यद्यपि हमारा संविधान संघ राज्य की स्थापना करता है फिर भी 'संघ' शब्द के स्थान पर 'यूनियन' शब्द का प्रयोग किया गया है। डॉ० बी०आर० अम्बेडकर ने संविधान का प्रारूप संविधान सभा में प्रस्तुत करते हुए भारतीय गणराज्य को केवल संघात्मक राज्य की ही संज्ञा नहीं दी परन्तु कहा कि इसमें दो प्रकार की सरकारें होगी जिन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त क्षेत्र में सार्वभौम शक्तियां प्राप्त होगी। उन्होंने अमरीका तथा भारतीय संघ कि तुलना करते हुए कहा था कि अमरीका में केन्द्र तथा राज्यों के बीच ढीलाढाला सम्बन्ध है जबकि भारत एक ऐसा संघ है जिसमें कोई भी राज्य अलग नहीं हो सकता और जिसके अन्तर्गत उन्हें कार्य करना ही हैं।

1.2.2 उद्देश्य

- संघवाद क्या है ये जानना
- भारत में संघीय व्यवस्था का स्वरूप कैसा है
- संघीय व्यवस्था व एकात्मक व्यवस्था में क्या अन्तर है
- क्या भारत एक पूर्ण संघवादी राज्य है
- क्या भारत एक एकात्मक स्वरूप वाला राज्य है

1.2.3 संघवाद का स्वरूप

भारतीय संघ कि प्रकृति को भिन्न–भिन्न प्रकार से वर्णित किया गया है। के०सी० व्हीपर भारतीय संघ को अर्ध–संघ (Quasi-Federation) कहा है। सर आईवर जैंनिगज ने कहा है कि ऐसा संघ राज्य नहीं जिसमें एकात्मक लक्षण सहायक लक्षण के रूप में दिए गए हो। यह तो एकात्मक राज्य है जिसमें संघात्मक लक्षण सहायक लक्षण के रूप में दिए गए है। यह तो ऐसा संघवाद है जिसमें मजबूत केन्द्रियकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है। के० सन्थानम ने भारत के संघ को एक सूडों फेडंरेशन (Pseudo Federations) तथा एक सार्वभौम संघ (Paramovent Federation) कहा है। प्रो० सी०एच० ऐलक्जेण्ड्रोविच (C.H. Allexandrowich) ने इसको ऐसा संघवाद कहा है जिसमें प्रभुता लम्बवत् विभिन्न है। के०पी० मुखर्जी ने तो यहाँ तक कहा है कि भारत एक संघात्मक राज्य है ही नहीं। डी०सी० बनर्जी का विचार है कि भारतीय संविधान का ढांचा संघीय है, किन्तु उसका झुकाव एकात्मकता की ओर है। डी०डी० बसु का विचार है कि ''भारत का संविधान न तो पूर्णरूप से एकात्मक है और न ही पूर्णरूप से संघात्मक, बल्कि दोनों का सम्मिश्रण है।'' नारमन डी० पामर के अनुसार, ''भारतीय गणतन्त्र एक संघ है तथा उसकी अपनी विशेषताएँ है जिन्होंने संघीय स्वरूप को अपने ढंग से ढाला है।'' प्रो० पायली के विचार है कि ''भारत के संविधान का ढांचा संघात्मक है, किन्तु उसकी आत्मा एकात्मक है।'' डॉ० सुभाष कश्यप का विचार है कि संविधान दोहरे शासनतंत्र की स्थापना करता है। सरकारों की दो श्रेणियां हैं, संघ की सरकार और अवयवी राज्यों की सरकारें संविधान ने संघ सरकार और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का वितरण किया है। ... संघवाद के इन लक्षणों के बावजूद भारतीय संविधान का प्रयत्न एकात्मकता का है।

ग्रेनविल ऑस्टिन (Granville Austin) ने कहा है कि भारत की संविधान सभा वह पहली सभा थी जिसने शुरू में ही सरकारी संघवाद की धारणा को अपनाया। आस्टिन के अनुसार प्रान्तिय सरकार बहुत हद तक केन्द्रिय नीतियों के लिए प्रशासनीय एजेन्सियाँ हैं। उन्होंने ए०च० बिर्च (A.H. Birch) को उद्धृत किया है। जिन्होंने सहकारी संघवाद की परिभाषा दी है जो इस प्रकार है : सामान्य तथा क्षेत्रिय सरकारों

में प्रशासकीय सहयोग कि प्रथा, क्षेत्रिय सरकारों का सामान्य सरकार पर अदायगी के लिए अशतः निर्भरता और यह तथ्य कि सामान्य सरकारें शर्त वाले अनुदानों के प्रयोग से प्राय उन विषयों के विकास को बढ़ाती हैं जो संवैधानिक तौर से क्षेत्रों को सौंपे गए हैं – सहकारी संघवाद कहलाता है।

ऑस्टिन का विचार है कि ए०एच० बिर्च कि सरकारी संघवाद कि उपरालिखित परिभाषा भारत के लिए उचित प्रतीत होती है। हम भारतीय संघ कि प्रकृति के लिए इस परिभाषा से सहमत है लेकिन हमारे विचार में केन्द्र व प्रांतीय सरकारों में केवल प्रशासनिक सहयोग ही नहीं अपितु राजनीतिक सहयोग भी पाया जाता है।

प्रो० मैरिस जान्स का कहना है कि भारत में जो संघवाद है वह सौदेबाजी वाले संघवाद की धारणा का उदाहरण है। वे कहते है कि भारत में संघवाद 'सहकारी संघवाद' का रूप है जिसमें कि कड़ी प्रतियोगिता वाली सौदेबाजी शामिल है। उनके शब्दों में यहीं वास्तव में हमेशा से भारतीय संघवाद का स्वरूप रहा है। वे कहते है कि संविधान में अधिक महत्व सीमांकन पर दिया गया है जबकि वास्तविकता में सहकारी सौदेबाजी के सम्बन्ध पाए जाते है। अपने विचारों के समर्थन में वे कानून प्रक्रिया का उदाहरण देते है। वे कहते है कि राज्य विधानमण्डलों द्वारा बिल के पास होने पर उसको राज्यपाल कि स्वीकृति के लिए भेजा जाता है जोकि बिल पर स्वीकृति देने से इन्कार कर सकता है, पुर्नविचार के लिए भेज सकता है अथवा राष्ट्रपति की सलाह के लिए सुरक्षित रख सकता है, विशेषकर ऐसे बिल जो सम्पत्ति के अर्जन के उद्देश्य से होते है उनको तो अवश्य ही राष्ट्रपति की सलाह के लिए सुरक्षित रखता है। अभी समय के तौर पर राज्य अपने बिलों को पहले ही केन्द्र के पास भेज कर उनका परीक्षण एवं आलोचना जान लेती है ताकि जब सुरक्षित प्रक्रिया को अपनाया जाए तो वह केवल औपचारिक ही रहे। राज्य समवर्ती सूची से सम्बन्धित अधिकांश बिलों को इसी प्रकार केन्द्र के पास पहले ही भेजकर राय प्राप्त कर लेता है।

सहकारी सौदेबाजी का वे दूसरा उदाहरण प्रान्तीय सरकारों और केन्द्र के वित्तीय सम्बन्धों से देते है। उनका कहना है कि भारतीय संविधान में एक स्वतंत्र वित्त आयोग कि स्थापना कि गई है जोकि प्रत्येक पांच वर्ष के लिए कार्य करता है। यही

आयोग करों के वितरण तथा केन्द्र से अनुदान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। लेकिन संविधान के अन्तर्गत अनुच्छेद 282 के मचिंग अनुदान (Matching Grants) के कारण वित्त आयोग का महत्व घट गया है। ये अनुदानें संघीय नियोजन वित्त में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अनुच्छेद 282 के अन्तर्गत इन मंचिग अनुदानों की प्राप्ति के लिए केन्द्रिय सरकार एवं प्रान्तिय सरकारों में कड़ी प्रतियोगिता वाली सौदेबाजी जारी रहती है। मैंरिस जोन्स का कहना है कि यह भारत में सौदेबाजी वाले संघवाद के स्वरूप के वर्णन का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। वास्तव में भारतीय संघवाद में दो विभिन्न प्रवृतियों केन्द्र से हट जाने वाली (Centrifugal) एवं केन्द्र की ओर जाने वाली (Contripetal) शक्तियों में समन्वय पाया जाता हैं भारतीय संघवाद के स्वरूप का संविधान की धाराओं से ही पता नहीं लगता परन्तु इन विभिन्न एवं संघर्षरत शक्तियों से भी स्पष्ट होता है। संघवाद केवल केन्द्र और इकाइयों में मुख्यतः शक्तियों के विभाजन की प्रक्रिया ही नहीं है। लेकिन इन शक्तियों का विभाजन राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक शक्तियों तथा प्रवृतियों और अन्तिम रूप से वित्तीय विचारधारा से प्रभावित होता है, अगर यह निर्धारित नहीं होता तो।

कुछ आलोचकों का कहना हैं कि भारत में अत्याधिक केन्द्रियकरण का भय है। यहां पर यह बता देना आवश्यक है कि केन्द्रियकरण की प्रवृति केवल भारत में ही नहीं पाया जाती परन्तु वास्तव में विश्व के सभी संघात्मक सरकारों में संघीय शक्तियों में वृद्धि हुई है। इन आलोचकों के विपरीत दूसरे आलोचकों का कहना है कि अन्य संघीय देशों की तुलना में भारतीय संघवाद में केन्द्रिय सरकार के पास कम शक्तियां है और उनका कहना है कि केन्द्रिय सरकार को ओर अधिक शक्तियां देने कि आवश्यकता है। इनका कहना है कि सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए एवं आर्थिक दृष्टि से अविकसित देश के लिए तो इसकी महता और भी बढ़ जाती है। यह विचार पाल एवलबी (Paul Apple by) का प्रस्तुत किया हुआ है। जिन्होंने भारतीय प्रशासन का विस्तार के साथ अध्ययन किया।

भारतीय संघवाद की प्रमुख विशेषताएं (Salient Features of India Federalism)

जो हमारा सहकारी संघवाद है उसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है। इन विशेषताओं से यह भी स्पष्ट हो जाता हैं कि भारत का संघवाद एक ऐसा है। जिसमें केन्द्र सरकार को स्पष्टतौर पर शक्तिशाली माना गया है। संविधान में ही ऐसी व्यवस्था है कि केन्द्र शक्तिशाली हो –

1. परम्परागत तौर पर ऐसा विश्वास किया जाता रहा है कि किसी भी संघीय सरकार में निम्नलिखित तीन प्रमुख विशेषताएं आवश्यक हैं। ये प्रो० ए०बी० डायसी की धारण पर आधारित है –

- संविधान की सर्वोच्चता हो,
- संघ तथा इकाईयों में शक्तियों का विभाजन हो।
- एक उच्चतम न्यायालय हो जो संविधान की व्याख्या कर सके और उस व्याख्या का अन्तिम माना जाए ये तीनों विशेषताएं भारतीय संविधान में पायी जाती है।

2. विश्व के अन्य संविधानों में, स्वतंत्र राज्यों को एक सामान्य केन्द्रीय सरकार में शामिल करने के लिए संघवाद को अपनाया गया। अतः नयी संघात्मक सरकार पर बल के साथ–साथ इकाई राज्यों की स्वतंत्रता बनाये रखने पर भी बल दिया गया। इस उद्देश्य के लिए इन संघवादों के संविधानों में बहुत सी धाराओं को शामिल किया गया। इसके विपरीत भारत में जिस प्रकार संघात्मक सरकार का निर्माण हुआ, ऐतिहासिक दृष्टि से उसकी प्रक्रिया भिन्न है। 1935 के अधिनियम से पहले ब्रिटिश भारत में स्वायत प्रान्त नहीं थे बल्कि यहां पर एकात्मक शासन प्रणाली थी। जब भारत में संघवाद को लागू किया गया तो इसका उद्देश्य ब्रिटिश भारत को बहुत से स्वायत प्रान्तों में बटना था।
3. भारतीय संविधान के अन्तर्गत अनुच्छेद 3 में यह दिया गया है कि बिना संविधान संशोधन कि प्रक्रिया अपनाए प्रत्येक राज्य के क्षेत्रिय अधिकार को बदला जा सकता है।
4. संविधान में एकल नागरिकता (Single citizen ship) को दिया गया है।

5. एकल जुड़ी हुई न्यायिक प्रणाली है (Single Integrated Judicial System)
6. संघ एवं राज्यों के लिए एकल संविधान है। (Single Constitution)
7. राज्यों के राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते है। वे राष्ट्रपति की इच्छापर्यन्त पद पर बने रहते है।
8. उच्च न्याायलयों की नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।
9. भारत के (The Comptroller and Auditors Geneal of India) कि नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती हैं, उसका पद राज्यों और संघ सरकारों के हिसाब की जांच करना है।
10. चुनाव आयोग राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है।
11. राष्ट्रपति संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों कि नियुक्ति करता हैं।
12. कुछ एक विधेयक राज्य विधानमण्डलों से पास होने के बाद राष्ट्रपति को स्वीकृति के लिए रखे जाते है। केवल राष्ट्रपति को स्वीकृति के बाद ही ऐसा विधेयक कानून बन सकते है।
13. संसद के उपरी सदन के प्रतिनिधित्व में समानता के सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया है। प्रत्येक राज्य जनसंख्या को आधार माना है।
14. विश्व के सभी संघात्मक संविधानों में से भारतीय संविधान कम कठोर है तथा यह कुछ लचीला भी है।

व्यवहार में भारतीय संघवाद (Indian Federalism in Working)

भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के साथ संघवाद के स्वरूप में भी परिवर्तन आता रहा है। भारत की संघ व्यवस्था को राजनीतिक तत्त्वों के बदलते परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित चार प्रकार से चित्रित किया जा सकता है –

1. केन्द्रीकृत संघवाद का युग
2. सहयोगी संघवाद का युग
3. एकात्मक संघवाद का युग
4. सौदेबाजी वाली संघ व्यवस्था

1. **केन्द्रीकृत संघवाद का युग :** सन् 1950 से 1967 तक 'केन्द्रीकृत संघवाद का युग' कहा जा सकता है। सन् 1950 से 1964 तक का भारतीय राजनीति युग 'नेहरू युग' कहलाता है। इस युग में केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध मधुर बने रहे और उनमें उग्र मतभेद उभरकर सामने नहीं आए। इस कारण व्यवहार में कुछ ऐसे राजनीतिक तथ्य उभरे जिन्होंने भारत में केन्द्रीकरण की प्रवृति को पनपने में मदद दी। केन्द्र में नेहरू, पटेल जैसे नेता मौजूद थे। केन्द्र तथा राज्यों में कांग्रेस को एकछत्र शासन था, अतः मतभेदों को दल के संगठन स्तर पर ही हल कर लिया जाता था। नेहरू के व्यक्तित्व तथा नेतृत्व–शांति का कोई राज्य विरोध करने तथा कोई नेता मतभेद उत्पन्न करने का साहस नहीं करता था। योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् संघ तथा राज्यों के बीच तालमेल हेतु 'सुपर केबिनेट' के रूप में कार्य कर रही थी और एक दल की प्रधानता के कारण इसके कार्यो को चुनौती नहीं दी जा सकती थी। इस काल में केन्द्रीकरण की सशक्त प्रवृतियों के परिणामस्वरूप भारतीय संघवाद राजनीतिक समन्वय और आर्थिक विकास के दोहरे उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बना।

2. **सहयोगी संघवाद का युग :** सतिलवाड के अनुसार, चतुर्थ आम चुनाव (1967) के पश्चात् शक्ति का सन्तुलन राज्यों की ओर झुका। कांग्रेस का एकछत्र शासन समाप्त हुआ, केन्द्र में नेहरू जैसा व्यक्तित्व नहीं रहा और राष्ट्रीय विकास परिषद् में अनेक दलों के मुख्यमंत्री अपनी केन्द्र विरोधी आवाज बुलन्द करने लगे। राज्यों में नेहरू के बाद मुख्यमंत्री शक्ति के केन्द्र बन गए और वे केन्द्र को प्रभावित करने लगे। कांग्रेस दल में विभाजन के (1969) पश्चात् लोकसभा में शासक दल अल्पमत में आ गया जिससे केन्द्रीय नेतृत्व को राज्यों की मांगो के आगे झुकना पड़ा।

   1967 के चुनावों के पश्चात संघ व राज्यों के पारम्पारिक संवैधानिक सम्बन्धों के विषय में मतभेद काफी उग्र रूप से उत्पन्न हुए। अधिकतर राज्यों में गैर–कांग्रेसी दलों की सरकारें बनी। ये सरकारें संघ सरकार के नियन्त्रण में उस सीमा तक नहीं रहना चाहती थी। जिस सीमा तक कांग्रेस दल की प्रादेशिक

सरकारें पहले रहती थी। प्रत्येक राज्य चाहता था कि केन्द्र द्वारा प्रस्तावित औद्योगिक संस्थानों को उसी के क्षेत्र में स्थापित किया जाए। भाषा के प्रश्न को लेकर संघर्ष उत्पन्न हुआ। केन्द्रीय रिर्जव पुलिस को लेकर मतभेद उत्पन्न हुए और राज्यपालों की नियुक्ति का प्रश्न भी विवाद का कारण बन गया।

केन्द्र और राज्यों के बीच विवादों के उपरान्त भी सहयोग बना रहा और 'सहयोगी संघवाद' के युग का सूत्रपात हुआ। सहयोगी संघवाद का प्रमुख लक्षण केन्द्र और राज्यों की सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता है। इस व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार शक्तिशाली तो होती है, किंतु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्र में कमजोर नहीं होती। चौथे आम चुनाव के बाद प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को मद्रास के श्री अन्नादुराई, उड़ीसा के आ०एन० सिंहदेव, उत्तर प्रदेश के चरण सिंह तथा पंजाब के गुमनाम सिंह जैसे गैर–कांग्रेसी मुख्यमन्त्रियों का विश्वास प्राप्त करने में सफलता मिली। यहां तक कि अक्सर ये मुख्यमंत्री अपनी कठिनाइयों में तथा अपने साझीदारों में मतभेद पैदा होने पर उनसे सलाह लेते थे।

3. **एकात्मक संघवाद का युग** : सन् 1971 के पांचवें लोकसभा के चुनाव तथा 1972 के राज्य विधानमण्डलों के चुनावों और जनवरी 1980 के लोकसभा एवं बाद के विधानसभा चुनावों से दो तथा उभरे प्रथम भारतीय राजनीति में श्रीमती गांधी और संजय गांधी ही सर्वमान्य नेता है तथा द्वितीय कांग्रेस दल ही जनता का नेतृत्व कर सकता है। इससे शक्ति का सन्तुलन केन्द्र की ओर झुक गया जिस द्रुतगति से संविधान में संशोधन किए गए उससे तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि भारत एकात्मकता की ओर उन्मुख हो रहा है। जून 1975 से मार्च 1977 तक तो भारतीय राज्य एकात्मक राज्य में परिवर्तित कर दिया गया था। समूची शक्तियां केन्द्रीय सरकार के हाथों में आ गई। राज्यों के मुख्यमंत्रियों की स्थिति केन्द्रीय सरकार केहाथों में आ गई। राज्यों के मुख्यमंत्रियों की स्थिति केन्द्रीय सरकार के सूबेदार जैसी हो गई। आपातकाल के दौरान मुख्यमन्त्रियों का एक पैर अपने राज्य में रहता था तथा दूसरा दिल्ली में 1 जनवरी 1980 के लोकसभा

चुनावों के बाद केन्द्रीय सरकार ने नौ राज्यों की गैर–कांग्रेसी विधान सभाओं को भंग कर दिया। ऐसा लगने लगा कि देश पुनः एक दल प्रधान व्यवस्था की ओर उन्मुख हो रहा है।

4. **सौदेबाजी वाली संघ व्यवस्था :** छठे आम चुनावों के परिणामों से भारतीय राजनीति में आमूलचूल परिवर्तन आया। केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई और राज्यों में विविध दलों की सरकारों की स्थापना हुई। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, दिल्ली, राजस्थान, हरियाणा व हिमाचल प्रदेश में जनता पार्टी सत्ता में आई। पंजाब में जनता व अकाली दल, पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी दल, तमिलनाडु व पाण्डिचेरी में अन्नाद्रमुक, कश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस, केरल में साम्यवादी दल के नेतृत्व वाला मोर्चा, कर्नाटक और आन्ध्रप्रदेश में कांग्रेसी सरकारें पदासीन थी। केन्द्र की जनता सरकार एक दुर्बल सरकार थी क्योंकि यह विभिन्न घटकों से बनी एक मिली–जुली सरकार के समतुल्य थी। अतः राज्यों की सरकारों ने सौदेबाजी करने का अनवरत यत्न किया। यहां तक कि शांतिमय गैर–जनता राज्य सरकारों ने 'राज्य–स्वायत्तता' का नारा बुलन्द किया। वित्तीय स्त्रोतों के वितरण को लेकर पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी सरकार ने सदैव केन्द्रीय सरकार से दबाव एवं सौदेबाजी की भाषा में बातचीत करने का प्रयत्न किया।

1989–1999 के चुनावों से यह इंगित होता है कि भारत में संघ व्यवस्था का 'सौदेबाजी वाला प्रतिमान' ही कार्यरत था। विश्वनाथ प्रतापसिंह (1989), चन्द्रशेखर (1990), पी०वी० नरसिंहराव (1991), श्री एच०डी० देवगौड़ा (1996) तथा श्री इन्द्रकुमार गुजराल के नेतृत्व में बनने वाली सभी केन्द्रीय सरकारों अल्पमतीय सरकारें थी जिन्हें सत्ता में बने रहने के लिए उन दलों का सहारा लेना पड़ा जो राज्यों में शक्ति के पुंज था। अनेक राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सरकारें सत्तारूढ़ है। जिनके कन्धों पर केन्द्रीय सरकार टिकी हुई थी और अनेक मसलों पर वे केन्द्र से सौदेबाजी करने से नहीं हिचकिचाती, फरवरी 1998 के लोकसभा चुनावों में किसी भी गठबंधन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ और भाजपा नेता अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा केन्द्र सरकार बनाने के

दावे को उस समय बड़ा धक्का लगा जब अन्नाद्रमुक नेता जयललिता ने अपने समर्थन की कीमत वसूलने के लिए शांतिमय शर्ते रखी जैसे – कावेरी ट्राइव्यूनल के फैसले पर अमल, सभी नदियों का राष्ट्रीकरण, 69 प्रतिशत आरक्षण को संवैधानिक संरक्षण, राज्यों को आरक्षण का कोटा अपनी जरूरत के हिसाब से तय करने का अधिकार महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण और आठवीं अनुसूची की सभी भाषाओं को राज्यभाषा का दर्जा देना, बीजू जनता दल ने उड़ीसा को विशेष दर्जा प्रान्त राज्य घोषित करने की मांग की। 1999 के चुनाव के बाद श्री अटल बिहारी वाजपेयी फिर से प्रधानमंत्री बने। इस सरकार में चूंकि अनेक सदस्य ऐसे थे जो अन्य दलों से सम्बन्ध रखते थे, जिनकी अपने राज्यों में सरकार थी। संघीय सरकार द्वारा क्षेत्रीय दलों के दबाव में रहना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक क्षेत्रीय दल केन्द्रीय सरकार को समर्थन देने के बदले में अपने क्षेत्र (राज्य) के लिए विशेष रियायतें की मांग कर रहा था।

1.2.4 निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान रूप में संघात्मक, किन्तु भावना में एकात्मक है। संविधान के द्वारा केन्द्र सरकार को बहुत अधिक शक्तिशाली बनाया गया है और संकटकाल में तो संविधान पूर्णरूप से एकात्मक रूप धारण कर लेता है। वस्तुतः संविधान निर्माण के समय देश की परिस्थितियाँ ऐसी थी, जिनमें केन्द्र को अधिक शक्तियाँ प्रदान करना आवश्यक था। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत में एकात्मक व्यवस्था है। यहाँ साधारण परिस्थितियों में शासन संघात्मक व्यवस्था की तरह चलता है।

1.2.5 प्रमुख शब्दावली

- कठोर संविधान : जिस संविधान में परिवर्तन एक विशेष तथा मुश्किल प्रक्रिया से किया जाए।
- दोहरी शासन व्यवस्था : केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर सरकारों का गठन किया जाना। संघीय व्यवस्था के तहत इसीको अपनाया जाता है।

- संघ सूची : संघीय व्यवस्था वाले राज्यों में शक्तियों का विभाजन केन्द्र और राज्यों के बीच किया जाता है। जिन विषयों पर केन्द्र सरकार को कानून बनाने का अधिकार होता है उसे संघ सूची कहा जाता है।
- एकीकृत न्यायपालिका : सर्वोच्च शिखर पर सर्वोच्च न्यायालय का होना और सभी न्यायालय उसके अधीन रहकर कार्य करते है।

1.2.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारतीय शासन प्रणाली की प्रकृति वर्णन कीजिए। यह कहाँ तक एक शुद्ध संघात्मक व्यवस्था है ?
2. भारतीय संघवाद के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
3. क्या आप इस कथन से सहमत है कि ''भारत में अत्यधिक केन्द्रीकरण है ?'' अपना उत्तर तर्क सहित दीजिए।
4. भारतीय संघवाद का सिद्धांत और व्यवहार में वर्णन करे।
5. भारत के संविधान की प्रकृति संघीय है, परन्तु आपातकाल में इसका स्वरूप एकात्मक हो जाता है। व्याख्या कीजिए ?
6. भारतीय संघवाद की उभरती प्रवृतियों का वर्णन कीजिए।
7. ''भारतीय संविधान न तो पूर्ण रूप से संघात्मक है और न ही पूर्ण रूप से एकात्मक है, बल्कि दोनों का मिश्रण है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
8. भारत को अर्द्ध–संघात्मक राज्य क्यों कहा जाता है ?
9. संघीय व्यवस्था का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
10. संघीय व्यवस्था की कोई चार विशेषताएं बताइए।
11. एकात्मक व्यवस्था की विशेषता बताइए।

1.2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली

- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984

- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

1.3 भारत में राज्य स्वायत्तता की मांग तथा पृथकतावादी आंदोलन
(Demand for State Autonomy in India and Separatist Movement)

1.3.1 परिचय

भारत में केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण आरम्भ से ही वाद–विवाद का विषय रहा है। संविधान द्वारा केन्द्र सरकार को विस्तृत शक्तियां प्रदान की गई है और राज्यों को निस्संदेह कम शक्तिशाली बनाया गया है। संविधान लागू होने के बाद से 1967 के चौथे आम चुनाव तक भारत में केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे और उनके बीच कोई विशेष संवैधानिक गतिरोध पैदा नहीं हुआ। जिसका मुख्य कारण केन्द्र और अधिकांश राज्यों में एक ही राजनीतिक दल (कांग्रेस दल) का सत्तारूढ़ होना था। सन् 1967 के आम चुनावों में एक दलीय आधिपत्य का अन्त कर दिया और भारतीय संघ के आठ घटक राज्यों में गैर–कांग्रेसी मिली–जुली सरकारों का निर्माण हुआ जिसके बाद केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण और सामंजस्य की समस्या उत्पन्न हुई। राज्य सरकारों की ओर से स्वायत्तता की मांग की गई और यह मांग तमिलनाडु में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई जहाँ डी०एम०के० (द्रविड़ मुनेत्र कड़गम) जैसे प्रादेशिक दल ने भारतीय संघ से पृथक होने की धमकी दी और यह नारा दिया कि भारत भारतवालों के लिए और तमिलनाडु तमिल लोगों के लिए।

1977 के लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं के चुनाव का विलक्षण परिणाम रहा। केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी से भिन्नता रखने वाली पार्टियों का राज्य में उदय। फलस्वरूप केन्द्र–राज्य सम्बन्ध पर नए सिरे से बहस महत्वपूर्ण हो गई। राज्यों में शासन करने वाली पार्टियों केन्द्र से और अधिक स्वतंत्र होने की मांग करने लगी। राज्यों की केन्द्र पर अत्याधिक वित्तीय निर्भरता की स्थिति ने एक बड़ी सीमा तक सत्ता के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ाया, अतः केन्द्र पर राज्यों की वित्तीय निर्भरता दूर करने के लिए पश्चिमी बंगाल की धर्मपन्थी सरकार ने मांग की कि केन्द्र के राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों में कमी करके राज्यों को अधिक से अधिक स्वायत्तता प्रदान की जाए।

1.3.2 उद्देश्य

- भारत में केन्द्र व राज्यों को सम्बन्धों के स्वरूप को जानना
- स्वायत्तता का वास्तविक अर्थ क्या है
- राज्य स्वायत्तता की मांग के कारण जानना
- इस मांग के समाधान के लिए उठाए गए कदम
- राज्य स्वायत्तता की औचित्यता को जानना

1.3.3 राज्यों की स्वायत्तता का अर्थ (Meaning of State Autonomy)

भारतीय संघ में राज्यों की स्वायत्तता से अभिप्राय है कि राज्यों के आन्तरिक मामलों में केन्द्रीय सरकार की दखलन्दाजी कम हो तथा संविधान द्वारा प्रदत विषयों पर उन्हें निरपेक्ष सत्ता प्रयोग करने का अधिकार हो। राज्यों को अपने कार्यक्षेत्र में पूर्ण स्वायत बनाया जाए ताकि वे जनकल्याण के कार्यो को अपनी योजनाओं और विचारों के अनुसार स्वतन्त्र और निर्बाध रूप से कर सकें। यह स्वायत्तता वित्तीय क्षेत्र में लगभग पूरी हो। केन्द्र की राजनीतिक और प्रशासनिक शक्तियां भी न्यूनतम रहें। उसका कार्य विदेश सम्बन्ध, रक्षा, मुद्रा और जनसंचार के विषयों तक सीमित और संकुचित कर दिया जाए। उसकी कराधान की शक्ति मात्र इतनी हो जिससे वह इन कार्यो के लिए पर्याप्त साधन जुटा सकने में समर्थ हो। केन्द्र को मजबूत रखते हुए भी राज्यों को इतनी वित्तीय शक्ति प्रदान की जाए जिससे वे साधनों के अभाव में अपने को असहाय और अप्रभावशाली महसूस न करें।

राज्यों की स्वयत्तता का अर्थ न तो राज्यों की स्वतंत्रता से है और न सम्प्रभुता से। यह एक ऐसा वैधानिक दर्जा है जिसमें राज्यों को व्यक्तिमय निर्दिष्ट क्षेत्रों में पूर्ण स्वतंत्रता तथा कम से कम केन्द्रीय हस्तक्षेप का आश्वासन प्राप्त होता है। राज्यों को अपने एक निश्चित क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने का अधिकार ही स्वायत्तता है।

राज्य स्वायत्तता की मांग (Demand for State Autonomy)

केन्द्र–राज्य सम्बन्धों को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक सहयोग व सहमति का आधार संविधान में मौजूद है। लेकिन पिछले दशकों के दौरान यह आधार

कमजोर हुआ है। इसकी जगह 'टकराव' की राजनीति ने ले ली है। राज्य अपने आपको स्वायत्तता से वंचित पाते हैं जबकि संविधान में राज्यों को काफी स्वायत्तता दी गयी है। दुर्भाग्य की बात यह है कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के बावजूद भी केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति कम नहीं हुई है। इसलिए राज्यों ने अधिकारों के उचित बंटवारे की मांग जोरदार ढंग से उठाई है। 1967 में आम चुनावों में आठ राज्यों में कांग्रेस की पराजय के बाद राज्यपालों की विवादास्पद भूमिका के परिवेश में केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की आलोचना की गयी। चौतरफा आलोचना का असर यह हुआ कि 1967 में केन्द्र सरकार ने जब प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया तो इसे केन्द्र व राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्धों की पड़ताल का काम भी सौंपा। आयोग ने यह सुझाव दिया कि राज्यों को अधिक अधिकार दिये जाए। आयोग का मानना था कि केन्द्रीय नियोजन प्रक्रिया ने राज्यों द्वारा अपनी नीतियों व कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में अत्याधिक हस्तक्षेप किया है। राज्यपाल के पद के बारे में भी आयोग ने सुझाव दिये और संविधान की धारा 263 के अन्तर्गत एक अंतर्राष्ट्रीय परिषद की सिफारिशें की लेकिन आयोग की सिफारिश फाइलों में धूल चाटती रही और केन्द्रीकरण की प्रक्रिया और मजबूत होती चली गयी।

1969 में तमिलनाडू सरकार ने केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की पड़ताल करने के लिए राजमन्नार समिति का गठन किया। समिति ने 1971 में अपनी रिर्पोट पेश की। समिति में सिफारिश की कि संविधान की आठवीं अनुसूची में संशोधन कर, अवशिष्ट अधिकार राज्यों को सौंप दिए जाए। धारा 249 को समाप्त कर दिया जाए और वित्त आयोग व योजना आयोग की संरचना में बदलाव किया जाए।

दिसम्बर, 1977 में पश्चिम बंगाल सरकार ने केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर एक ज्ञापन प्रकाशित करवाया। इस ज्ञापन में कहा गया कि जाति, धर्म व संस्कृति विविधताओं वाले देश भारत में स्वैच्छिक प्रयासों से ही राष्ट्रीय एकता कायम रखी जा सकती है। विखंडनकारी प्रवृतियों पर रोक लगाने के लिए राज्यों को अधिकार देकर विकेंद्रीकरण करना आवश्यक है। संविधान की प्रस्तावना में 'यूनियन' हटाकर 'फेडरेशन' शब्द का उल्लेख करने की मांग की गयी। इस ज्ञापन में संविधान की धारा 356, 357 व 360

को समाप्त करने का सुझाव भी दिया गया। यह मांग भी की गयी कि नये राज्यों के गठन और राज्यों का क्षेत्र, सीमा या नाम में परिवर्तन के लिए राज्यों की सहमति लेने को अनिवार्य बनाया गया।

इसके बाद अकाली दल ने 1978 में आनंदपुर साहिब प्रस्ताव का संशोधित संस्करण जारी किया। इस प्रस्ताव में राज्यों के लिए और स्वायत्तता की मांग की गयी और केन्द्र के अधिकारों को न्यूनतम करने का सुझाव दिया गया। इस प्रस्ताव के अनुसार केन्द्र सरकार के अधिकार – रक्षा, विदेश मामले, संचार, रेलवे व मुद्रा तक सीमित रहने चाहिए और अवशिष्ट अधिकारों राज्यों को हस्तांतरित कर दिए जाने चाहिए।

1980 के दशक में अनेक विपक्षी पार्टियों का स्वरूप लगभग क्षेत्रीय हो गया है। इसलिए राज्यों की स्वायत्तता की मांग और जोर पकड़ने लगी है। विजयवाड़ा, दिल्ली व श्रीनगर में आयोजित सम्मेलनों में फारूक अब्दुल्ला एम० करूणानिधि, सुरजीत सिंह बरनाला, रामकृष्ण हेगडे, एन०टी० रामाराव और प्रफुल्ल कुमार महंत सरीखे विपक्षी नेताओं ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। इसके अतिरिक्त राज्यों की स्वायत्तता की मांग के समर्थन में कई गोष्ठियों का भी आयोजन किया गया। विपक्षी पार्टीयों के विजयवाड़ा सम्मेलन में राज्यों के अधिकारों में हस्तक्षेप करने की केन्द्र सरकार की नीतियों की जमकर आलोचना की गयी। अक्टूबर 1983 में श्रीनगर में आयोजित तीन दिवसीय सम्मेलन में जनता से आह्वान किया गया कि अधिकारों के केन्द्रीकरण व संविधान में विकृतियों के कारण राष्ट्रीय एकता पर मंडरा रहे खतरों से देश को बचाने के लिए आगे आए। इस सम्मेलन में आप सहमति से बयान जारी किया गया कि केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की समीक्षा की जाए। केन्द्रीकरण की प्रवृति से संविधान के संघीय ढांचे की रक्षा की जाए और आर्थिक व वित्तीय प्रशासन के केंद्रीकृत ढांचे में बदलाव लाया जाए। केन्द्र व राज्यों के बीच तनाव व विवादों को समाप्त करने के लिए यह जरूरी है कि राज्यों के मामलों में केन्द्र की मनमानी को रोका जाए। इस सम्मेलन में संविधान की धारा 356 में संशोधन करने की मांग की गई। संवैधानिक संकट उत्पन्न होने पर छह महीने के भीतर चुनाव करवाने की मांग भी इस सम्मेलन में उठी।

अधिकारों के विकेंद्रीकरण व राज्यों की स्वायत्तता के सर्मथको का मानना है कि राष्ट्रीय एकता को अक्षुण रखने और राष्ट्रीय एकता की ताकतों को मजबूत बनाने के लिए देश की विविधताओं को स्वीकार करते हुए इन्हें स्थानीय स्तर पर सुरक्षित करने की कोशिशों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इन विविधताओं से निपटने के लिए केन्द्रीय स्तर पर की गयी कोशिशों से केन्द्र – राज्य सम्बन्धों में तनाव और बढ़ेगा। दूसरी तरफ, केन्द्र के अधिकारों को मजबूती प्रदान करने के पक्षधरों का तर्क है कि राष्ट्रीय शक्तियों को बढ़ावा देकर ही राष्ट्रीय एकता की रक्षा की जा सकती है। मजबूत केन्द्र के समर्थकों का मानना है कि केन्द्र को कमजोर करने का कोई भी प्रयास अतंतः भारत को सोवियत संघ की राह पर धकेल देगा। इस दृष्टिकोण के अनुसार राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में सिर्फ केन्द्र ही सक्षम है और क्षेत्रीय ताकतों को बढ़ावा देने से विखण्डनकारी शक्तियों को बल मिलेगा। लेकिन भारत व विश्व के अन्य देशों का अनुभव बताता है कि अधिकारों के केन्द्रियकरण के कारण विखण्डनकारी शक्तियों को बढ़ावा मिलता है जबकि विकेंद्रिकरण के फलस्वरूप जनता की उम्मीदें को पूरा करने का अवसर पैदा होता है।

सरकारिया आयोग (Srkari Commission)

जब केन्द्र–राज्यों के सम्बन्धों में तनाव बढ़ने लगे तो स्थिति पर काबू पाने के उपायों पर चर्चा शुरू हुई। इसी संदर्भ में केन्द्र सरकार ने 24 मार्च 1983 को एक आयोग के गठन की घोषणा की। इस आयोग को केन्द्र व राज्यों के बीच मौजूदा व्यवस्था की समीक्षा करने और इसमें वांछित बदलाव के लिए सिफारिशें देने का काम सौंपा गया। अवकाश प्राप्त न्यायमूर्ति आर०एस० सरकारिया इस आयोग के अध्यक्ष नियुक्त किये गए। केन्द्र–राज्य सम्बन्धों पर सुझाव देते समय आयोग को सामाजिक व आर्थिक विकास, संविधान की संरचना और राष्ट्रीय एकता व अखंडता का ध्यान रखने को कहा गया आयोग ने 27 अक्तूबर 1987 को अपनी रिर्पोट पेश की।

सरकारिया आयोग का यह मानना था कि मौजूदा संवैधानिक ढांचा दुरूस्त है। आवश्यकता इस बात की है कि सामूहिक निर्णय प्रक्रिया को बढ़ावा देने के उपाय किए

जाए। आयोग ने इस सम्बन्ध में 265 सिफारिशें दी हैं। इसकी प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार है –

1. संविधान की धारा 258, जिसमें केन्द्र को यही अधिकार है कि वह राज्यों को अधिकार सौंपने का पहले के मुकाबले अधिक उदारता के साथ उपयोग किया जाए।
2. अखिल भारतीय सेवाओं को विघटित करने की कोई भी कोशिश या राज्यों को इस व्यवस्था से बाहर रखने का अधिकार देने से देश पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अखिल भारतीय सेवाओं को और मजबूत किया जाना चाहिए।
3. जब केन्द्र सरकार समवर्ती सूची के तहत कोई कानून बनाने का प्रस्ताव लाये, तो इससे पूर्व वह सभी राज्यों से अलग–अलग तथा सामूहिक रूप से सलाह मशविरा करे।
4. योजना आयोग व राष्ट्रीय विकास परिषद् में सुधार किया जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि नियोजन प्रक्रिया में राज्यों से सलाह–मशविरा हो ताकि राज्यों को इस प्रक्रिया में अपनी बराबर की भागीदारी का अहसास हो।
5. राज्य सरकार के अनुरोध के बैगर अगर केन्द्र सरकार किसी राज्य में अपने सुरक्षा बलों को तैनात करती है या राज्य के किसी क्षेत्र को 'गड़बड़ी वाला' घोषित करती है तो इससे पूर्व राज्यों से सलाह–मशविरा किया जाए। हालांकि इस मामले में कार्यवाही करने से पहले राज्यों से सलाह करना केन्द्र के लिए अनिवार्य नहीं लेकिन इस संदर्भ में राज्यों का सहयोग हासिल करने की कोशिश की जानी चाहिए।
6. अपना पद छोड़ने के बाद राज्यपाल को केन्द्र या राज्य सरकार से लाभ का कोई पद नहीं दिया जाना चाहिए।
7. राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए अरक्षित राज्य सरकारों के विधेयकों पर चार माह के भीतर निर्णय कर दिया जाना चाहिए।
8. धारा 356 का इस्तेमाल केवल विशेष परिस्थितियों में, जब सभी विकल्प विफल हो जाए, किया जाना चाहिए।

9. हाईकोर्ट के जजों को तबदली उनकी मर्जी से ही करने की स्वस्थ परम्परा का निर्वाह किया जाए। किसी जज के तबादले पर अपनी राय बनाने से पहले भारत के मुख्य न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठ जजों से परामर्श कर लेना चाहिए।

10. योजना आयोग केन्द्रीय सहायता प्राप्त स्कीमों की समय–समय पर समीक्षा करें और यह समीक्षा राष्ट्रीय विकास परिषद् के विचारार्थ पेश की जाए।

11. कर व्यवस्था में सुधारों पर सुझााव देने के लिए केन्द्र एक विशेषज्ञ समिति का गठन करे। इस समिति में राज्यों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाए।

12. राष्ट्रीय विकास परिषद् का पुनर्गठन कर इसका नाम राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद कर दिया जाए।

13. राज्यों से सलाह मशविरा कर धारा 269 के अन्तर्गत लगाए जाने वाले करों व भुलकों की व्यवस्था की समीक्षा करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया जाए।

14. किसी राज्य के लिए राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में उस राज्य के मुख्यमंत्री से विचार–विमर्श सुनिश्चित करने के लिए धारा 155 में संशोधन के द्वारा यह व्यवस्था की जाए।

15. करों के सम्बन्ध के अवशिष्ट अधिकार संसद के पास रहने दिया जाए और करों के इलावा शेष अवशिष्ट अधिकारों को समवर्ती सूची में शामिल कर दिया जाए।

16. धारा 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन को जारी रखने के मामले की समीक्षा करने का अधिकार संसद को देने के लिए इस धारा में ही इस आशय के उपायों को शामिल किया जाए।

17. संविधान में उचित संशोधन कर, कारपोरेट टैक्स में राज्यों को हिस्सा देने की व्यवस्था की जा सकती है।

18. अर्न्तराज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम में संशोधन कर केन्द्र सरकार के लिए एक अनिवार्य बनाया जाए कि इस सम्बन्ध में राज्यों के आवेदन आने के एक साल के भीतर ट्रिब्यूनल का गठन करे।

केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में विचार–विमर्श, सहयोग व भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए सरकारिया आयोग ने संविधान की धारा 263 के अन्तर्गत एक स्थायी अर्न्तराज्य परिषद् के गठन का सुझाव दिया।

राज्य स्वायत्तता के समर्थन में तर्क (Arguments in favour of State Autonomy)

राज्यों के समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है –

1. स्वायत्तता स्वतंत्रता नहीं है और स्वायत्तता की मांग संघीय ढांचे में की जा रही है। अतः इससे विघटन का खतरा नहीं है।
2. राज्यों के कार्य दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे है। आर्थिक नियोजन और ग्रामीण विकास सम्बन्धी बढ़ते हुए कार्यो को देखते हुए उन्हें वित्तीय साधनों की दृष्टि से केन्द्र को मोहताज बनाए रखना ठीक नहीं। इनके पृथक वित्तीय साधन होने से विकास सम्बन्धी कार्य व दायित्वों के निर्वाह में अधिक सुविधा होगी।
3. केन्द्र और राज्यों में पृथक–पृथक राजनीतिक दलों की सरकारें होना स्वाभाविक हैं, किन्तु यह देखा गया है कि राज्यों को अनुदान देते समय केन्द्रीय सरकार सौतेला व्यवहार करती है। वह उन राज्यों के साथ सौम्य व्यवहार करती है जहां उससे मेलजोल रखने वाली सरकारें है और उन राज्यों के साथ कठोर रूख अपनाती है जहाँ उसकी विचारधारा से भिन्नता रखने वाली राज्य सरकार है। राज्य स्वायत्तता से यह दोहरा मापदण्ड समाप्त हो जाऐगा।
4. राज्य स्वायत्तता से भारत में सच्ची संघात्मक व्यवस्था की स्थापना हो सकेगी।
5. राज्य स्वायत्तता से राज्यों में उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी।

राज्य स्वायत्तता के विपक्ष में तर्क (Arguments Against State Autonomy)

केन्द्रीय सरकार की दृष्टि से राज्य स्वायत्तता की अवधारणा से संघ व्यवस्था दुर्बल होगी और राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से खतरनाक परिणाम होंगे इसके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं।

1. कुल मिलाकर देश की सुदृढ़ता ही राज्यों की स्वायत्तता की सर्वोतम गारण्टी है क्योंकि किसी प्रकार वह मजबूती समाप्त हो जाए तो न भारतीय संघ की प्रभुसता रहेगी और न ही राज्यों की स्वायत्तता रह सकेगी।

2. राजमनार समिति के सुझाव तो संविधान की आत्मा को ही बदलने वाले खतरनाक विचार है। समिति का प्रतिवेदन क्षेत्रीयता को बढ़ाने वाला और राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुँचाने वाला है।

3. जो भारतीय संघ के घटक राज्य स्वायत्तता की मांग कर रहे है और स्वायत्तता के बाद उनकी अगली मांग स्वायत्तता और प्रभुसत्ता हो सकती है। प्रादेशिक दलों द्वारा शासित राज्य सरकारों की स्वायत्तता की मांग के पीछे कहीं विदेशी ताकतों का हाथ तो नहीं जो भारत को खण्डित करना चाहती है।

4. राज्यों को और अधिक स्वायत्तता देने से राज्यों में छोटी–छोटी तानाशाहियाँ स्थापित हो जाएगी। राज्य के भीतर निर्णय और कार्य की शक्ति मुख्यमंत्रियों के हाथों में घनीभूत हो जाऐगी, साम्राज्य निर्माण की प्रवृति बढ़ेगी और देश का सन्तुलन लड़खड़ा जाएगा।

5. क्षेत्रीय दलों और उनके नेताओं द्वारा राज्यों की स्वायत्तता की मांग एक सुनियोजित और गम्भीर राजनीतिक चाल है, जिसके द्वारा कुछ तत्व अपने व्यर्थ स्वार्थो की पूर्ति करना चाहते है।

1.3.4 निष्कर्ष

कमजोर केन्द्र बिखराव को प्रोत्साहित करता है तथा दूसरी और कमजोर राज्यों के कारण केन्द्र में तानाशाही प्रवृतियों के उभरने का खतरा भी है। आपातकाल का अनुभव इसका ताजा उदाहरण है जबकि राज्यों की आज्ञाकारी शिशुओं से बदतर बना दिया गया और केन्द्र द्वारा संवैधानिक शक्तियों के अपहरण पर राज्य सरकारें चूं तक नहीं कर सकी। अतः केन्द्र और राज्यों के बीच सम्बन्धों की एक सन्तुलनकारी स्थिति को अपनाए जाने की आवश्यकता है।

राज्यों की वित्तीय दुर्दशा ऐसी है कि राज्य सरकारें अपने बलबूते पर कोई योजना चालू नहीं कर सकती और अकाल, सूखा व बाढ़ जैसे प्राकृतिक प्रकोपों का सामना करने के लिए केन्द्र से अनुभव विनय करती है। हर छोटे काम के लिए मुख्यमंत्रियों को बार–बार दिल्ली दरबार में हाजिरी देनी पड़ती हैं राज्य विधानसभा द्वारा पारित प्रस्ताव राष्ट्रपति की स्वीकृति की प्रतिक्षा में पड़े रहते है।

राष्ट्रीय एकता व सुरक्षा की दृष्टि से केन्द्र के सशक्त होने की आवश्यकता निर्विवाद है तो जनहितकारी कार्यो के विस्तार तथा सेवाओं को क्षमतावान बनाने के लिए राज्यों की अधिकारिता भी तर्कसंगत ठहरती है। अतः राज्यों की स्वायत्तता एवं उनके शासनाधिकार के विस्तार का प्रश्न चहुपरक कसौटी पर जांचा व परखा जाए। इस प्रश्न पर विचार करते समय देश की स्थिति अब तक का अनुभव एवं देशवासियों की आकांक्षा व अवाश्यकताओं को आधार बनाया जाना चाहिए। भारत की संघात्मक व्यवस्था और केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का सर्वाधिक प्रमुख तथ्य यह है कि राज्यों को सशक्त बनाने का अर्थ केन्द्र को अशक्त बनाना नहीं है और केन्द्र राज्य सम्बन्धों की कोई समस्या नहीं है जो संविधान के वर्तमान ढांचे में हल न की जा सके।

1.3.5 मुख्य शब्दावली

- राज्य स्वायत्तता : राज्य सूची में दिए गए विषयों पर राज्य द्वारा निर्बाध रूप से कानून बनाने का अधिकार यानी केन्द्र द्वारा किसी भी प्रकार का अनावश्यक हस्तक्षेप राज्य के मामलों में ना हो।
- खालिस्तान आन्दोलन : खालिस्तान के रूप में पंजाब से अलग एक पृथक राज्य की मांग अकालियों के द्वारा।
- नागा आन्दोलन : असम राज्य में रहने वाले नागा जाति ने भारतीय संघ से अलग होने के लिए चलाया गया आन्दोलन।
- गोरखालैंड आन्दोलन : पश्चिमी बंगाल के पहाड़ी क्षेत्र के लोगों ने गोरखालैंड के नाम से एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के मांग हेतू आन्दोलन किया गया।

1.3.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. राज्य की स्वायत्तता की परिभाषा दीजिए। भारत में 'राज्य की स्वायत्तता की मांग' के जन्म और विकास का वर्णन करे।
2. राज्य स्वायत्तता का क्या अर्थ है ? भारतीय संघ में राज्य स्वायत्तता की मांग की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

3. राज्य स्वायत्तता की मांग कहां तक उचित है ? इसके पक्ष व विपक्ष में तर्क दीजिए।

4. राज्यों की स्वायत्तता का क्या अर्थ है ?

5. राज्य स्वायत्तता की मांग के पक्ष में कोई चार तर्क कीजिए।

6. राज्य स्वायत्तता की मांग क्यों की गई ?

1.3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967

- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

1.4 केन्द्र–राज्य सम्बन्ध (Centre-State Relations)

1.4.1 परिचय

संघीय संविधान, राष्ट्रीय प्रभुता तथा राज्य प्रभुता के दावों के बीच, जो कि उपरी दृष्टि से विरोधी जान पड़ती है, सामंजस्य पैदा करने का प्रयत्न करता है। संविधान के अन्तरंग में ही कुछ ऐसे उपबन्ध होते है जो सामंजस्य के तौर–तरीकों पर प्रकाश डालते हैं। केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना करने वाली संघ प्रणाली को 'सहयोगी संघवाद' की संज्ञा दी जाती हैं इस व्यवस्था में संघीय सरकार शक्तिशाली तो होती है, किन्तु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्र में कमजोर नहीं होती, साथ ही दोनों ही सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता इस व्यवस्था का मुख्य लक्षण होता है। संघवाद का बुनियादी तत्व है शक्तियों का विभाजन। सहयोगी संघवाद में शक्तियों के विभाजन के उपरान्त भी केन्द्र एवं राज्यों के बीच अन्तःक्षेत्रीय सहयोग पर बल दिया जाता है। यह सहयोग केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के बीच ही नहीं अपितु विभिन्न राज्य सरकारों एवं असंख्य राजनीतिक संरचनाओं के मध्य भी दिखलाई देता है।

वस्तुतः कोई भी संघीय शासन प्रणाली वाला देश आज यह दावा नहीं कर सकता है कि वह केन्द्र–राज्य मतभेदों की समस्या से पूर्णतया उन्मुक्त है। यथार्थ में संघ व्यवस्था जिसका आधार परम्परा सामंजस्यपूर्ण हिस्सेदारी की भावना है, को तनावों का संस्थाकरण (Institutionalised Tensires) करने वाली व्यवस्था भी कहा जाता है।

1.4.2 उद्देश्य

- केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के बंटवारे के बारे में जानना
- क्या राज्य अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से कर सकते है
- केन्द्र राज्यों के बीच यदि तनाव पैदा हो तो कैसे निवारण किया जाता है
- केन्द्र राज्य सम्बन्धों में क्या–क्या सीमाएं है

- सम्बन्धों में और अधिक समन्वय कैसे किया जा सकता है

1.4.3 केन्द्र राज्य सम्बन्ध

भारत के संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण की एक निश्चित सुस्पष्ट योजना अपनाई है। संविधान के आधार पर संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध
2. केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्ध
3. केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

केन्द्र–राज्य विधायी सम्बन्ध (Centre-State Legistative Relations)

संघ व राज्यों के विधायी सम्बन्धों का संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है। जिन्हें संघ सूची (Union List), राज्य सूची व समवर्ती सूची (Concurnent List) का नाम दिया गया है। इन सूचियों को सातवीं अनुसूची में रखा गया है।

संघ सूची (Union List)

इस सूची में राष्ट्रीय महत्व के ऐसे विषयों को रखा गया है। जिनके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की नीति का अनुकरण आवश्यक कहा जा सकता है। इस सूची के सभी विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार संघीय संसद को प्राप्त है। इस सूची में कुल 97 विषय है जिनमें कुछ प्रमुख हैं – रक्षा, वैदिशक मामले, मुद्दे व सन्धि, रेल डाक, तार तथा टेलिफोन।

राज्य सूची (State List)

इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गए हैं जो क्षेत्रीय महत्व के हैं। इस सूची के विषयों पर विधि का निर्माण का अधिकार सामान्यतया राज्यों की विधानमण्डलों को ही प्राप्त है। मूल संविधान के अनुसार इस सूची में 66 विषय थे, लेकिन 42वें संवैधानिक संशोधन से इस सूची के चार विषय शिक्षा, वन जंगली जानवरों और पक्षियों की रक्षा तथा नापतोल, राज्य सूची से समवर्ती सूची में कर दिए गए है। राज्य सूची के कुछ प्रमुख विषय है। पुलिस, न्याय, जेल, सिंचाई और सड़कें आदि।

समवर्ती सूची (Concurrent List)

इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गए हैं जिनका महत्व क्षेत्रीय व संघीय दोनों ही दृष्टियों से है। इस सूची के विषयों पर संघ तथा राज्य दोनों को ही विधियां बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि इस सूची के विषय पर संघीय तथा राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानून परस्पर विरोधी हो, तो सामान्यतः संघ का कानून मान्य होगा। इस सूची में कुल 47 विषय हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख ये हैं – विवाह और विवाह विच्छेद, श्रमिक संघ, औद्योगिक विवाद, आर्थिक और सामाजिक योजना, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा आदि।

अवशेष विषय (Residuary Subjects)

भारतीय संघ में कानून के संघ की तरह अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण की शक्ति संघीय संसद को प्रदान की गई है।

राज्य सूची के विषयों पर संसद की व्यवस्थापन शक्ति

(Parilament Can Legistate on the Subjects of the State List)

सामान्यतः संविधान द्वारा दिए गए इस शक्ति–विभाजन का उल्लंघन किसी भी सत्ता द्वारा नहीं किया जा सकता। संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विषय पर और किसी राज्य की विधानमण्डल द्वारा संघीय सूची के किसी विषय पर निर्मित कानून अवैध होगा, लेकिन संसद के द्वारा कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय एकता हेतु राज्य सूची के विषयों पर भी कानूनों का निर्माण किया जा सकता है। संसद को इस प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले संविधान के कुछ प्रावधान निम्नलिखित है –

1. **राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर :** संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा अपना दो–तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है कि राज्य सूची में निहित कोई विषय राष्ट्रीय महत्व का हो गया है, तो संसद को उस विषय पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसकी मान्यता केवल एक वर्ष तक रहती है। राज्यसभा द्वारा प्रस्ताव पुनः स्वीकृत करने

पर इसकी अवधि में एक वर्ष की वृद्धि और हो जाएगी। इसकी अवधि समाप्त हो जाने के उपरान्त यह 6 माह तक प्रयोग में आ सकता है।

2. **राज्यों की विधानमण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर :** अनुच्छेद 252 के अनुसार यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पास कर यह इच्छा व्यक्त करते है कि राज्य सूची के किन्हीं विषयों पर संसद द्वारा कानून निर्माण किया जाए, तो उन राज्यों के लिए उन विषयों पर अधिनियम बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाता है। राज्यों के विधानमण्डल न तो उन्हें संशोधित कर सकते है और न ही इन्हें पूर्णरूप से समाप्त कर सकते हैं।

3. **संकटकालीन घोषणा होने पर (अनुच्छेद 250) :** संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्य की समस्त विधायिनी शक्ति पर भारतीय संसद का अधिकार हो जाता है। इस घोषणा की समाप्ति के 6 माह बाद तक संसद द्वारा निर्मित कानून पूर्ववत् चलते रहेगे।

4. **विदेशी राज्यों से हुई सन्धियों के पालन हेतु (अनुच्छेद 253) :** यदि संघ सरकार ने विदेशी राज्यों से किसी प्रकार की सन्धि की है अथवा उनके सहयोग के आधार पर किसी नवीन योजना का निर्माण किया है, तो इस सन्धि के पालन हेतु संघ सरकार को सम्पूर्ण भारत के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्णतया हस्तक्षेप और व्यवस्था करने का अधिकार होगा। इस प्रकार इस स्थिति में संसद को राज्य सूची के विषय पर कानून का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

5. **राज्य में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर (अनुच्छेद 356) :** किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाये या संवैधानिक तत्व विफल हो जाए तो राष्ट्रपति राज्य विधानमण्डल के समस्त अधिकार भारतीय संसद को प्रदान कर सकता है।

6. कुछ विधेयकों को प्रस्तावित करने और कुछ की अन्तिम स्वीकृति के लिए केन्द्र का अनुमोदन आवश्यक उपयुक्त परिस्थितियों में तो संसद द्वारा राज्य सूची के विषयों पर कानूनों का निर्माण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भी राज्य विधानमण्डलों की राज्य सूची के विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति सीमित

है। अनुच्छेद 304 (ख) के अनुसार कुछ विधेयक ऐसे होते हैं, जिनके राज्य विधानमण्डल में प्रस्तावित किए जाने से पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, वे विधेयक, जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दृष्टि उस राज्य के अन्दर या उसके बाहर वाणिज्य या मेल–जोल पर कोई प्रतिबन्ध लगाए जाने हो।

अनुच्छेद 31 (ग) के अनुसार, राज्य सूची के ही कुछ विषयों पर राज्यों की विधानमण्डलों द्वारा पारित विधेयक उस दशा में अमान्य होंगे, यदि उन्हें राष्ट्रपति ने विचारार्थ रोक रखा हो और उन पर राष्ट्रपति को स्वीकृति ने प्राप्त कर ली गई हो। उदाहरण के लिए किसी राज्य द्वारा सम्पति को अधिग्रहण के लिए बनाए गए कानूनों का समवर्ती सूची के विषयों के बारे में ऐसे कानूनों, जो संसद के उससे पहले बनाए गए कानूनों के प्रतिकूल हो या उन पर जिनके द्वारा ऐसी वस्तुओं की खरीद और बिक्री पर लगाया जाने वाले कर हो, जिन्हें संसद ने समाज के जीवन के लिए आवश्यक घोषित कर दिया है, राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल किसी भी विधेयक के बारे में अपनी सहमति देने से इन्कार कर सकता है और उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है। राष्ट्रपति बिना कोई कारण बताए विधेयकों के अस्वीकार कर सकता है।

केन्द्र के द्वारा उन संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर व्यवहार में भी अपने आपको शक्तिशाली बनाने का कार्य किया है। उदाहरण के लिए, 1954 में तृतीय संशोधन के आधार पर समवर्ती सूची के विषयों में वृद्धि की गई, जिससे कि खाद्यान्न के अभाव में उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए केन्द्रीय सरकार आवश्यक कदम उठा सकें।

उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में साधारणतया संघीय संसद तथा राज्यों की विधानमण्डलों के कार्यक्षेत्र संविधान द्वारा विभाजित हैं, लेकिन विशेष परिस्थितियों में संघ सरकार द्वारा राज्य सरकार के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण किया जा सकता है। पायली के अनुसार विधायी सत्ता के वितरण की सूची योजना से निःसन्देह केन्द्रीकरण की एक प्रबल प्रवृति प्रकट होती है।

केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध (Centre-State Administrative Relations)

संघात्मक शासन प्रणाली की सबसे कठिन समस्या संघ तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्धों का समायोजन करना है। यदि संविधान में तत्सम्बन्धी स्पष्ट तथ्य उपलब्ध न हों तो दोनों को अपना दायित्व निभाने में यदि कठिनाई का अनुभव होता है। इसलिए भारतीय संविधान निर्माताओं ने इस सम्बन्ध में विस्तृत उपलब्धों की आवश्यकता अनुभव की ताकि प्रशासनिक क्षेत्र में संघ तथा राज्यों के मध्य किसी प्रकार के विवाद उत्पन्न न हो।

प्रशासनिक सम्बन्ध : संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में

(Administrative Relations : Constitutional Aspect)

भारतीय संविधान के ग्यारहवें भाग के दूसरे अध्याय में केन्द्र और राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है। संविधान के अनुच्छेद 73 के अनुसार, केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति उन विषयों तक सीमित है जिन पर संसद को विधि का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 162 के अनुसार राज्यों की प्रशासनिक शक्तियां उन विषयों तक सीमित हैं जिन पर राज्य विधानसभाओं को कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषयों में प्रशासनिक अधिकार साधारणतया राज्यों में निहित है किन्तु इन विषयों पर राज्य की प्रशासनिक शक्तियों को संघ की ऐसी प्रशासनिक शक्तियों द्वारा सीमित रखा गया हैं जो या तो संविधान द्वारा या संसदीय विधि द्वारा प्रदत है।

प्रशासनिक सम्बन्धों में केन्द्र को राज्यों के ऊपर नियन्त्रण रखने का अधिकार प्रदान किया गया है, किन्तु इसके बावजूद राज्यों को स्वायत्तता एवं जिम्मेदारी का बड़ा क्षेत्र मिला हुआ है। फिर भी कुछ विद्वानों को महसूस होता है कि इन सम्बन्धों ने राज्यों की स्वायत्तता को कम किया हैं क्योंकि एक ही दल का बोलबाला है और ''राज्यों के मुकाबले एक अत्यन्त शक्तिशाली संस्था के रूप में केन्द्रीय कार्यपालिका का उदय हुआ है तथा केन्द्र को अधिक अधिकार मिल गए हैं।''

राज्यों के उपर संघीय नियन्त्रण की विधियां

संविधान के अन्तर्गत केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से संघीय सरकार को राज्यों के सम्बन्ध में कतिमय प्रशासनिक शक्तियां प्राप्त है जो निम्नवत् हैं –

1. **राज्यों का दायित्व :** संविधान के अनुसार राज्यों को अपनी कार्यपालिका शक्ति का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए जिससे संसद द्वारा निर्मित कानूनों का पालन होता रहे। हर राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह संसद के कानूनों को अमल में लाने के लिए हर सम्भव उपाय काम में लाए। राज्यों का यह भी दायित्व हैं कि केन्द्रीय प्रशासन में कोई बाधा उत्पन्न न होने दे।
2. **केन्द्र सरकार राज्यों को निर्देश दे सकती है :** केन्द्र को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्यों को यह निर्देश दे सके कि उन्हें अपनी कार्यकारी शक्ति का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए। राष्ट्रीय व सैनिक महत्व के मार्गो व पुलों आदि का निर्माण साधारणतया केन्द्रीय सरकार ही करती है, परन्तु केन्द्र को यह अधिकतर प्राप्त है कि इस प्रकार के मार्गो के निर्माण व उनके उचित रखरखाव के लिए वह राज्यों को आवश्यक निर्देश दे सके। इसी प्रकार रेलमार्गो तथा रेलगाड़ियों की सुरक्षा के लिए भी निर्देश जारी किए जा सकते हैं।
3. **केन्द्र राज्यों की सरकारों का उपयोग अपने एजेन्ट के रूप में कर सकता है :** राष्ट्रपति राज्यों की सरकारों अथवा उसके पदाधिकारियों को अपने एजेन्ट के रूप में कोई भी कार्य करने की जिम्मेदारी सौंप सकता है। इसका अभिप्रायः यह है कि संघ सूची में दिए गए किसी भी विषय से सम्बन्धित कोई भी कार्य राज्यों के पदाधिकारियों को सौंपा जा सकता है।
4. **सरकारी कृत्यों अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाही को पूरी मान्यता दी जाएगी :** केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार दोनों का यह कर्त्तव्य है कि वे सभी सरकारी कृत्यों का आदर करे और देश के सभी न्यायालयों द्वारा किए गए अन्तिम निर्णयों को लागू करें।

5. **दो या अधिक राज्यों में बहने वाले जलाशयों व नदियों के जल का बटवारा :** संसद को यह अधिकार है कि अन्तर्राष्ट्रीय नदियों के बंटवारे से उत्पन्न विचार को निपटाने के लिए वह उचित कानून बनाए। संसद किसी भी नदी या नदी घाटी परियोजना के पानी के इस्तेमाल, वितरण या नियन्त्रण सम्बन्धी विवाद के सिलसिले में मध्यस्थता की व्यवस्था कर सकती हैं संसद, सर्वोच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय को इस प्रकार के विवादों पर विचार करने से रोक सकती है। यह एक महत्वपूर्ण अधिकार है और इसका इस्तेमाल कृषि व औद्योगिक विकास के लिए पानी और बिजली जैसी सुविधा की व्यवस्था के लिए किया जा सकता है। साथ ही इसका उपयोग दामोदर घाटी निगम जैसी बहु–उद्देशीय परियोजनाओं के लिए किया जा सकता है।

6. **अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना :** संविधान राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह एक अन्तर्राज्यी परिषद् की स्थापना करे, जिसके निम्नलिखित तीन विशेष कार्य होंगे –

- राज्यों के बीच उठ खड़े होने वाले विवादों की जांच करना तथा उनके सम्बन्ध में सलाह देना।
- उन विषयों पर छानबीन कर विचार करना जिनमें राज्यों की एक समान दिलचस्पी हो।
- इन विषयों और विशेषकर इनसे सम्बन्धित नीति एवं कार्य के बेहतर समन्वय के सम्बन्ध में सिफारिशें करना राष्ट्रपति इस परिषद के संगठन और प्रक्रिया को निर्धारित एवं इसके कर्त्तव्यों को परिभाषित कर सकता है।

7. **अखिल भारतीय सेवाएं :** संघ द्वारा राज्यों को नियन्त्रित करने का एक महत्वपूर्ण तरीका है आखिल भारतीय सेवाएं। यद्यपि राज्यों और केन्द्र की पृथक सेवाएं और लोकसेवा आयोग है, फिर भी संविधान अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना के लिए संघ को अधिकार देता है। संघ को इन सेवाओं के सदस्यों को राज्यों के महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर रखने का अधिकार होता है।

8. **राज्यपाल** : राज्यों के राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते है और इस प्रकार से वे राज्यों में केन्द्र के एजेन्ट के नाते कार्य करते हैं। उनके माध्यम से केन्द्रीय सरकार राज्यों के शासन पर अकुंश रख सकती है।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी विषय है जिनका सम्बन्ध यद्यपि दोनों सरकारों से है तथापि जिनका निर्धारण केन्द्रीय सरकार ही करती है। उदाहरण के लिए निर्वाचन लेखा परीक्षण आदि।

संविधान के अनुच्छेद 365 के अनुसार यदि राज्य की सरकार केन्द्र के निर्देशों का पालन न करे तो राष्ट्रपति यह घोषणा कर सकता है कि राज्य का संवैधानिक ढांचा विफल हो गया है। इस घोषणा का परिणाम यह होगा कि राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाएगा।

संक्षेप में, संविधान केन्द्रीय कार्यपालिका के प्राबलय का प्रावधान करता है। संघीय प्रशासनिक सम्बन्धों की क्रिया के कारण राज्यों की स्वायत्तता में इतनी कमी आ गई है कि संघीय राज्यतंत्र के सहकारी स्वरूप पर आघात पहुँचा है।

केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्ध (Centre-State Finaincial Relations)

संघात्मक शासन व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों की सरकारों के बीच केवल विधायी और प्रशासनिक शक्तियों का ही विभाजन नहीं होता अपितु वित्तीय स्त्रोतों का बंटवारा होता है। वित्तीय स्त्रोतों के विभाजन को लेकर राज्यों के बीच मतभेद और तनाव उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। यह समस्या उतनी ही पुरानी है जितनी कि संघात्मक शासन प्रणाली और यह विश्व की अधिकांश संघ व्यवस्थाओं को संकटग्रस्त करती रही है।

केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्ध : संवैधानिक प्रावधान

केन्द्र तथा राज्यों के मध्य राजस्व के साधनों के विभाजन के आधारभूत सिद्धान्त है – कार्यक्षमता, पर्याप्तता तथा उपयुक्ता। इन तीनों उद्देश्यों की एक साथ ही प्राप्ति अत्यन्त कठिन थी, अतः भारतीय संविधान में समझौते की कोशिश की गई।

1. **कर निर्धारण, शांति का वितरण और करों से प्राप्त आय का विभाजन** : भारतीय संविधान में वित्तीय प्रावधानों की दो विशेषताएं है। प्रथम, संघ तथा राज्यों के

मध्य कर निर्धारण की शक्ति का पूर्ण विभाजन कर दिया गया है और द्वितीय करों से प्राप्त आय का बटवारा होता है।

संघ के प्रमुख राजस्वस्त्रोत इस प्रकार है : निगम कर, सीमा कर, निर्यात शुल्क, कृषि, भूमि को छोड़कर अन्य सम्पति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी, ऋण रेले, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार आदि। राज्यों के राजस्व स्त्रोत है : प्रति व्यक्ति कर, कृषि भूमि पर कर, सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं तथा नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय पर कर, वाहनों पर चुंगी कर आदि।

संघ द्वारा आयोजित तथा संग्रहित विनियोजित किए जाने वाले शुल्कों के उदाहरण है : बिल विनयमों, प्रोमिसरी नोटों, हुण्डियों, चैकों आदि पर मुंद्राक शुल्क और दवा तथा मादक द्रव्य पर कर, शौक–श्रृंगार की चीजों पर कर तथा उत्पादन शुल्क।

संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहित किन्तु राज्यों को सौंपें जाने वाले करों के उदाहरण है। कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पति के उत्तराधिकार पर कर, कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पति पर सम्पदा शुल्क, रेल, संमुद्र, वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर, रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर, शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान–प्रदान बाजार के आदान प्रदान पर कर, मुद्रांक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार पत्रों के क्रय–विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य के माल के क्रय–विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य के माल के क्रय–विक्रय पर कर।

कतिपय कर संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहित किए जाते हैं, पर उनका विभाजन संघ तथा राज्यों के बीच होता है। आय कर का विभाजन संघीय भू–भाग के लिए निर्धारित निधि तथा संघीय खर्च को काटकर शेष राशि में से किया जाता है। आय कर के अतिरिक्त दवा तथा शौक श्रृंगार सम्बन्धी चीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

2. **सहायक अनुदान तथा अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए दिया जाने वाले अनुदान :** संविधान के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्यों को चार तरह से सहायता अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। प्रथम, पटसन व उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है। उसमें से कुछ भाग अनुदान के रूप में जूट पैदा करने वाले राज्यों–बिहार, बंगाल, असम व उड़ीसा को दिया जाता है। दूसरा, बाढ़, भूकम्प व सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पीड़ितों की सहायता के लिए भी केन्द्रीय सरकार राज्यों को अनुदान दे सकती है। तीसरा, आदिम जातियों व कबीलों की उन्नति व उनके कल्याण की योजनाओं के लिए भी सहायक अनुदान दिया जाता है। चौथा, राज्य को आर्थिक कठिनाइयों से उबारने के लिए केन्द्र राज्यों की वित्तीय सहायता कर सकता है।

3. **ऋण लेने सम्बधी उपबन्ध :** संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संचित निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को प्राप्त होता हैं, परन्तु वे विदेशों से धन उधार नहीं ले सकते। यदि किसी राज्य सरकार पर संघ सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कर्ज संघ सरकार की अनुमति से ही ले सकती है। इस प्रकार का कर्ज देते समय संघ सरकार किसी भी प्रकार की शक्ति लगा सकती है।

4. **करो से विभुक्ति :** राज्यों द्वारा संघ की सम्पत्ति पर कोई प्रावधान न कर दे। भारत सरकार या रेलवे द्वारा प्रयोग में आने वाली बिजली पर संसद की अनुमति के अभाव में राज्य किसी प्रकार का शुल्क नहीं लगा सकते। इसी प्रकार संघ सरकार भी राज्य सम्पति और आय पर कर नहीं लगा सकती।

5. **भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक द्वारा नियन्त्रण :** भारत के नियन्त्रक महालेख परीक्षक की नियुक्ति केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति करता है यह भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के हिसाब का लेखा रखने के ढंग और उनकी निष्पक्ष रूप से जांच करता है। नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संघ राज्य के ऊपर अपना नियन्त्रण करती है।

6. **वित्तीय संकटकाल :** वित्तीय संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्यों की आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान आदि संघ के करों की आय में भाग बटाने से सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

निष्कर्ष में यह कहना उचित है कि भारतीय संघवाद की सामान्य प्रकृति अर्थात् 'केन्द्रीयता' के अनुकूल ही उपबन्धों की योजना हुई है। केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों की अपेक्षा वित्तीय क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है। प्रो० एम०बी० पायली के शब्दों में, ''वर्तमान स्थिति में राज्यों के पास सीमित साधन है और अपनी अधिकांश विकास योजनाओं के लिए उन्हें केन्द्र की सहायता की आवश्यकता रहती है। इसलिए उन्हें केन्द्र का नेतृत्व स्वीकार करना पड़ता है। कभी–कभी इन आदेशों के आगे भी झुकना पड़ता हैं।''

केन्द्र राज्य सम्बन्धों की विशेषताएं (Features of Centre-State Relations)

संविधान द्वारा प्रस्तुत केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का विश्लेषण करने से निम्न तथ्य उभरते हैं –

1. **शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार :** संविधान निर्माताओं ने केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्तिशाली बनाया है। वह किसी भी सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। वह अवशिष्ट शक्तियों का उपयोग कर सकती है और राज्यपालों द्वारा राज्यों पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। उसकी आय के साधन अधिक है और वह राज्यों को ऋण भी दे सकती है।
2. **राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं के समतुल्य :** संघ एवं राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण इस प्रकार किया गया है कि राज्यों की स्थिति नगरपालिका के बराबर है। जिस प्रकार नगरपालिकाएं राज्य सरकारों पर पूर्णतः निर्भर है, उसी प्रकार राज्य सरकारें भी सभी क्षेत्रों में संघ सरकार पर निर्भर है।

3. **सहयोगी संघवाद :** ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार, ''भारत की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संविधान सभा के एक विशिष्ट प्रकार के संघवाद को जन्म दिया है।'' जिसे ए०एच० बर्च ने 'सहयोगी संघवाद' की संज्ञा दी है। इस व्यवस्था में संघीय सरकार शक्तिशाली होती हैं, किन्तु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्रों में कमजोर नहीं होती साथ ही दोनों की सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता इस व्यवस्था का मुख्य लक्षण होता है।

4. **भारतीय संघ की आत्मा एकात्मक :** राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल की घोषणा किए जाने पर राज्यों की स्वायत्तता को स्थगित किया जा सकता है और इस दशा में राष्ट्रपति राज्य का सारा कामकाज अपने प्रतिनिधि राज्यपाल के माध्यम से चला सकता है। केन्द्र की शक्तियां आपातकाल में नहीं अपितु सामान्यकाल में भी बढ़ाई जा सकती है। अतः भारतीय संघ की आत्मा एकात्मक कहीं जा सकती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि केन्द्रीय सरकार की अपेक्षाकृत शक्तिशाली स्थिति ने राज्य सरकारों की स्थिति को प्रभावित किया है। किन्तु फिर भी राज्य केन्द्रीय सरकार की प्रशासनिक इकाइयां मात्र नहीं है। ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार, ''भारत नई दिल्ली नहीं है बाकि राज्यों की राजधानियाँ भी है। राज्य केन्द्रीय सहायता के आकांक्षी है, किन्तु राज्यों के सहयोग के बिना संघ बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकता। राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार की नीतियों का माध्यम हो सकती है, किन्तु उनकी सहायता के बिना केन्द्रीय सरकार अपनी योजनाओं को क्रियान्वित नहीं कर सकती। वस्तुतः दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर हैं।''

1.4.4 निष्कर्ष

निस्संदेह केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में कई नई प्रवृत्तियां तथा तनावपूर्ण परिस्थितियां पैदा हुई है, परन्तु यह कहना गलत होगा कि संविधान के अनुच्छेदों के अन्तर्गत केन्द्र और राज्य के सम्बन्ध की समस्या को परिवर्तित राजनीतिक परिस्थिति के अन्तर्गत सुलझाया ना जा सकता हो। संविधान के समुचित कार्यक्रम द्वारा केन्द्र और राज्य के सम्बन्ध को उत्तम बनाया जा सकता है।

अतः हम कह सकते है कि हमारे देश का जैसा संघीय ढांचा है, उसमें केन्द्र और राज्य दोनों की अपनी–अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। दोनों एक–दूसरे की उपेक्षा करके नहीं चल सकते। जो राज्य कुछ मामलों में अधिक स्वायत्तता की मांगे करते हैं, उनका भी हित केन्द्र के अधिकाधिक सशक्त होने में ही है। वास्तव में केन्द्र और राज्य दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं और दोनों मिलकर ही राष्ट्र की उन्नति कर सकते हैं।

1.4.5 मुख्य शब्दावली

- संघ सूची : संविधान के द्वारा शक्तियों का विभाजन करने हेतु तीन सूची निर्धारित की गई है। संघ सूची में राष्ट्रीय महत्व के विषय आते है जिन पर कानून बनाने का अधिकार संसद को है।
- अवशेष विषय : जो विषय तीनों सूचियों में नहीं है, ऐसे विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संघीय संसद को है।
- विद्यायी सम्बन्ध : केन्द्र और राज्यों के कानून निर्माण में किस तरह के सम्बन्ध है विद्यायी सम्बन्ध हमें ये जानने में मदद करते है।
- संवैधानिक संकट : जब देश के किसी राज्य में संविधान के अनुसार कार्य ना हो रहा हो अथवा सरकार द्वारा संविधान उल्लंघन किया जा रहा हो।
- अर्न्तराज्यीय परिषद् : ये परिषद् राज्यों के बीच होने वाले विवादों की जांच करके उनके सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित करने का कार्य करती है।

1.4.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में उभर रही प्रवृत्तियों का आलोचनात्मक परीक्षण करें।
2. संघ और राज्यों के वैधानिक, प्रशासनिक और वित्तीय सम्बन्धों का विस्तारपूर्वक वर्णन करो। क्या आप राज्यों को अत्याधिक शक्तियां देने के पक्ष में है ?
3. केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
4. केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में तनाव के कारणों का वर्णन कीजिए। केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों के बारे में सरकारी आयोग की सिफारिशों का उल्लेख कीजिए।
5. संघ व राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध बताइए।

6. केन्द्र–राज्य के वैधानिक सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।

7. केन्द्र व राज्य के प्रशासनिक सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।

8. सरकारिया आयोग की मुख्य सिफारिशे बताइए।

1.4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994

- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

ईकाई – 2

भारतीय न्याय व्यवस्था

2.0 ईकाई परिचय

स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका ही किसी राज्य के सभ्य व स्वतन्त्र होने की परिचायक है। किसी भी सभ्य राज्य की न्यायपालिका के अभाव में कल्पना नहीं की जा सकती।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक सर्वोच्च न्यायालय का गठन किया जिसे फौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार का क्षेत्राधिकार प्राप्त है। हमारी न्याय व्यवस्था इकहरी न्याय व्यवस्था है, जिसके शिखर पर सर्वोच्च न्यायालय है, जिसमें भारत का एक मुख्य न्यायधीश व कुछ अन्य न्यायधीश शामिल होते है। इसका क्षेत्राधिकार अत्यन्त व्यापक है। यह अभिलेख न्यायालय है और इसके क्षेत्राधिकार में प्रारम्भिक, अपीलीय और परामर्शीय सभी प्रकार के मामले आते है। भारतीय संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान की गई है लेकिन इसका क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है, जितना कि संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय का है। जनहित याचिकाओं और न्यायिक सक्रियता से इसका क्षेत्राधिकार व प्रतिष्ठा और बढ़ी है। इसी तरह से प्रान्तीय स्तर पर उच्च न्यायलयों का गठन किया है जो सर्वोच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय है। उच्च न्यायालय को भी सर्वोच्च न्यायालय की भांति लगभग सारी शक्तियां दी गई है।

2.1 उद्देश्य

- भारतीय न्यायिक व्यवस्था का संगठन कैसा है
- भारतीय न्यायपालिका क्या नागरिकों को स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्याय दिला पाने में सक्षम है
- न्यायपालिका की सबलताओं और दुर्बलताओं का मूल्यांकन
- न्यायपालिका के दोषों को पहचानना और उन्हें दूर करने के उपाय जानना
- सरकार के अन्य अंगों व न्यायपालिका के बीच सम्बन्धों का मूल्यांकन

2.2 भारत की न्याय व्यवस्था (The Judicial System of India)

(सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, न्यायिक पुनर्निरीक्षण, न्यायिक सक्रियता, जनहित याचिका एवं न्यायिक सुधार)

2.2.1 परिचय

वर्तमान युग में सीमित तथा उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्त पर आधारित संविधानवाद के विचार के साथ स्वतन्त्र न्यायपालिका लोकतंत्र की एक अनिवार्य शर्त है। कोई भी संवैधानिक व्यवस्था राज्य की सीमित शक्तियों तथा नागरिकों के परिभाषित अधिकारों के सिद्धान्त पर स्थापित होती है। स्वाभाविक रूप से उसे ऐसे माध्यम की आवश्यकता होती है जो नागरिकों के बीच होने वाले झगड़ों का निर्णय करने एवं कानून का उल्लंघन करने पर दण्ड देने के साथ संविधान द्वारा सरकार पर लगाए गए प्रतिबंधों के पालन तथा संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदान किए गए अधिकारों के उल्लंघन होने को भी देख सके। संघात्मक ढांचे में सरकार की शक्तियां न केवल सरकार तथा नागरिकों के बीच विभाजित होती है अपितु वे दो प्रकार की सरकारों के मध्य भी विभाजित रहती है। ऐसी राजनीतिक प्रणाली में एक स्वतन्त्र न्यायपालिका की जरूरत और भी अधिक हो जाती है।

भारतीय संविधान–निर्माता एक स्वतंत्र न्यायपालिका के प्रति वचनबद्ध थे। यद्यपि संसदात्मक लोकतंत्र का सिद्धान्त संसद की सर्वोच्चता पर आधारित होता हैं, लेकिन लिखित संविधान तथा संघीय व्यवस्था के साथ संसदात्मक लोकतंत्र के विचार के उद्‌भव के कारण अब संसद सर्वोच्च नहीं रही। अतः संसदीय प्रजातंत्र में भी न्यायपालिका की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो गई है।

राज्य की अन्य संरचनाओं की भांति हमें विधि एवं न्याय व्यवस्था भी औपनिवेशिक युग से उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी। अंग्रेजी औपनिवेशिक प्रशासन ने भारत में ऐंग्लो–सैक्शन विधिशास्त्र पर आधारित न्याय व्यवस्था को लागू किया था।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने इस व्यवस्था में कुछ ही परिवर्तन कर इसको अपना लिया। अब संघीय न्यायालय का नाम उच्चतम न्यायालय कर दिया गया और इसको कानून की व्याख्या का सर्वोच्च न्यायालय बना दिया। इसका यह अर्थ भी हुआ कि बहुत से संघीय न्यायालय न होकर भारत में एकरूप न्याय व्यवस्था होगी। यह पदानुक्रम के रूप में हैं। इस न्याय व्यवस्था में उच्चतम न्यायालय सबसे ऊपर खड़ा है। उच्चतम न्यायालय के नीचे प्रांतीय स्तरों पर उच्च न्यायालय विद्यमान है और उच्च न्यायालयों के नीचे दूसरे न्यायालय हैं। जिनको सहायक न्यायालय कहा जाता है।

2.2.2 उद्देश्य

- न्यायालय का गठन किए प्रकार किया जाता है
- क्या भारत की न्यायपालिका स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्याय की शक्ति रखती है
- न्यायपालिका के कार्यो, शक्तियों तथा स्थिति का मूल्यांकन
- क्या भारतीय न्यायपालिका नागरिकों के अधिकारों को सुरक्षित कर पाने में सक्षम है
- क्या न्यायपालिका संविधान का रक्षण करने में सफल रही है

2.2.3 उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं सम्बन्धित विशेष शक्तियाँ

उच्चतम न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा 33 सहायक न्यायाधीश होते हैं। प्रत्येक जज की नियुक्ति राष्ट्रपति, उच्च्तम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के साथ सलाह करके करता है। मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श करना अनिवार्य है। न्यायाधीशों का कार्यकाल 65 वर्ष की आयु तक होता है और इससे पूर्व उनको महावियोग द्वारा ही सेवानिवृत किया जा सकता है। इसके लिए संविधान की धारा 124 (4) द्वारा राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया है कि जजों के दुर्व्यवहार सिद्ध होने पर वह जजों को हटा सकता है। संसद के प्रत्येक सदन द्वारा उस सदन के बहुसंख्यक सदस्यों द्वारा पारित प्रस्ताव और उस सदन में उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत द्वारा पारित प्रस्ताव के द्वारा हो जजों को राष्ट्रपति हटा सकता है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्तियां सामान्यतः राज्यों के उच्च न्यायालयों की खण्डपीठों से की जाती है। यद्यपि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति स्वतः संवैधानिक तरीके से नहीं होती अपितु परम्परा के अनुसार पदासीन मुख्य न्यायाधीश के सेवानिवृत होने पर उसके स्थान पर वरिष्ठतम न्यायाधीश की नियुक्ति की जाती है। लेकिन इस परम्परा को 1973 में उस समय तोड़ा गया जब राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री के परामर्श पर जस्टिस ए०एन० रे के मुख्य न्यायाधीश के रूप में तीन वरिष्ठ न्यायाधीशों न्यायाधीश जे०एम० शैलेट, के०एस० हेगडे तथा ए०एन० ग्रोवर को छोड़ते हुए नियुक्त किया। इन तीनों जजों ने विरोध में त्यागपत्र दे दिये। इसके पश्चात् 1977 में जस्टिस एच०आर० खन्ना को छोड़ते हुए उनसे कनिष्ठ न्यायाधीश मिर्जा हामी दुल्लाह वेग को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। जस्टिस एच०आर० खन्ना ने भी त्यागपत्र दे दिया। इस नीति की आलोचना कई न्यायविदों ने यह कहते हुए कि यह उच्चतम न्यायालय को हतोत्साहित करने का प्रयास है।

1977 में सत्तारूढ़ शासक वर्ग न्यायापालिका की स्वतन्त्रता और उसकी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए वचनबद्ध था। अतः मुख्य न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में वरिष्ठता के सिद्धान्त को पुनः विस्तार करते हुए फरवरी 1978 में श्री वाई०वी० चन्द्रचूड़ को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया। अजीत नाप रे के कार्यकाल की समाप्ति पर तत्कालीन शासक दल के कुछ नेताओं और कुछ विख्यात विधिनेताओं ने कहा कि श्री चन्द्रचूड़ को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। उनका कहना था कि मुख्य न्यायाधीश से जिस वैचारिक स्वतन्त्रता और निष्पक्षता की आशा की जाती है, उसका उनमें दुःखद अभाव रहा है। अप्रैल 1976 बन्दी प्रतिक्षकरण (Habeas Corpus) के मामले में उन्होंने साहसपूर्ण निर्णय नहीं दिया। बी०एम० तारकुण्डे के अनुसार, बन्दी प्रत्यक्षीकरण मामले में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला कानूनी दृष्टि से तो कमजोर है ही, जनता और देश के लिए भी एक गम्भीरतम खतरे से भरा है। वह न्याय की धारणा का भी मखौल है।'' श्री छागला के द्वारा भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया गया लेकिन इस प्रकार की आपत्तियों को अस्वीकार करते हुए सरकार द्वारा सोचा गया कि मुख्य न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में

सुनिश्चित परम्पराओं को अपनाया जाना चाहिए। शासन का यह कार्य न्यायपालिका की स्वतन्त्रता तथा उसके सम्मान के बनाए रखने की दृष्टि से उचित है। वस्तुतः मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त निश्चित किये जाने चाहिए, जिससे कि न्यायिक क्षेत्र की इन सर्वोच्च नियुक्तियों के सम्बन्ध में शासन के द्वारा मनमाना आचरण न किया जा सके और न्यायाधीश पद पर न्यायाधीश पदधारी व्यक्ति विवाद के विषय न बनें। विधि आयोग ने भी अपनी 80वीं रिर्पोट में कहा है कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में वरिष्ठता के सिद्धान्त का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की रक्ष और लोकतन्त्र के सुचारू संचालन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में वर्तमान प्रक्रिया–संविधान के अनुच्छेद 124 में प्रावधान है कि सर्वोच्च न्यायालय की नियुक्ति में राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श अवश्य लेगा। इस बात को लेकर विवाद था कि क्या राष्ट्रपति अकेले मुख्य न्यायाधीश के परामर्श को मानने के लिए बाध्य हैं। इस विवाद के समाधान हेतु राष्ट्रपति द्वारा जुलाई 1998 में एक सन्दर्भ (Reference) सर्वोच्च न्यायालय को भेजा गया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस संदर्भ पर 28 अक्टूबर 1978 को लिए गए निर्णय के आधार पर अब सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया इस प्रकार है – राष्ट्रपति द्वारा ये नियुक्तियां सर्वोच्च न्यायालय से प्राप्त परामर्श के आधार पर की जाएगी। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश इस प्रसंग में राष्ट्रपति का परामर्श देने से पूर्व 'चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह' से लिखित परामर्श प्राप्त करेंगे तथा इस परामर्श के आधार पर राष्ट्रपति को परामर्श देंगे। सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने अपने सर्वसम्मत निर्णय में कहा है कि ''वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह को एकमत से और लिखित में सिफारिश करनी चाहिए। जब तक न्यायाधीशों के समूह की राय मुख्य न्यायाधीश के विचार से मेल न खाए, तब तक मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति से कोई सिफारिश नहीं जानी चाहिए।''

सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया है कि ''यदि भारत के मुख्य न्यायाधीश परामर्श की प्रक्रिया पूरी किए बिना न्यायाधीशों की नियुक्ति और उच्च न्यायालयों के

न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को सिफारिश करते हैं तो सरकार ऐसी सिफारिश मानने के लिए बाध्य नहीं हैं।''

सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ (Prowers of the Supreme Court) : संघात्मक संविधान में संघात्मक न्यायालय का विशेष स्थान प्राप्त होता है। ताकि संतुलन कायम किया जा सके और संविधान की सर्वोच्च और केन्द्र तथा इकाईयों को अपने–अपने क्षेत्र में स्वायत्तता (Autonomy) कायम की जा सके।

संविधान ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय को बहुत–सी शक्तियाँ प्रदान की हैं। कुछ लेखक तो भारत के सर्वोच्च न्यायालय को अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक शक्तिशाली बताते हैं। श्री अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर का कहना है, भारत के सर्वोच्च न्यायालय को संसार के किसी भी अन्य सर्वोच्च न्यायालय से अधिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है, संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक (The Supreme Court of India has wider Jusridiction that the highest court in any Federation of the world including the Supreme court of USA)।

भारत के न्यायालय को वास्तव में बहुत रूपी शक्तियाँ दी गई हैं, जिनका पता निम्नलिखित बातों से लता है –

1. प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)

सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार को दो वर्गो में रखा जा सकता है –

(क) प्रारम्भिक सत्यमेव क्षेत्राधिकार (Original Exclusive Jurisdictions) : श्री दुर्गादास बसु का कहना है कि ''यद्यपि हमारा संविधान एक सन्धि या समझौते के रूप में नहीं है, फिर भी संघ तथा राज्यों के बीच व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकारों का विभाजन किया गया है। अतः अनुच्छेद 131 संघ तथा राज्यों या राज्यों के बीच न्याय–योग्य विवादों के निर्णय का प्रारम्भिक तथा सत्यमेव क्षेत्राधिकार सर्वोच्च न्यायालय को सौंपता है।'' सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक सत्यमेव क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत निम्न विषय आते है –

1. भारत सरकार तथा एक या एक से अधिक राज्यों के बीच विवाद।
2. भारत सरकार राज्य या कई राज्यों तथा एक या अधिक राज्यों के बीच विवाद।

3. दो या दो से अधिक राज्यों के बीच विवाद, जिसमें कोई ऐसा प्रश्न अन्तर्निहित हो जिस पर किसी वैध अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर हो। न्यायालय से इस अधिकार के सम्बन्ध में निर्णय की याचना की जानी चाहिए।

सर्वोच्च न्यायालय को केवल संघ सरकार तथा राज्य सरकारों के पारस्परिक विवादों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक सत्यमेव क्षेत्राधिकार प्राप्त है अर्थात् उपयुक्त प्रकार के विवाद केवल सर्वोच्च न्यायालय में ही उपस्थित किये जा सकते है। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि 26 जनवरी, 1956 के पूर्व जो सन्धियाँ और संविदाएं भारत संघ और देशी राज्यों के बीच की गयी थी और यदि वे इस समय भी लागू है तो उनके उपर उत्पन्न हुआ विवाद सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के बाहर है।

(ख) समवर्ती प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Concurrent Original Juridictions) : संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को लागू करने के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के साथ–साथ उच्च न्यायालयों को भी अधिकार प्रदान किया गया है संविधान के अनुच्छेद 32 (1) के द्वारा विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय को उत्तरदायी ठहराया गया है कि वह ''मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए समुचित कार्यवाही करे।'' इस प्रकार मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय किसी के द्वारा आवश्यक कार्यवाही की जा सकती है।

2. अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdications)

सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के साथ–साथ संविधान ने अपीलीय क्षेत्राधिकार भी प्रदान किया है। उसे समस्त राज्यों के उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरूद्ध अपील सुनने का अधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित चार वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

1. **संवैधानिक (Contitutional) :** संविधान के अनुच्छेद 132 के अनुसार यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विवाद में संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित कानून का कोई सारमय प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, तो उच्च न्यायालय के निर्णय की अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है। यदि राज्य के उच्च न्यायालय ने ऐसा प्रमाणपत्र देना अस्वीकार कर दिया है तो सर्वोच्च न्यायालय

को अधिकार प्राप्त है कि वह ऐसी अपील की अनुमति प्रदान कर सकता है यदि उसको यह विश्वास है कि उस विषय में संविधान की व्याख्या का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न निहित है।

2. **दीवानी (Civil)** : इस सम्बन्ध में मूल संविधान के अन्तर्गत जो व्यवस्था थी, उसे 1972 में हुए संविधान के 30वें संशोधन द्वारा परिवर्तित कर दिया गया है। इसके पूर्व यह व्यवस्था थी कि उच्च न्यायालय से सर्वोच्च न्यायालय में केवल ऐसे ही दीवानी विवादों की अपील की जा सकती थी। जिसमें विवादग्रस्त राशि 20000 रूपये से अधिक हो। इस व्यवस्था के सम्बन्ध में विधि आयोग ने अपनी सिफारिश में कहा कि दीवानी विवादों की सर्वोच्च न्यायालय में अपील के सम्बन्ध में धनराशि की जो सीमा है, वह हटा दी जानी चाहिए। इस सिफारिश के अनुसार 30वां संवैधानिक संशोधन किया गया, जिसके द्वारा अनुच्छेद 133 को संशोधित करते हुए अब धनराशि की सीमा हटा दी गयी है और यह निश्चित किया गया है उच्च न्यायालय से सर्वोच्च न्यायालय में ऐसे सभी दीवानी विवादों की अपील की जा सकेगी जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा यह प्रमाणित कर दिया जाए कि इस विवाद में कानून की व्याख्या से सम्बन्धित सारपूर्ण प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। 30वें संशोधन द्वारा की गयी यह व्यवस्था निश्चित रूप से अधिक उचित और तर्कपूर्ण है।

3. **फौजदारी (Criminal)** : संविधान सभा में सी०पी०के० सेन और अन्य कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया था कि ''मृत्युदण्ड के सभी मामलों में सर्वोच्च न्यायालय को अपील का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।'' लेकिन सी०के०एम० मुन्शी और अन्य सदस्यों ने यह तर्क दिया कि इससे सर्वोच्च न्यायालय का कार्यभार बहुत अधिक बढ़ जायेगा और इंग्लैंड आदि देशों में भी इस प्रकार की व्यवस्था नहीं है। वर्तमान वैधानिक व्यवस्था श्री मुन्शी के विचार के अनुरूप ही है।

फौजदारी विवादों में उच्च न्यायालय के निर्णय की अपील निम्न विषयों में सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है –

- यदि उच्च न्यायालय ने अपील प्रस्तुत होने पर किसी व्यक्ति की उन्मुति आदेश रद्द कर उसे मृत्युदण्ड दे दिया हो।
- उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायालय से अभियोग विचारार्थ अपने पास मंगवाकर अभियुक्त को प्राणदण्ड दिया हो।
- अगर उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विवाद सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार के योग्य है, तो अपील की जा सकती है।

4. **विशिष्ट (Special Appeals)** : यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 132 से 134 तक उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की व्यवस्था की गयी है, लेकिन फिर भी कुछ मामले ऐसे हो सकते है, जो उपयुक्त श्रेणी में नहीं आते, लेकिन जिसमें सर्वोच्च न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक हो सकता है। अतः अनुच्छेद 136 द्वारा साधारण कानून से भिन्न अपील सम्बन्धी विशिष्ट अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को सौंपा गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार, ''इस अध्याय के किसी उपबन्ध के होते हुए भी सर्वोच्च न्यायालय भारत के राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत किसी भी न्यायालय अथवा न्यायाधीकरण द्वारा दिये गये किसी भी निर्णय, आज्ञाति निर्धारण, दण्ड या आदेश की अनुमति प्रदान कर सकता है। इस सम्बन्ध में एकमात्र अपवाद केवल यह है कि सैनिक न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती है।'' सर्वोच्च न्यायालय को यह जो विशिष्ट शक्ति प्रदान की गयी है, उसके द्वारा इसका प्रयोग असाधारण परिस्थितियों में ही किया जा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय को अब तक भारतीय संघ के सभी पदाधिकारियों के चुनाव सम्बन्धी विवादों पर निर्णय देने का अधिकार प्राप्त था। 39वें संवैधानिक संशोधन (अगस्त 1975) के आधार पर व्यवस्था की गयी कि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष और प्रधानमंत्री इन चार उच्च पदाधिकारियों के चुनाव को उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। 44वें संवैधानिक संशोधन (अप्रैल 1978) द्वारा 39वें संवैधानिक संशोधन को रद्द कर दिया गया और अब उच्चतम

न्यायालय तथा उच्च न्यायालय उपयुक्त चार उच्च पदाधिकारियों के चुनाव विवादों की उसी प्रकार से सुनवाई कर सकते है जिस प्रकार से उसके द्वारा यह कार्य 42वें संवैधानिक संशोधन के पूर्व किया जाता था।

3. परमर्शीय क्षेत्राधिकार (Advisiory Jurisdictions)

संविधान ने उच्चतम न्यायालय को परमार्श सम्बन्धी क्षेत्राधिकार से विभूषित किया है। अनुच्छेद 143 के अनुसार यदि कभी राष्ट्रपति को प्रतीत हो कि विधि या तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न पैदा हुआ है, जो सार्वजनिक महत्व का है, तो वह उन प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय का परामर्श मांग सकता है। इस न्यायालय पर संवैधानिक दृष्टि से ऐसी कोई बाध्यता नहीं है कि उसे परामर्श देना ही पड़ेगा।

अनुच्छेद 143 का खण्ड 2 राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह संविधान के लागू होने के पूर्व किसी संधि, समझौते आदि के सम्बन्ध में उठे विवादों को इस न्यायालय के पास उसकी समति जानने के लिए भेज सके। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से 1949 और 1950 के बीच हुए भारत सरकार और देशी रियासतों के समझौते आते है, ऐसे विवादों में न्यायालय के लिए परामर्श देना अनिवार्य है और न्यायालय के परामर्श को स्वीकार या अस्वीकार करना राष्ट्रपति के विवेक पर निर्भर करता है।

उच्चतम न्यायालय का परामर्श सम्बन्धी क्षेत्राधिकार मुक्कदमेंबाजी को रोकने और उसे काफी सीमा तक कम करने में सहायक होता है। लेकिन संयुक्त राज्य अमरीका और आस्ट्रेलिया के उच्चतम न्यायालयों द्वारा सलाहकारी भूमिका अदा करना पसन्द नहीं किया गया है। इस सम्बन्ध में भारत की व्यवस्था ब्रिटेन, कनाडा और बर्मा के अनुरूप है।

सर्वोच्च न्यायालय के उपयुक्त क्षेत्राधिकार के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अग्रलिखित अन्य रूपों में कार्य किया जाता है।

4. अभिलेख न्यायालय (Court of Recosel)

अनुच्छेद 129 उच्चतम न्यायालय को अभिलेख न्यायालय का स्थान प्रदान करता है। अभिलेख न्यायालय के दो आशय है –

- इस न्यायालय के अभिलेख सब जगह सादगी के रूप में स्वीकार किये जाते हैं और उन्हें किसी भी न्यायालय में प्रस्तुत किये जाने पर उनकी प्रामाणिकता के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता।
- इस न्यायालय के द्वारा न्यायालय अपमान (Contept of Court) के लिए दण्ड दिया जा सकता है। वैसे तो यह बात प्रथम स्थिति में स्वतः ही मान्य हो जाती है, लेकिन भारतीय संविधान में सर्वोच्च न्यायालय को उसका अपमान करने वालों को यह दण्ड देने की व्यवस्था विशिष्ट रूप से कर दी गयी है।

5. मौलिक अधिकारों का अभिरक्षक (Guardian of Fundamental Rights)

भारत का उच्चतम न्यायालय नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अभिरक्षक हैं। अनुच्छेद 32 (1) उच्चतम न्यायालय को विशेष रूप से उत्तरदायी ठहराता है कि वह ''मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए समुचित कार्यवाही करें।'' न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए बन्दी प्रत्यक्षकिरण, परमादेश, प्रतिबंध, अधिकार प्रच्छा और उत्प्रेषण के लेख जारी कर सकता है। किसी व्यक्ति के अधिकारों का अतिक्रमण होने पर वह उच्चतम न्यायालय की शरण ले सकता है। उच्चतम न्यायालय के अब तक के कार्य के आधार पर निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा के प्रति सदा सजग रहा है तथा इस कार्य में यह सफल भी रहा है।

इस सबके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) की शक्ति प्राप्त है।

उच्च न्यायालय (High Court)

न्याय प्रणाली में संविधान ने प्रांतीय स्तर पर सबसे ऊपर उच्च न्यायालय की व्यवस्था की है। संविधान की धारा 125 का कहना है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय होगा। लेकिन दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक सामूहिक उच्च न्यायालय की स्थापना का अधिकार भी संसद को प्राप्त है। ठीक इसी प्रकार से केन्द्र शासित राज्यों के लिए संसद उच्च न्यायालय के क्षेत्र का विस्तार कर सकती है या फिर केन्द्र शासित राज्य के लिए नवीन उच्च न्यायालय की स्थापना भी कर सकती है।

उच्च न्यायालय के जजों की नियुक्तियां सामान्यता उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, राज्य के मुख्य न्यायाधीश तथा राज्य के राज्यपाल के साथ परामर्श कर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उच्च न्यायालय के जजों की संख्या एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न–भिन्न होती है, जजों का एक उच्च न्यायालय से दूसरे राज्य के उच्च न्यायालय में तबादला किया जा सकता है। सितम्बर 1972 में मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलन में यह सुझाव दिया गया कि एक नीति के तहत किसी भी राज्य के उच्च न्यायालय के जजों की कुल संख्या का एक तिहाई राज्य के बाहर से होगा।

इस स्थानान्तरण की नीति ने भी वाद–विवाद को जन्म दिया है। स्थानान्तरण की इस नीति के पद में यह तर्क दिया जाता है कि उच्च न्यायालयों में प्रैक्टिस करने वाले वकीलों में न्यायाधीशों के रिश्तेदारों की संख्या के बढ़ने के कारण सामान्यतः निष्पक्ष न्याय की सम्भावना कम हो गयी है, लेकिन इस नीति का विरोध करने वालों का तर्क है कि स्थानान्तरण करने की शक्ति का दुरूपयोग हो सकता है और कई न्यायाधीश किसी शक्तिशाली गुट का शिकार हो सकता है। इन दोनों तर्को में ही सार है।

जहाँ तक सहायक न्यायालयों में नियुक्तियों का प्रश्न है भारतीय न्यायपालिका एक व्यवसायिक सेवा है। राज्य की न्यायिक सेवा के लिए प्रत्याशी कम से कम तीन वर्ष की वकालत का अनुभव प्राप्त करने पर प्रतियोगिता परीक्षा में बैठते हैं। सफल प्रत्याशियों को सेवा में नियुक्ति से पूर्व विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। भारतीय प्रतिवादी अदालतें न केवल व्यवसायिक सेवा प्रत्याशियों से भरी जाती है अपितु इसके कर्मचारियों में अमेरिकी न्यायपालिका की भांति वकालत का पेशा करने वाले वकील भी रहते हैं। छोटी अदालतों में केवल कैरियर सेवा वाले जजों को नियुक्त किया जाता है।

उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार एवं शक्तियां

(Jurisdiction and Powers of the High Court)

उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है –

1. न्याय सम्बन्धी अधिकार (Judicial Power)

2. प्रशासन सम्बन्धी अधिकार (Administrative Power)

1. **न्याय सम्बन्धी अधिकार (Judicial Power)**

न्याय सम्बन्धी अधिकारों को तीन भागों में बांटा जा सकता है –

- **प्रारंभिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdictions)** : मुंबई और मद्रास उच्च न्यायालयों में कुछ बड़े दीवानी व फौजदारी मुकदमें प्रथम बार में ही सीधे पेश किए जा सकते हैं। उनके लिए यह आवश्यक नहीं कि वे पहले अधीन न्यायालयों में पेश किए जाए जैसा कि अन्य राज्यों में पाया जाता है। अन्य राज्यों के उच्च न्यायालयों को केवल नौकाधिकरण (Admiralite), वसीयत, विवाह विच्छेद, विवाह विधि, कंपनी विधि आदि के विषय में ही प्रारंभिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है।
- उच्च न्यायालय नागरिकों के मौलिक अधिकारों का भी रक्षक है। यदि किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों पर आघात होता है, तो वह नागरिक सीधा उच्चतम न्यायालय में प्रार्थना पत्र दे सकता है अथवा उच्च न्यायालय में। उच्च न्यायालय कई लेखों (writs) जैसे बंदी प्रत्यक्षीकरण (writ of habeas corpus), परमादेश (write of Mandamcy) प्रतिषेध (writ of Prohibition), उत्प्रेक्षण (write of Cetorari), पृच्छा लेख (writ of Quo-warantio) के द्वारा नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है। इन लेखों को जारी करने का अधिकार अन्य सब कार्यो के लिए भी है।
- **न्यायिक पुनर्निरीक्षण का अधिकार (Power of Judicial Review)** : भारत में संघीय संविधान होने के कारण संविधान सर्वोच्च है। इसकी कामना करने तथा रक्षा करने का दायित्व उच्चतम व उच्च न्यायालयों को है। इस कारण उच्च न्यायालय राज्य की विधान पालिका के कानूनों तथा कार्यपालिका की आज्ञाओं की वैधानिकता की जांच करते है तथा संविधान के अनुकूल न होने पर उन्हें अवैध घोषित कर सकते हैं। इसको न्यायिक पुनर्निरीक्षण का अधिकार कहते हैं। 43वें संशोधन द्वारा केंद्रीय कानून भी इस परिधि में आ गए है।

2. अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)

सभी उच्च न्यायालयों को अपने अधीन न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध अपील सुनने का अधिकार है। ये अपीलें (क) दीवानी और (ख) फौजदारी मामलों में सुनी जा सकती है।

(क) **दीवानी (Civil)** : दीवानी मामलों में उच्च न्यायालयों में कोई भी अपील या पहली अपील होगी अथवा दूसरी अपील। पहली अपील का अर्थ यह है कि जिला न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध सीधे उच्च न्यायालयों में अपील की जा सकती है ऐसा तब ही हो सकता है जब उस मुकदमें में कानून का कोई गहरा प्रश्न उठाया हुआ हो। दूसरे, जब एक अपील जिले का न्यायालय सुन चुका है तो उसके निर्णय के विरूद्ध भी अपील उच्च न्यायालय में हो सकती है परन्तु उसमें कोई कानूनी प्रश्न उलझा होना चाहिए। उच्च न्यायालय में पहली तथा दूसरी अपीलीय क्षेत्राधिकार के अंतर्गत यदि उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने अपील सुनी है तो उसके निर्णय के विरूद्ध उच्च न्यायालय में फिर अपील हो सकती है। ऐसी स्थिति में कई न्यायाधीश अपील सुनते हैं।

उच्च न्यायालय आयकर, बिक्री कर तथा अन्य राजस्व सम्बन्धी मामलों में भी निचलें न्यायालयों के निर्णय के विरूद्ध अपील सुन सकता है।

(ख) फौजदारी मुकदमों में निम्नलिखित मामलों में निचले न्यायालयों के निर्णय के विरूद्ध अपील उच्च न्यायालय में हो सकती है –

- यदि सैशन जज ने किसी अपराधी को मृत्यु दंड दिया हो तो उसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा होनी चाहिए। यह अपराधी स्वयं भी उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है।
- यदि निचले न्यायालय ने किसी अपराधी को 4 वर्ष या इससे अधिक की सजा दी हो।
- किसी प्रैसीडेंसी मजिस्ट्रेट के निर्णय के विरूद्ध अपील उच्च न्यायालय में ही होगी।

3. अभिलेख न्यायालय (Court of Record)

उच्च न्यायालय भी उच्चतम न्याायलय की तरह एक अभिलेख न्यायालय है। इसका अर्थ है कि इसके निर्णय प्रमाण के रूप में अन्य न्यायालयों में पेश किए जा सकते हैं। उन्हें इसी प्रकार मान्यता मिलती है जिस प्रकार से अन्य कानूनों को मिलती है। उस राज्य के अन्य न्यायालयों में इसके निर्णय मान्य होंगे।

प्रशासन सम्बन्धी अधिकार (Administrative Powers)

उच्च न्यायालय को न्याय सम्बन्धी अधिकारों के अतिरिक्त कुछ शासन सम्बन्धी अधिकार भी प्राप्त हैं –

- वह अपने अधीन किसी भी न्यायालय के कागजों को मंगवाकर उनकी जांच–पड़ताल कर सकता है।
- उच्च न्यायालय को राज्य के अन्य सभी न्यायालयों पर नियंत्रण रखने तथा उनका निरीक्षण करने का अधिकार है।
- उच्च न्यायालय अपने अधीन न्यायालयों की कार्यवाही के सम्बन्ध में नियम बना सकता है और उनमें परिवर्तन कर सकता है।
- किसी मुकदमें को एक न्यायालय से हटाकर निर्णय के लिए दूसरे न्यायालय में भेज सकता है।
- यदि किसी निचले न्यायालय में कोई ऐसा मुकदमा चल रहा है, जिसमें भारतीय संविधान की धारणा से सम्बन्धित कोई प्रश्न है तो उच्च न्यायालय उस मुकदमें को अपने पास मंगवा सकता है और उसका निर्णय कर सकता है।
- उच्च न्यायालय अपने अधीन न्यायालयों के कलर्क, वकील तथा अन्य कर्मचारियों की फीस निश्चित करता है।
- उच्च न्यायालय अपने अधीन न्यायालयों के अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति, उन्नति, अवनति तथा छुट्टी आदि के बारे में नियम बनाता है।
- उच्च न्यायालय अपने अधीन न्यायालयों की कार्य–पद्धति, रिकार्ड रजिस्टर बना सकता है तथा हिसाब–किताब देख सकता है।

- उच्च न्यायालय के यह अधिकार है कि यदि उस राज्य के विधानमण्डल ने कोई ऐसा कानून बनाया है जो संविधान के विरूद्ध है तो मामला उच्च न्यायालय में लाये जाने पर यह उसे अवैध घोषित कर सकता है।
- उच्च न्यायालय अपने अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति करता है और उनकी सेवा शर्तो को निश्चित करता है। इस कार्य में यह लोक सेवा आयोग का परामर्श ले सकता है।

भारत ने न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review in India)

न्यायिक पुनर्विलोकन से अभिप्रायः है न्यायालय द्वारा कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के कार्यो की वैधता की जांच करना अर्थात् न्यायालय द्वारा कानून तथा प्रशासनिक नीतियों की संवैधानिकता की जांच तथा ऐसे कानूनों एवं नीतियों को असंवैधानिक घोषित करना जो संविधान के किसी अनुच्छेद का अतिक्रमण करती हैं। कारविन के शब्दों में, ''न्यायिक पुनर्विलोकन का अर्थ न्यायालयों की उस शक्ति से है, जो उन्हें अपने न्याय–क्षेत्र के अन्तर्गत लागू होने वाले व्यवस्थापिका के कानूनों की वैधानिकता का निर्णय देने के सम्बन्ध में प्राप्त हैं, जिन्हें वे अवैध और व्यर्थ समझें।''

भारतीय संविधान के अनेक प्रावधानों में न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार का सुदृढ़ आधार उपलब्ध है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संविधान निर्माता सर्वोच्च न्यायालय को ऐसा अधिकार सौंपने के इच्छुक रहे हैं।

अनुच्छेद 13 में यह प्रावधान किया गया है कि यदि किसी कानून द्वारा राज्य मूल अधिकारों का उल्लंघन करता है तो उस कानून को अवैध घोषित किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 32 द्वारा अपने मूल अधिकारों का उल्लंघन होने पर कोई भी नागरिक संवैधानिक उपचार प्राप्त करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकता है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों के संरक्षणन के लिए कार्यपालिका और संसद के द्वारा निर्मित कानूनों का पुनर्विलोकन कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 246 के अन्तर्गत संघ और राज्यों की विधायी सीमा का उल्लेख किया गया है। उच्चतम न्यायालय ऐसे किसी भी कानून को अवैध घोषित कर सकता है। जिससे संघ अथवा राज्यों ने अपने क्षेत्राधिकार को तोड़ा हो। इसका अभिप्रायः यह

है कि यदि संघ–सूची के विषयों पर कोई राज्य कानून बनाता है तो वह कार्य संविधान के प्रतिकूल होगा और उच्चतम न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित करना।

संविधान के अनुच्छेद 254 में यह प्रावधान किया गया है कि समवर्ती सूची के किसी विषय पर यदि किसी राज्य विधानसभा द्वारा निर्मित कानून संघ संसद द्वारा निर्मित किसी कानून से संघर्ष में है तो राज्य का कानून अवैध माना जायेगा।

संविधान के अनुच्छेद 368 के अनुसार संविधान में संशोधन का अधिकार एकमात्र केन्द्रीय संसद को ही प्रदान नहीं किया गया है अपितु उसमें राज्य विधानसभाओं की भी निश्चित भूमिका का उल्लेख है। यदि कोई संशोधन विधान की प्रक्रिया के अनुसार नहीं होता तो न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकता है।

संविधान के अनुच्छेद 132 के अनुसार ऐसे मामले में जहां संविधान की व्याख्या का प्रश्न निहित है, उच्चतम न्यायालय का प्रश्न निहित है, उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। अतः यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय को संवैधानिक मामलों पर निर्णय देने का अन्तिम अधिकार है।

प्रकृति और सीमाएं (Nature and Limitation)

यद्यपि भारतीय संविधान द्वारा उच्चतम न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान की गयी है, फिर भी भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन का क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है। जितना कि वह संयुक्त राज्य अमरीका में है। वस्तुतः ऐसे कुछ कारण है जिन्होंने भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था की व्यवस्था को संयुक्त राज्य अमरीका की तुलना में सीमित कर दिया है।

पहला, अमरीकी संविधान अत्याधिक संक्षिप्त है और संविधान की इस संक्षिप्तता के कारण संघीय शासन और इकाइयों के बीच विभिन्न प्रकार के विवाद उत्पन्न होते रहते है और इसके परिणाम स्वरूप उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन का क्षेत्र इस बात के कारण अपेक्षाकृत सीमित है कि भारत के संविधान में संघ और राज्यों के मध्य कानून निर्माण की शक्तियों का विभाजन पर्याप्त विस्तार के साथ कर दिया गया। संघ और राज्यों के मध्य संघर्ष की स्थिति को कम–से–कम करने के लिए एक समवर्ती

सूची की व्यवस्था की गयी है, जिसके सम्बन्ध में अन्तिम शक्ति केन्द्र को प्राप्त है। इन विस्तृत उपबन्धों के कारण मुकदमेंबाजी और दूसरे शब्दों में न्यायिक पुनर्विलोकन का क्षेत्र सीमित हो गया है।

दूसरा, अमरीका का अधिकार पर निरपेक्ष (Absolute) शब्दावली में लिखा गया है, लेकिन मानवीय अधिकारों की प्रकृति ही ऐसी है कि वे निरपेक्ष नहीं हो सकते। अतः इन अधिकारों के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए, पुलिस शक्ति (Police Power) और सामान्य कल्याण (General Welfare) जैसे शब्दों का आश्रय लिया गया। कार्यपालिका 'पुलिस शक्ति' और 'सामान्य कल्याण' के आधार पर अधिकारों की सीमा निश्चित कर सकती है और उच्चतम न्यायालय इस बात की जांच करता है कि कार्यपालिका ने अपनी शक्ति का प्रयोग उचित रूप में किया है अथवा नहीं। इस प्रकार अमरीकी संविधान के 'पुलिस शक्ति' और 'सामान्य कल्याण' जैसे शब्दों ने उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को बहुत व्यापक कर दिया है, लेकिन भारतीय संविधान निर्माता भारत में ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होने देना चाहते थे। इसलिए भारत में प्रत्येक मौलिक अधिकार के साथ–साथ उनकी सीमाएं भी संविधान में ही निश्चित कर दी गयी है और इससे न्यायिक पुनर्विलोकन का क्षेत्र सीमित हो गया है।

अन्तिम, सर्वाधिक महत्वपूर्ण अन्तर इन दोनों देशों की संवैधानिक व्यवस्थाओं में ही निहित है। अमरीकी, संविधान में 'कानून की उचित प्रक्रिया' (Due Porcess of Law) शब्दावली को अपनाया गया है, लेकिन भारतीय संविधान में अमरीकी संविधान की शब्दावली के स्थान पर जापानी संविधान की शब्दावली 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure Stablished by Law) को अपनाया गया है संविधान में की गयी इस व्यवस्था के आधार पर अमरीकी उच्चतम न्यायालय किसी भी कानून की वैधानिकता की जांच दो बातों के आधार पर कर सकता है – (1) संघ या राज्य, जिसके भी विधानमण्डल ने उस कानून को बनाया है, उसके द्वारा इसका निर्माण उसकी कानून निर्माण की क्षमता के अन्तर्गत था भी या नहीं। (2) वह कानून की उचित प्रक्रिया की शर्तो को पूरा करता है अथवा नहीं। इस प्रकार यदि विधानमण्डल द्वारा बनाया गया कोई कानून पूर्णतया उसकी शक्तियों के अन्तर्गत हो, तो यदि वह

कानून की उचित प्रक्रिया के अर्थात् प्राकृतिक न्याय के कुछ सर्वमान्य सिद्धान्तों के विरूद्ध हो, तो उसे उच्चतम न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है, लेकिन भारतीय संविधान में 'कानून की उचित प्रक्रिया' की शब्दावली के स्थान पर 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' की जापानी शब्दावली के अपनाया गया है। इसका अर्थ यह है कि भारत का उच्चतम न्यायालय संघीय या राज्य–विधानमण्डल द्वारा निर्मित किसी कानून को असंवैधानिक तभी घोषित कर सकता है, जबकि सम्बन्धित विधानमण्डल ने इस कानून का निर्माण करने में अपनी कानून निर्माण की क्षमता का उल्लंघन किया हो। महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत का उच्चतम न्यायालय यह निश्चित करने में की अमुक कानून संवैधानिक है या नहीं प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों को या उचित–अनुचित की अपनी धारणाओं को लागू नहीं कर सकता। यदि हमारे साथ राज्य के विधानमण्डल द्वारा बनाया गया कोई कानून ऐसा है जिसका निर्माण करने में वह सक्षम है, तो उनकी संवैधानिकता को चुनौती देना भारत के उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बाहर की बात है।

भारत के न्यायिक पुनर्विलोकन की जो सीमाएं हैं, उसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है – ''भारत में किसी कानून को केवल इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता कि वह न्यायालय की सम्मति में स्वतन्त्रता या संविधान की भावना के किसी सिद्धान्त का अतिक्रमण करता है जब तक कि वे सिद्धान्त संविधान में समानिष्ठ न हो किसी संविधि की संवैधानिकता का निर्णय देते हुए न्यायालय को कानून की बुद्धिमता या बुद्धिहीनता, उसके न्याय या अन्याय से कोई सम्बन्ध नहीं है।''

न्यायिक पुनर्विलोकन की आलोचना (Criticism of the Judicial Review)

न्यायिक पुनर्विलोकन की आलोचना के प्रमुख आधार इस प्रकार है –

1. **अनुदारवादी शक्ति के रूप में कार्य (It Acts as Conservative Force) :** इसमें सन्देह नहीं कि उच्चतम न्यायालय ने अब तक व्यापक स्वतन्त्रता और नागरिक अधिकारों के रक्षक के रूप में कार्य किया है, लेकिन यह भी तथ्य है कि सम्पति सम्बन्धी प्रश्नों पर इसने एक अनुदारवादी न्यायालय और शक्ति के रूप में कार्य किया। 1950–51 में इसने जमींदार और जागीरदारी उन्मूलन के

अन्तर्गत पारित कुछ भूमि सुधार कानूनों को अवैध ठहराया। उच्चतम न्यायालय ने अपनी अनुदारवादिता का सर्वाधिक परिचय 1967 के 'गोलकनाथ विवाद' में 6–5 के बहुमत से यह निर्णय दिया कि संसद ऐसा कोई अधिनियम पारित नहीं कर सकती, जो मौलिक अधिकारों को छीनता या सीमित करता हो। कुछ विधि विशेषज्ञों और संतुलित दृष्टिकोण रखने वाले संसद सदस्यों द्वारा भी उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय की आलोचना की गयी।

2. **उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने पूर्व–निर्णयों में परिवर्तन (Supreme Court Changes its Previous Decisions)** : उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन के प्रयोग पर एक प्रमुख आपत्ति यह की जाती है कि उच्चतम न्यायालय अपने पूर्व निर्णयों में अनवरत परिवर्तन करता रहा है, जिसके परिणामस्वरूप संवैधानिक कानून की समान आस्थाओं के प्रति भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को वैधानिक दृष्टि से यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने निर्णयों पर पुनर्विचार कर उनमें परिवर्तन कर सकें और न्यायमूर्ति हेगड़े इसे 'न्यायिक पुनर्विलोकन का अनिवार्य अंग मानते हैं। लेकिन 1967–73 के काल में उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्व–निर्णयों को जिस प्रकार से परिवर्तित किया है, उसे उचित नहीं कहा जा सकता है।

3. **संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण (Encroachment of Constitutional Limitations)** : उच्चतम न्यायालय द्वारा 1967–71 के काल में जिस प्रकार से न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग किया गया उससे यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय ने अपनी संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए भारतीय राज व्यवस्था में एक भूमिका अदा करने की चेष्टा की जो संविधान–निर्माता उसे नहीं देना चाहते थे। भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन को अपनाते हुए की इसकी सीमाएं निर्धारत की गई हैं और भारतीय संविधान में न्यायिक पुनर्विलोकन उस विस्तार तक नहीं है, जिस विस्तार तक यह व्यवस्था अमरीका में हैं।

4. **सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन की अस्थिरता :** न्यायिक पुनर्विलोकन के कारण सदैव ही इस बात का भय रहता है कि संसद द्वारा निर्मित कानून और शासन द्वारा अपनायी गयी नीति न्यायपालिका द्वारा अवैध घोषित की जा सकती है। ऐसी स्थिति में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में अस्थिरता का वातावरण बना रहता है। जोकि निश्चित रूप से समस्त व्यवस्था के लिए बहुत अधिक हानिकारक है। न्यायिक पुनर्विलोकन के आलोचकों का कथन है कि न्यायपालिका के द्वारा अपने आपको कानूनी प्रश्नों तक सीमित रखा जाना चाहिए।

5. **संसद और न्यायपालिका के बीच संघर्ष की स्थिति को जन्म :** न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के कारण जब संसद द्वारा निर्मित कानूनों को न्यायपालिका के द्वारा असंवैधानिक घोषित कर दिया जाता है तो संसद और न्यायपालिका के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा होती है और जब राज्य व्यवस्था के दो प्रमुख अंगों के बीच ऐसी स्थिति हो, तो शासन ठीक प्रकार से नहीं चल सकता।

न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism)

अर्थ (Meaning)

न्यायपालिका का मुख्य कार्य अपने सामने लाए गए विवादों का देश के संविधान और कानूनों के अनुसार न्यायिक निर्णय करना है। यद्यपि न्यायपालिका अपने इस कर्तव्य में निष्पक्षता और उच्चादर्शात्मकता का परिचय देती रही है, तथापि हम इसको न्यायपालिका की सक्रियता नहीं कह सकते। लेकिन जब न्यायपालिका अपने न्यायिक अधिकार क्षेत्र से बाहर आकर कार्यपालिका अथवा विधानपालिका के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है तो न्यायपालिका की क्रियाशीलता अथवा न्यायिक सक्रियता का नाम दिया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश पी०बी० सांवत के विचानुसार, ''जब न्यायपालिका ऐसी प्राथमिकताओं, नीतियों और कार्यक्रमों को निश्चित करती है जो कि नीतियों और कार्यक्रम कार्यशीलता व विधानपालिका या अन्य शक्तियों के लिए लागू करना आवश्यक नहीं हैं और उन्हें लागू करने के विषय में निर्णय करना कार्यपालिका

और विधानपालिका या अन्य शक्तियों की इच्छा पर निर्भर करता है तो न्यायपालिका न्यायिक सक्रियता का परिचय दे रही होती है और इस प्रकार न्यायपालिका सरकार के अन्य अंगों के कार्यों, शक्तियों का अवैध तरीके से अतिक्रमण कर रही होती है। जब किसी नीति, योजना या कार्यक्रम की क्रियाशीलता का निर्देशन करने की अपेक्षा उसका व्यापक संचालन न्यायपालिका अपने हाथों में ले लेती है, किसी योजना या नीति को एक विशेष रूप में लागू करने के लिए न्यायपालिका निर्देश जारी करती है जबकि अधिक बेहतर विधियां भी उपलब्ध होती हैं, जब न्यायपालिका कुछ कार्यक्रमों या योजनाओं को लागू करने से ऐसे आधारों पर रोकती है जिनका समर्थन निपुण ज्ञान अथवा विशेषज्ञता द्वारा होता है, जब न्यायपालिका स्वतः स्वायत संस्थाओं की कार्य–प्रणाली में हस्तक्षेप करती है, अपने निर्णय उनके ऊपर थोपती है और प्रमाणित अर्थो से बाहर जाती है तो न्यायपालिका के ये कार्य न्यायिक सक्रियता के प्रतीक होते हैं। संक्षेप में, कानून की व्याख्या करने और उसे लागू करते समय संवैधानिक सीमा का उल्लंघन करना, शक्तियों के पृथककरण की संवैधानिक योजना का उल्लंघन करके कार्यकारी और न्यायिक कार्य को न्यायालय द्वारा अपने हाथों में लेने की प्रक्रिया को न्यायिक सक्रियता कहा जाता है।''

न्यायिक सक्रियता का अर्थ न्यायपालिका द्वारा विधानपालिका या अन्य संस्था के अधिकार क्षेत्र में आने वाले उन कार्यों में हस्तक्षेप करना है जो न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र में न आते हो अर्थात् न्यायपालिका द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर विधानपालिका, कार्यपालिका या अन्य सरकारी अधिकारी को दिए गए निर्देश न्यायिक सक्रियता कहलाते है। संक्षेप में, न्यायपालिका द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र में रहकर सक्रिय भूमिका निभाना न्यायिक सक्रियता नहीं है। अपितु अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर जाकर ऐसे कार्य करना है जो सरकार के अन्य अंगों के निर्धारित अधिकार क्षेत्र में होते हैं।

न्यायपालिका को सक्रियता प्रदान करने वाले तत्व

(Factors Providing Activism to the Judiciary)

न्यायिक सक्रियता के उत्तरदायी कारकों का वर्णन निम्नलिखित है –

1. **कार्यपालिका की कर्तव्य–विमुखता और पथ–भ्रमिता :** कार्यपालिका को कर्त्तव्यविमुखता, पथभ्रमिता, निष्क्रियता एवं उदासीनता ने न्यायिक सक्रियता को उत्पन्न किया है। यह खेद का विषय है कि न केवल केन्द्रीय अपितु प्रान्तीय स्तर पर भी कार्यपालिकाएं अपने उत्तरदायित्वों को निभाने में निरन्तर विफल रही हैं। इसके विपरीत कार्यपालिका द्वारा शक्तिशाली व्यक्तियों को सुरक्षित करने का प्रयास किया जाता है। कार्यपालिका अपने कर्त्तव्य 'बहुजन–हिताय बहुजन–सुखाय' से विमुख हो गई है। कार्यपालिका की कर्त्तव्यविमुखता और पथभ्रमिता के कारण जन–सामान्य में क्षोभ और निराशा पनपी है। कार्यपालिका का निरन्तर विश्वास कम होता जा रहा है। जन साधारण राजनीतिक कार्यपालिका के समक्ष स्वयं को दुर्बल, क्षीण और निरीह अनुभव कर रहे है। न्यायपालिका ने जनमानस की इस लाचारी को समझते हुए कार्यपालिका की अकर्मण्यता को तोड़ा है और उसे उसका कर्त्तव्य समझाया है।

2. **अत्यधिक भ्रष्टाचार :** निरन्तर बढ़ रहे भ्रष्टाचार में एक सामान्यजन चलती चक्की में धुन की तरह पिस रहा है। समाज में भ्रष्टाचार निम्न स्तर से लेकर उच्च स्तर तक इतना अधिक फैल गया है कि इसको मापने के लिए कोई भी पैमाना नहीं है। विशेष रूप से राजनीतिक भ्रष्टाचार ने जनता के विश्वास को खण्डित किया है। भ्रष्टाचार में अत्यन्त प्रभावशाली लोगों के भी लिप्त होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति का जीवन प्रभावित हो रहा है। न्यायपालिका ने भ्रष्टाचार को दूर करने में सराहनीय क्रियाशीलता दिखाई हैं। न्यायपालिका ने भ्रष्टाचार में लिप्त बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ और सरकारी अधिकारी का पर्दाफाश किया है और उसकी वास्तविकता समाज के सामने प्रकट की है। इस प्रकार अत्याधिक भ्रष्टाचार भी न्यायिक सक्रियता के लिए उत्तरदायी कारक है।

3. **जन–हित याचिका पद्धति :** न्यायपालिका को सक्रियता प्रदान करने वाले तत्वों में जन–हित याचिका पद्धति सबसे महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। वास्तव में जन–हित याचिकाओं के कारण ही न्यायिक सक्रियता का प्रादुर्भाव हुआ। जन–हित याचिका पद्धति से अभिप्रायः ऐसी याचिकाओं से है। जिन्हें सामान्य हित में

पीड़ित व्यक्ति के स्थान पर कोई भी अन्य व्यक्ति एक साधारण पोस्ट कार्ड के माध्यम से दायर कर सकता है। न्यायालय अपने सभी तकनीकी नियमों को एक और रखकर इन पर तत्परता से विचार करता है।

4. **न्यायाधीशों की प्रखरता, निर्भीकता और कर्त्तव्यपरायणता :** न्यायपालिका को सक्रियता प्रदान करने में हमारे विद्वान न्यायाधीशों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। न्यायाधीशों ने बिना किसी दबाव के जिस निर्भीकता से भ्रष्टाचार के मामलों में बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ व अधिकारी को अनावृत किया है, उसने समाप्त न्याय प्रणाली को गतिशीलता मनोबल और सक्रियता प्रदान की है। न्यायाधीशों की निःस्वार्थ कर्त्तव्यपरायणता से न्याय का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हुआ है। न्यायाधीश पी०एन० भगवती द्वारा प्रारम्भ की गई जनहित याचिका पद्धति के कारण ही न्यायपालिका अपने उद्देश्य को पूरा करने का सार्थक प्रयास कर रही है। प्रतिदिन न्यायधीशों द्वारा विभिन्न संस्थाओं एवं व्यक्ति समूहों आदि को जारी किए जाने वाले निर्देश न्यायधीश की प्रखरता और कर्तव्यपरायणता को स्पष्ट करते हैं। निःसन्देह इससे न्यायिक सक्रियता को बल मिला है।

5. **अस्थिर राजनीतिक परिदृश्य :** राजनीतिक अस्थिरता न्यायपालिका को सक्रियता प्रदान करने वाला एक प्रभावकारी कारण रहा है। पिछले वर्षों में जिस प्रकार की राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण उभरा है, उससे न्यायपालिका को महत्व मिला है। पिछले कई आम चुनावों में कोई भी दल न तो केन्द्रीय विधानमण्डल में और न ही प्रान्तीय विधानमण्डलों में स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर पा रहा है। ऐसी स्थिति में अल्पमत सरकार बनती है तो विभिन्न दलों के गठबन्धन का परिणाम होती है। इसका परिणाम यह निकलता है कि कार्यपालिका कमजोर हो जाती है और वह अपने कार्यों को दृढ़तापूर्वक नहीं कर पाती। कार्यपालिका के निर्णय लेने की शक्ति भी क्षीण हुई है। इसके कारण कार्यपालिका की गुणवता का पतन हुआ है। अतः क्षीण बहुमत, अल्पमत एवं मिली–जुली सरकारें तथा दुर्बल कार्यपालिका की स्थिति में न्यायपालिका का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

6. **जन सामान्य का कार्यपालिका के प्रति अटूट विश्वास :** राजनीतिक अस्थिरता, क्षीण बहुमत, अल्पमत सरकारें, मिली–जुली सरकारें कार्यपालिका की दुर्बल स्थिति, कर्त्तव्यविमुखता व दायित्वहीनता आदि से आम जनता का कार्यपालिका से विश्वास निरन्तर घट रहा है पिछले कुछ समय में न्यायपालिका द्वारा कार्यपालिका को बार–बार निर्देश देने से यह अनुभूति होने लगी है कि शासन संचालन न्यायपालिका ही कर रही है। कार्यपालिका की इस स्थिति ने जहां जनता का विश्वास खोया है, वहीं न्यायपालिका की इन नूतन और सक्रिय भूमिका से जनता को संतोष हुआ है।

संक्षेप में न्यायिक सक्रियता के लिए उत्तरदायी तत्वों की संख्या अत्याधिक विविध है और यह निरन्तर बढ़ रही है।

सार्वजनिक हित (जन–हित) संरक्षण से सम्बन्धित मामले

(Public Interest Litigation Cases)

पिछले कुछ वर्षों से सर्वोच्च न्यायालय के दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन आ रहा है और वह एक अनुदारवादी न्यायालय के स्थान पर प्रगतिशील दृष्टिकोण वाले न्यायालय का रूप ग्रहण करता जा रहा है, वह वैयक्तिक हितों के संरक्षक के साथ–साथ सामाजिक हित के संरक्षक के रूप में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करने लगा है।

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन न्याय पाने का हक उसी व्यक्ति को है जिससे मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है, किन्तु अपने नवीनतम निर्णयों में उच्चतम न्यायालय ने आंग्ल विधि के उस नियम में परिवर्तन कर दिया है और अनुच्छेद 32 के क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया है। न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि अनुच्छेद 32 के अधीन कोई संस्था या सार्वजनिक हित से उत्प्रेरित कोई नागरिक किसी ऐसे व्यक्ति के संवैधानिक या विधिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए रिट फाइल कर सकता है, जो निर्धनता अथवा किसी अन्य कारण से न्यायालय में रिट फाइल करने में सक्षम नहीं है। न्यायाधीश श्री कृष्ण अय्यर के अनुसार 'वाद कारण' और 'पीड़ित व्यक्ति' की संकुचित धारणा का स्थान वर्ग कार्यवाही, 'लोकहित में कार्यवाही' की विस्तृत धारणा ले रही है। ऐसे मामले व्यक्तिगत मामलों में अलग होते हैं। व्यक्तिगत मामलों में वादी और

प्रतिवादी होते है जबकि सार्वजनिक हित संरक्षण से जुड़े मामले किसी एक व्यक्ति की बजाए 'समूह' से जुड़े होते है जो कि शोषण और अत्याचार का शिकार होता है और जिसे संवैधानिक और मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है कुछ ऐसे मामले जिन पर सर्वोच्च न्यायालय ने विचार किया है निम्नलिखित है –

1. **आगरा प्रोटेक्शन होम केस (Agra Protection Home Case)** : इस केस में लगभग 70–80 लड़कियाँ रहती थी। इन लड़कियों के बारे में इण्डियन एक्सप्रेस अखबार में यह खबर छपी कि उनके साथ मानवीय स्तर का व्यवहार नहीं हो रहा है। इन लड़कियों के रहने तथा काम करने के लिए मनुष्योचित परिस्थितियाँ प्रदान नहीं की गयी हैं। यहाँ तक कि उनके लिए स्नानघर नहीं है और शौचालय भी दरवाजा के बिना ही है। इन लड़कियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि ये अपने अधिकारों के लिए न्यायालय में जा सकें। ऐसी स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय ने कानून के दो प्रोफेसरों को इन लड़कियों की ओर से पैरवी करने की इजाजत दी।

2. **बम्बई के पटरीवासियों का मामला (The Case of the Bombay Pavement Dwellers)** : यह मामला भी सार्वजनिक हित संरक्षण से सम्बन्धित है। मुख्य न्यायाधीश के सामने एक पत्रकार ओल्गा तेलिस ने बम्बई के पटरीवासियों का मामला उठाया और न्यायालय ने अन्तरिम आदेश जारी करके पटरीवासियों की सुरक्षा का इन्तजाम किया।

3. **सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (Sunil Batra v/s Delhi Administration)** : इस मामले में एक आजीवन कारावास का दण्ड भुगत रहे कैदी के साथ जेल वार्डन द्वारा क्रूर एवं अमानवीय व्यवहार के विरूद्ध एक–दूसरे कैदी ने पत्र द्वारा न्यायालय को इस अमानवीय घटना की सूचना भेजी। न्यायालय ने इस पत्र को बन्दी प्रत्यक्षीकरण रिट मानकर जेल–प्राधिकारियों के विरूद्ध निर्देश जारी किया कि उक्त कैदी के साथ अमानवीय व्यवहार न किया जाए और अपराधी व्यक्ति को दण्ड देने की उचित कार्यवाही की जाये। बन्दी प्रत्यक्षीकरण रिट का प्रयोग केवल अवैध कारावास से विमुक्ति के लिए ही नहीं

वरन् जेल में कैदियों के विरूद्ध किये गये सभी प्रकार के अमानवीय व्यवहारों के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करने के लिए भी किया जा सकता है।

4. **पुलिस ड्राईवर का केस (The Case of Police Driver)** : सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की बैंच ने दिल्ली पुलिस के एक ड्राईवर सिपाही की उस रिट याचिका को स्वीकार कर लिया जिसमें अन्य विभागों के ड्राइवरों की तुलना में उसको नीची वेतन श्रृंखला देने की चुनौती दी गई है। रिट याचिका स्वीकार करते हुये बैंच ने कहा कि अनुच्छेद 14 में राज्यों को स्पष्ट निर्देश है कि कानून के सामने समानता के सिद्धान्त से किसी व्यक्ति को वंचित नहीं रखा जा सकता। न्यायमूर्ति चिनप्पा रेड्डी ए०पी० सेन व बहारूल इस्लाम ने अपने फैसले में कहा कि यदि समान काम के लिए समान वेतन न दिया जाये तो संविधान में निहित समानता का सिद्धान्त लोगों के लिए बेमानी हो जाएगा। बैंच ने रणधीर सिंह के इस तर्क को स्वीकार किया कि वह दूसरे कार्यरत ड्राइवरों से कम काम नहीं करता। न्यायालय ने केन्द्रीय सरकार को निर्देश दिया कि नारायन सिंह को भी रेलवे सुरक्षा दल के ड्राईवरों को दिया जाने वाला वेतन ही दे। न्यायाधीशों ने आदेश दिया कि उच्च वेतन श्रृंखला 1 जनवरी, 1973 से दी जानी चाहिए। जिस दिन वेतन आयोग की सिफारिश अमल में लाई गई थी। न्यायालय ने कहा कि दिल्ली पुलिस के ड्राइवरों में वर्गीकरण व उनको नीची वेतन श्रृंखला का सुझाव अनुचित और तर्कहीन है।

5. **तिलौनिया (अजमेर जिला) के श्रमिकों का केस (Case of Construction Workers in Tillonia)** : तिलोनिया के श्रमिकों का मामला शोध संस्थान चलाने वाले बंकर राय ने न्यायालय के समक्ष रखा। उनका कहना है कि वहाँ जो हरिजन महिलाएँ कार्य करती है उन्हें कम मजदूरी दी जाती है। यह मजदूरी न्यूनतम मजदूरी से भी कम है और उसमें भी कुछ मजदूरी की पेनाल्टी क्लाज (Penalty Clause) के अन्तर्गत कटौती कर दी जाती है। न्यायालय का मानना है कि न्यूनतम मजदूरी दिये बिना काम लेना अनुच्छेद 23 का उल्लंघन है और यह एक प्रकार से बेगार (Forced Labour) है।

6. **बन्धुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ :** इस मामले में एक संस्था ने पत्र द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को सूचित किया कि पंजाब राज्य के फरीदकोट जिले की पत्थर खानों में काफी संख्या में श्रमिक अमानवीय दशा में कार्यरत हैं और उनमें से अनेक बन्धुआ श्रमिक भी हैं। न्यायालय ने पत्र को रिट मानकर दो अधिवक्ताओं का एक आयोग नियुक्त किया जिसने जांच करके न्यायालय को रिर्पोट दी कि संस्था का आरोप सत्य है। न्यायमूर्ति श्री भगवती ने बहुमत का निर्णय सुनाते हुए कहा कि जनहित वाद के ऐसे मामले में सरकार को आपत्ति करने के बजाय स्वागत करना चाहिये ताकि सरकार समुचित कदम उठाकर बन्धुआ मजदूरों को मुक्त कर सके या उनकी स्थिति में सुधार कर सके।

7. **रूदलशाह बनाम बिहार राज्य :** इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उसे अनुच्छेद 32 के अधीन राज्य के कार्यो द्वारा पीड़ित व्यक्तियों को प्रतिकर प्रदान करने की शक्ति प्राप्त है। इस मामले में रूदल शाह को किसी अपराध में अभियोजित किया गया था, किन्तु सेशन न्यायालय द्वारा उसे 30 जून, 1968 को विमुक्त कर दिया गया था, किन्तु उसके बावजूद राज्य प्राधिकारियों के अनुत्तरदायित्वपूर्ण आचरण के कारण 14 वर्ष तक हजारी बाग जेल में सड़ना पड़ा और 16 जून 1982 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने पर जेल से रिहा किया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने बिहार राज्य को निर्देश दिया कि वह रूदल शाह को 35000 रूपये प्रतिकर देखकर क्षतिपूर्ति करे क्योंकि उसके अधिकारियों के उपेक्षापूर्ण आचरण के कारण उसे 14 वर्ष तक अवैध रूप से जेल में रहना पड़ा।

8. **पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत राज्य :** इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला ऐतिहासिक सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में इस तर्क को अस्वीकार कर दिया कि लोक हितवाद को बढ़ावा देने से न्यायालय में मुकदमें की संख्या में वृद्धि होगी और उनके निपटारे में विलम्ब होगा।

जनहित याचिकाओं पर पाबन्दी लगाना ज्यादती है। यदि सर्वोच्च न्यायालय के दरवाजे बन्द हो जाए तो माध्यम वर्गीय लोग न्याय हासिल करने के लिए कहां जाएगे ?

न्याय व्यवस्था – सुधारों की आवश्यकता (Judicial System – Need for Reforms)

न्याय प्रशासन का सामाजिक पक्ष है और निष्पक्ष तथा समदर्शी न्याय में समाज का भी दाव लगा है हाल में अपनी सक्रियता को प्राप्त करने के बावजूद भी भारतीय न्याय व्यवस्था अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का ठीक प्रकार से निर्वाह नहीं कर पायी है। इसका मुख्य कारण न्याय प्रशासन की उत्तराधिकार में प्राप्त औपनिवेशिकता तो है ही परन्तु न्यायिक व्यवहार तथा राजनीतिक प्रक्रिया भी किसी न किसी सीमा तक इसके लिए उत्तरदायी है। यह राजनीतिक प्रक्रिया भी वह है जो पिछले वर्षों में विकसित हुई है। इसलिए एक ऐसा वातावरण बनाने के लिए सुझाव दिये गये है। जिसके अन्तर्गत न्यायापालिका और अधिक तथा उद्देश्यपूर्ण तरीकों के साथ कार्य कर सके। न्यायपालिका तथा कार्यपालिका एवं विधायिका के माध्य ऐसे सौहार्दपूर्ण रिश्ते कायम होने चाहिए जिससे किसी की भी निर्धारित भूमिका में कोई महत्त्वपूर्ण कमी न आ पाये।

कुछ प्रेषकों के द्वारा इस प्रसंग में यह सुझाव दिया गया है कि जजों की नियुक्ति उनके सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन तथा दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। इस सुझाव के आलोचकों का कहना है कि इस प्रयास के द्वारा वे इस प्रतिबद्ध न्यायपालिका की रचना करना चाहते है जो अन्ततः सत्ता में विद्यमान दल की सहायक मात्र बनकर रह जाये। इसलिए कुछ टीकाकारों का सुझाव है कि संविधान में प्रदत्त सामाजिक न्याय के अनुकूल मूल्यों एवं मानकों की निश्चित सूची को शामिल किया जाना चाहिए और न्यायालय अपनी व्याख्या में इन नियमों का अनुसरण करने के लिए बाध्य होने चाहिए। ऐसा करने पर न्यायालय द्वारा संसद के नीति–निर्णयों में हस्तक्षेप करने का क्षेत्र सीमित हो सकता है। इसलिए न्यायालय के किसी भी कानून को लागू करने या परिच्छेद में शामिल कार्यप्रणाली सम्बन्धी अनिवार्यताओं का निरीक्षण करने का अधिकार होना चाहिए न की उसके पर्याप्त मूल्य सार का। यह भी सुझाया

गया है कि किसी भी कानून को अवैध घोषित करने के लिए एक विशिष्ट बहुमत जो कि दो–तिहाई से कम नहीं होना चाहिए अनिवार्य होना चाहिए। इस प्रकार का प्रावधान 42वें संविधान संशोधन में किया गया था लेकिन 44वें संविधान संशोधन द्वारा उसे समाप्त कर दिया गया।

यह भी कहा जाता है कि अच्छे वकीलों तथा प्रखर विधि ज्ञाताओं को न्यायिक व्यवस्था में आकर्षित न कर पाने के कारण भी हमारी न्याय व्यवस्था सूक्ष्म नहीं है। यह कहा जाता है कि हम अपने जजों के लिए आकर्षित सेवा शर्ते प्रस्तुत नहीं करते है और इसके बगैर हम प्रखर बुद्धि वाले लोगों को आकर्षित नहीं कर पायेंगे। जहाँ तक सेवा शर्तों का प्रश्न है निश्चय ही यह याद रखा जाना चाहिए कि उच्च न्यायालयों के अधिकतर जजों की नियुक्ति वकील समुदाय से की जाती है और हम जब तक तीव्र बुद्धि वाले वकीलों की नियुक्ति जजों के रूप में नहीं कर सकते जब तक हम उनको आकषित शर्ते पेश नहीं करते क्योंकि वकील के रूप में उनकी आमदनी काफी अधिक होती है। परन्तु वेतन तथा सेवा शर्तों में सुधार ही पर्याप्त न होगा। अदालतों की कार्यप्रणाली में व्यापक परिवर्तन करने के उद्देश्य निश्चय ही अन्य दूसरे बहुत से उपायों को भी अपनाना होगा सितम्बर 1955 में मुख्य न्यायाधीशों, मुख्यमंत्रियों तथा कानून मंत्रियों के दो दिवसीय सम्मेलन में ग्रामीण क्षेत्रों के लिए शांतिशील अदालतों की स्थापना हेतु कानून बनाना, गुजरात राज्य वैधानिक सहायता बोर्ड के प्रारूप के आधार पर लोक अदालतों की स्थापना नगरपालिका या यातायात सम्बन्धी अपराधों तथा दूसरे छोटे मामलों के निर्णय करने के लिए विशेष मैजिस्ट्रेटों की नियुक्ति और सरकारी सेवकों तथा सरकारी कामगारों के लिए सर्विस ट्रिब्यूनल बनाने की सिफारिश की गयी।

यहाँ पर यह उद्धृत किया जा सकता है कि लोक अदालतों ने पहल से ही गुजरात, महाराष्ट्र, यू०पी०, तमिलनाडू तथा दिल्ली में कार्य करना शुरू कर दिया है और यह अदालतों से बाहर छोटे केसों का निपटारा कर मध्यस्थाता के रूप में महत्वपूर्ण कार्य को कर रही है। उनमें से कई को संस्थात्मक रूप प्रदान किया जाना चाहिए। जिससे कि विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में शीघ्र एवं सस्ता न्याय उपलब्ध हो सके, यह विस्तारित वैधानिक ट्रिब्यूनलों एवं अदालतों पर बढ़ते कार्यभार को कम करने में सहायता कर सकेगी। परन्तु ये कदम सामान्य जनता की सामान्य समस्याओं के संदर्भ

में महत्वपूर्ण हो सकते है, लेकिन विशेषकर न्यायपालिका विधायिका तथा कार्यपालिका के मध्य अन्तःक्रिया के प्रसंग में एक ठोस न्यायिक व्यवस्था के लिए कारगर उपाय नहीं हो सकते।

2.2.4 निष्कर्ष

इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक गतिशील लोकतन्त्र को एक स्वतन्त्र न्यायपालिका की आवश्यकता होती है, लेकिन उसको एक प्रभावशाली कार्यपालिका तथा विधायिका भी चाहिए। विधायिका तथा कार्यपालिका ऐसे लोगों का प्रतिनिधित्व करती है जो उनका निर्वाचन करते हैं, किन्तु जजों की नियुक्ति होती है इसलिए वे प्रतिनिधि नहीं होते। लेकिन इसका कदाचित भी यह अभिप्रायः नहीं हो सकता कि निर्वाचित प्रतिनिधि गैर–जिम्मेदार कार्यो को करें या वे अतिशक्तिशाली बन जायें। इसलिए यह अनिवार्य है कि सरकार के ये तीनों अंग एक सौहार्दपूर्ण तरीके से कार्य करें और एक–दूसरे पर नियंत्रण करते हुए नागरिकों की स्वतन्त्रता तथा गरिमा को सुनिश्चित करें। इसी के साथ यह भी महत्वपूर्ण है कि न्यायिक प्रशासन को सक्षम, कम समय लगाने वाला तथा कम खर्चीला बनाया जाये जिससे कि यह जन–साधारण को न्याय उपलब्ध करा सके और केवल विशेषाधिकार लोगों के अधिकारों की रक्षा करने वाला साधन मात्र बनकर न रह जाये।

2.2.5 मुख्य शब्दावली

- प्रारंभिक क्षेत्राधिकार : वो मुकद्में जो सीधे सर्वोच्च न्यायालय में दायर किए जा सकते है।
- दीवानी मुकद्मा : जो पैसे के लेन–देन या सम्पत्ति से सम्बन्धी मुकद्में
- फौजदारी : जो मुकद्में हत्या, लुटपाट, हिंसा यानी गंभीर अपराध की श्रेणी में आते है उन्हें फौजदारी मुकद्में कहा जाता है।
- अपीलीय क्षेत्राधिकार : जब कोई मुकद्मा निचली कोर्ट में आरम्भ होता है और निचली कोर्ट के निर्णय के विरूद्ध ऊपरी कोर्ट में मुकद्मा दायर किया जाये।

- न्यायिक सक्रियता : जब न्यायपालिका अपने अधिकार – क्षेत्र से बाहर जाकर कार्यपालिका अथवा विधानपालिका के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है उसे न्यायिक सक्रियता कहा जाता है।

2.2.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत के सर्वोच्च न्यायालय की संरचना एवं शक्तियों की व्याख्या कीजिए।
2. भारत के सर्वोच्च न्यायालय की रचना, क्षेत्राधिकार तथा स्थिति का वर्णन कीजिए।
3. उच्च न्यायालय की बनावट व शक्तियों का वर्णन कीजिए।
4. राज्य के उच्च न्यायालय के गठन, शक्तियों और भूमिका की विवेचना कीजिए।
5. न्यायिक सक्रियता से क्या आशय है ? इसके मुख्य साधनों का वर्णन कीजिए।
6. न्यायिक सक्रियता के पक्ष तथा विपक्ष में तर्क दीजिए।
7. न्यायिक सक्रियता के संदर्भ में इसकी आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
8. जनहित याचिका पर एक निबन्ध लिखिए।
9. भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण की प्रणाली का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
10. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति कैसे की जाती है ?
11. उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए जाने वाले पाँच लेखों का उल्लेख करे।
12. न्यायिक सक्रियता के दोष बताए।
13. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों को पद से कैसे हटाया जा सकता है ?
14. न्यायपालिका के दोषों में कैसे सुधार किए जा सकते है ?
15. जनहित याचिका क्या है ?

2.2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966

- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998

- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

ईकाई – 3

भारत में दलीय व्यवस्था का स्वरूप व कार्यप्रणाली

3.0 ईकाई परिचय

लोकतन्त्र चाहे उसमें सरकार का स्वरूप कोई भी हो, राजनीतिक दलों की अनुपस्थिति में अकल्पनीय है, इसीलिए इन्हें 'लोकतन्त्र के प्राण' कहा गया है। यदि राजनीतिक दलों को शासन का चतुर्थ अंग कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज की प्रतिनिधिमूलक सरकार का सार यही है कि सरकार और संसद दोनों पर दल का प्रतिबन्ध रहता है। विधानमण्डल और कार्यपालिका, सरकार और संसद संवैधानिक आवरण है। यथार्थ शक्ति का उपयोग तो राजनीतिक दल ही करते है। दल–प्रणाली के बिना लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली कार्य ही नहीं कर सकती। शासन का चाहे संसदीय रूप हो या अध्यक्षात्मक, दल प्रणाली के अभाव में उसका क्रियान्वयन असम्भव है। किसी भी शासन में हजारों लोग राज्य की समस्याओं पर सोचते है, किन्तु जब तक उनके विचारों और दृष्टिकोणों को दलीय आवरण द्वारा व्यवस्थित और क्रमबद्ध ना किया जाए तब तक शासन निष्क्रिय ही बना रहता है। अतः राजनीतिक दल राजनीतिक प्रक्रिया को जोड़ने, सरल करने तथा स्थिर बनाने का कार्य करते है।

राजनीतिक दल असंख्य मतदाताओं की भीड़ के स्थान पर व्यवस्था का निर्माण करते है, जनता का नेतृत्व करने के लिए नेता प्रदान करते है और राजनीतिक व्यवस्था को संचालन शक्ति प्रदान करते है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनमत का बहुत अधिक महत्त्व होता है। राजनीतिक दल स्वस्थ जनमत का निर्माण भी करते है।

इसी तरह से राजनैतिक प्रक्रिया में दबाव समूहों का अत्याधिक महत्त्व है। ये राजनीतिक संगठन तो नहीं होते। लेकिन सरकार और राजनीतिक दलों पर इनका बहुत अधिक प्रभाव होता है। विभिन्न व्यवसायों के हितों को पूरा करने के लिए दबाव समूह बनते है, भारत एक कृषि प्रधान देश है तो एक बड़ा जनसंख्या का समूह इस व्यवसाय से जुड़ा हुआ है। अतः कृषक आन्दोलनों का भी सरकार की नीति–निर्माण पर

काफी प्रभाव देखने को मिलता है। विभिन्न दबाव समूहों और राजनीतिक दलों के कार्यक्रमों और हितों को पूरा करने में मीडिया की भी काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। लोगों और सरकारों के बीच सूचनाओं को पहुंचाने का कार्य मीडिया बखूबी करता है।

3.1 उद्देश्य

- लोकतान्त्रिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों का महत्त्व
- राजनीतिक दलों की कार्यप्रणाली का मूल्यांकन
- लोकतान्त्रिक व्यवस्था में दबाव समूहों की उपयोगिता का मूल्यांकन
- जनमत का क्या महत्त्व है तथा उसके निर्माण में सहायक तत्त्व कौन–कौन से है
- भारतीय राजनीति में कृषक आन्दोलनों की भूमिका
- भारतीय राजनीति में मीडिया की भूमिका

3.2 भारतीय राजनीतिक दल (Political Parties)

3.2.1 परिचय

भारत एक लोकतंत्रीय राज्य है, जिसमें राजनीतिक दलों का होना स्वाभाविक हैं। लोकतंत्र तथा राजनैतिक दलों में इतना गहरा सम्बन्ध है कि इस के बिना दूसरे की उन्नति असंभव है। राजनैतिक दल ही देश में राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर जनमत तैयार करते हैं। लोगों को राजनैतिक शिक्षा प्रदान करते हैं तथा स्थायी सरकार की स्थापना करते हैं वे चुनावों में अपने उम्मीदवार खड़े करते हैं और विधानमंडल में बहुमत प्राप्त करके सरकार पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। चुनावों में जिस राजनैतिक दल को विधानमंडल में बहुमत प्राप्त हो जाता है। वह दल सरकार का गठन करता है। अन्य राजनैतिक दल विरोधी दल का निर्वाह करते हैं और सरकार को स्वेच्छाचारी बनने से रोकते हैं तथा उसकी निरंकुशता पर अंकुश लगाते हैं।

3.2.2 उद्देश्य

- राजनैतिक दलों के गठन के लिए संवैधानिक प्रावधानों का ज्ञान
- भारत में राजनैतिक दलों का जन्म कैसे हुआ या उसका विकास
- भारत की दलीय व्यवस्था की प्रकृति व स्वरूप को जानना
- भारतीय दलीय व्यवस्था के दोषों को दूर करने के उपायों को जानना
- विभिन्न राजनैतिक दलों की सफलताओं व असफलताओं का मूल्यांकन करना

3.2.3 भारतीय राजनैतिक दलों का विकास

भारत में राजनीतिक दलों के विकास को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है –

1. स्वतंत्रता से पूर्व राजनैतिक दलों का विकास
2. स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक राजनैतिक दलों का विकास

भारत में राजनैतिक दलों का विकास ब्रिटिश शासन के विरूद्ध स्वतंत्रता आन्दोलन के रूप में आरम्भ हुआ था। 19वीं शताब्दी के 'पूना सार्वजनिक सभा' मद्रास में 'महाजन सभा' तथा कलकत्ता में भारतीय एसोसिएशन तथा मुंबई प्रैजीडेंसी एसोसिएशन जैसे संगठनों की स्थापना हुई। परन्तु भारत के सबसे पहले राजनीतिक दल कांग्रेस की स्थापना 1885 में हुई और धीरे–धीरे करके सभी वर्गो के लोग इसमें शामिल होने लगे।

ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस का विरोध करने के लिए सन् 1906 में 'मुस्लिम लीग' (Muslim Leagee) की स्थापना करवाने में सहयोग दिया। इसके विरोध में हिंदुओं ने अपने को संगठित करने तथा अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए सन् 1916 में हिन्दू महासभा (Hindu Maha Sabha) की स्थापना की। सन् 1924 में भारत में साम्यवादी दल (Communist Party) की स्थापना हुई। सन् 1934 में कांग्रेस के भीतर ही जवाहरलाल नेहरू तथा कुछ अन्य नेताओं ने मिलकर 'समाजवादी दल' की स्थापना की। सन् 1938 में सुभाष चन्द्र बोस ने कांग्रेस पार्टी से त्यागपत्र देकर अपने अलग दल 'फारवर्ड ब्लाक' (Farward Block) की स्थापना की।

स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक राजनीतिक दलों का विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में मुख्य रूप से दो राजनैतिक दल मौजूद थे – कांग्रेस तथा साम्यवादी दल। सन् 1948 में राम राज्य परिषद् की स्थापना हुई और उसके बाद सन् 1949 में तमिलनाडु में डी०एम०के० (D.M.K.) की स्थापना हुई। सन् 1951 में डॉ० श्यामप्रसाद मुकर्जी के नेतृत्व में भारतीय जन संघ (Bhartiya Jan Sangh) की स्थापना हुई। सन् 1952 में जब देश में पहले आम चुनाव हुए तो उस समय 14 दलों ने राष्ट्रीय स्तर पर तथा 51 दलों ने क्षेत्रीय (राज्य) स्तर पर इनमें भाग लिया।

सन् 1959 में स्वतंत्र पार्टी (Swatantra Party) का जन्म हुआ जिसे 1962 में राष्ट्रीय राजनैतिक दल के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई, सन् 1962 तथा 1967 के बीच भारत में अनेक दल विकसित हुए।

सन् 1969 में कांग्रेस के फूट पड़ गई और वह दो इंदिरा कांग्रेस तथा संगठन कांग्रेस में बंट गई। सन् 1974 में भारतीय लोकदल की स्थापना हुई। जिसमें भारतीय क्रांति दल, स्वतंत्र दल, उत्कल कांग्रेस तथा मजदूर दल आदि शामिल हो गए।

सन् 1977 में संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल तथा समाजवादी दल ने मिलकर जनता पार्टी का गठन किया जनता पार्टी लगभग दो वर्ष ही केन्द्र में सत्ता में रह पाई और इस दल में फूट पड़ गई। वह पुनः चार दलों जनता पार्टी, भारतीय जनता पार्टी, लोकदल तथा जनता (एस) के विभाजित हो गई। सन् 1989 में हुए लोकसभा के चुनाव के समय 'जनता दल' का गठन किया गया। यद्यपि चुनावों में इस दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, फिर भी भारतीय जनता पार्टी तथा साम्यवादी दलों की सहायता से दल ने 2 दिसम्बर 1989 को सरकार की स्थापना की।

16 अप्रैल 1991 को चुनाव आयोग ने कुल 9 राष्ट्रीय दलों को मान्यता दी थी। 22 फरवरी, 1992 को चुनाव आयोग ने कांग्रेस (एस) लोकदल और जनता दल (समाजवादी) को राष्ट्रीय राजनैतिक दलों के रूप में मान्यता समाप्त कर दी थी। 1996 में हुए लोकसभा चुनावों के समय चुनाव आयोग द्वारा 8 राष्ट्रीय दलों तथा 39 क्षेत्रीय दलों को मान्यता प्रदान की गई। सन् 1998 में हुए लोकसभा चुनावों के समय चुनाव आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त 7 राष्ट्रीय दल थे। 1 जनवरी 2002 को 7 दलों को राष्ट्रीय के रूप में मान्यता प्राप्त हैं। 2004 में पाँच, 2009 में 7, 2014 में छः, 2019 में 8 दल है।

भारतीय दलीय व्यवस्था में तीन अवसर ऐसे आए है, जब इसमें मूलभूत परिवर्तन घटित हुए। उदाहरणतः 1977 में विरोधी दलों द्वारा संचालित जनता सरकार का केन्द्र में सत्ता रूढ़ होना। इससे पहले 1967 में लगभग 8 राज्यों में (हरियाणा सहित) पहली बार विरोधी दलों ने अपनी सरकारें बनाई जो कांग्रेस पार्टी के एकाधिकार को एक गहरा झटका माना गया। 1989 में भी एक बार विरोधी दलों ने मिलकर राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार स्थापित की। 1991 में लोकसभा के चुनाव हुए। इन चुनावों में कांग्रेस को बहुमत तो नहीं मिला लेकिन सबसे बड़ा दल होने के कारण इसको सरकार बनाने का अवसर मिला। 1996 में हुए चुनावों में इसे हार का सामना करना पड़ा। 1998 में हुए

चुनाव में भी भारतीय जनता पार्टी ने गठबन्धन की सरकार बनाई। 1999 में भी बीजेपी ने सरकार बनाई। 2004 और 2009 के चुनावों में कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए की सरकार बनी। 2014 व 2019 में कांग्रेस को करारी हार का सामना करना पड़ा। इस प्रकार एकल दल अधिपत्य टूट गया तथा बहुल दलीय व्यवस्था का पर्दापण हुआ। इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय दल व्यवस्था की विशेषताएं निम्न है –

1. **बहुदलीय पद्धति :** भारत में ब्रिटेन अथवा अमरीका की तरह द्वि दल–पद्धति नहीं, वरन् बहुदलीय पद्धति है। चुनाव आयोग के अनुसार जनवरी 1998 में देश में सात राष्ट्रीय दलों सहित 654 राजनीतिक पार्टियां हैं। इनमें से 35 पार्टियां राज्य स्तर की हैं और 612 पंजीकृत गैर–मान्यता प्राप्त दल थे। 2018 में 7 राष्ट्रीय दल व 57 राज्य स्तरीय मान्यता प्राप्त दल तथा 2044 पंजीकृत गैर–मान्यता प्राप्त दल थे।
2. **व्यक्तिगत नेतृत्व पर आधारित :** भारत में दल व्यक्तिगत नेतृत्व पर आधारित है। 1951 से 1964 तक कांग्रेस में जवाहर लाल नेहरू की प्रधानता रही। 1970–76 और 1980–84 में इंदिरा गाँधी का व्यक्तित्व पार्टी पर छाया रहा। 1984 के बाद राजीव गांधी का प्रभाव रहा। 1991 के बाद अटल बिहारी वाजपेयी के व्यक्तित्व पर भारतीय जनता पार्टी टिकी हुई है। उधर विरोधी दल कांग्रेस में सोनिया गांधी का प्रभाव था और 2014 के बाद नरेन्द्र मोदी के बलबूते पर बीजेपी सत्ता में लगातार बनी हुई था और 2014 के बाद नरेन्द्र मोदी के बलबूते पर बीजेपी सत्ता में लगातार बनी हुई है।
3. **राजनैतिक दलों में निरन्तर विभाजन एवं विघटन की प्रवृति :** अब तक कांग्रेस पार्टी के तीन बार विभाजित हो चुकी है। 1969 के बाद 1978 और 1995 में कांग्रेस में विघटन हुआ। 1977 में गठित जनता पार्टी में विभाजन हुआ जनता दल का विभाजन सबसे अधिक और अतिशीघ्रता में हुआ। अन्य प्रमुख दलों में भी विघटन हुआ है।
4. **अवसरवादिता की उभरती प्रवृति :** भारतीय राजनीति में अवसरवादिता सदैव से विद्यमान रही है और अभी हाल ही के वर्षो में यह निरन्तर उग्र रूप ग्रहण कर

रही है। रजनी कोठारी के अनुसार, ''व्यक्ति का महत्व अभी भी राजनीति में बहुत है। भारत में एक ही संगठन के अभिन्न अंग अलग–अलग काम करते है। एक ही दल के राष्ट्रीय और राज्य शाखाएं प्रतिकूल दिशाओं में चलती हैं और ऐसे गुटों व तत्वों से हाथ मिलाती है जो विचारधारा और नीति में उनसे भिन्न है। जनवरी 1980 के केरल विधानसभा चुनावों में इन्दिरा कांग्रेस और जनता पार्टी के परस्पर सहयोग करते हुए एक ही फ्रण्ट के अन्तर्गत चुनाव लड़ा, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर ये दल एक दूसरे के कट्टर विरोधी थे। इस प्रकार की अवसरवादिता के अन्य अनेक उदाहरण उपलब्ध है।

5. **राजनीतिक दलों की नीतियां और कार्यक्रम में स्पष्ट भेद का अभाव :** भारत के राजनीतिक दलों की नीतियों और कार्यक्रमों में स्पष्ट भेद का अभाव है और इसी कारण वे जनता के सम्मुख स्पष्ट विकल्प प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं। इस प्रकार के विचार भेद के अभाव का एक कारण यह है कि आज भारत के राजनीतिक रंगमंच पर जितने भी पात्र दृष्टिगोचर हैं, उन सबको राजनीतिक प्रशिक्षण राष्ट्रीय आन्दोलन में ही प्राप्त हुआ है, लेकिन इसका दूसरा और अधिक प्रमुख कारण यह है कि स्वयं राजनीतिक दलों की नीतियां और कार्यक्रम अत्याधिक अस्पष्ट और अनिश्चित हैं। कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य लगभग एक दर्जन छोटे–बड़े राजनीतिक दल भी समाजवाद को ही अपना लक्ष्य घोषित किये हुए हैं। अनेक राजनीतिक दलों के पास अपना कोई निश्चित कार्यक्रम न होने के कारण उनके द्वारा विध्वंसकारी कार्यो का आश्रय लिया जाता है और विघटनकारी तत्वों को प्रोत्साहित किया जाता हैं।

6. **साम्प्रदायिक और क्षेत्रिय दल :** भारत में अनेक राजनीतिक दल साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय आधार पर गठित हैं। ऐसे दलों में अन्ना द्रविड मुनेत्र कड़गम (Anna D.M.K.), द्रविड मुनेत्र कड़गम (D.M.K.), अकाली दल, हिन्दू महासभा, नेशनल कांफ्रेंस, असम गण परिषद्, सिक्किम संगण परिषद् और अन्य अनेक दलों का नाम लिया जा सकता है। लोकसभा चुनावों में तो ये साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय दल अपनी शक्ति तथा प्रभाव का सीमित परिचय ही दे

पाते है, लेकिन विधानसभा चुनावों में अपनी शक्ति का परिचय देने में सफल रहते हैं। शिव सेना ने भी अपनी शक्ति में पर्याप्त वृद्धि की जो एक साम्प्रदायिक दल तथा क्षेत्रीय दल है।

7. **राजनीतिक दलों की आन्तरिक गुटबन्दी :** भारत की दल प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता विभिन्न दलों की आन्तरिक गुटबन्दी है। लगभग सभी राजनीतिक दलों में छोटे–छोटे गुट पाये जाते हैं, एक वह गुट जो सत्ता में है और दूसरा असन्तुष्ट गुट। इन गुटों में पारम्परिक मतभेद इस सीमा तक पाया जाता है कि कभी–कभी निर्वाचन में एक गुट के समर्थन प्राप्त उम्मीदवार को दूसरे गुट के सदस्य पराजित करने का भरसक प्रयत्न करते हैं।

8. **राजनीतिक दल–बदल :** भारत में दल–बदल की स्थिति सदैव से विद्यमान रही है, लेकिन 1967 से 1970 के वर्षों में यह प्रवृति बहुत अधिक भीषण रूप में देखी गयी। 1971 और 1972 के लोकसभा तथा विधानसभा चुनावों के बाद दल –बदल की लगभग समाप्ति की आशा की गयी थी और जनता में यही आशा मार्च 1977 तथा जनवरी 1980 के लोकसभा चुनावों के बाद जगी थी, लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। दल–बदल राजनीतिक अस्थिरता का कारण और परिणाम दोनों ही रहा है और इसने राजनीतिक वातावरण को दूषित करने का ही कार्य किया हैं।

9. **निर्दलीय सदस्यों की संख्या में कमी :** 1952 के लोकसभा चुनाव में निर्दलीय सदस्यों की संख्या 849 थी जो 1996 में बढ़कर 10535 हो गई। परन्तु 1998–99 में चुनाव सुधार के सम्भवतः प्रावधानों के कारण इस समस्या में भारी कमी आई और ये केवल 1915 ही रह गए। 1999 के लोकसभा चुनाव में 6 तथा 2009 के लोकसभा चुनावों में 9 निर्दलीय प्रत्याशी जीत पाए। 2014 में 3234 सदस्यों ने चुनाव लड़ा मात्र 3 सदस्य ही जीत पाए।

10. **राजनीतिक दलों का ढीला–ढाला संगठन :** भारत में अधिकांश दलों का संगठन बहुत ढीला ढाला है तथा सदस्यों में अनुशासन का अभाव है। अधिकतर दलीय नेता अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए दलीय अनुशासन की परवाह नहीं करते।

यदि दल के सदस्य की चुनाव का टिकट नहीं मिलता, तो वह दल से त्यागपत्र देकर दल के उम्मीदवार के ही विरूद्ध चुनाव में खड़ा हो जाता है। कई बार तो ऐसे सदस्य अपना अलग दल भी बना लेते हैं।

11. **राजनीतिक दलों में लोकतंत्र का अभाव :** भारतीय राजनीतिक दलों की एक ही महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि राजनीतिक दलों का आतंरिक ढांचा लोकतांत्रिक सिद्धान्तों तथा मूल्यों पर आधारित नहीं है। राजनीतिक दलों के अपने संगठनात्मक चुनाव वर्षों तक नहीं होते। अप्रैल 1992 में 22 वर्षों के बाद कांग्रेस (आई) के संगठनात्मक चुनाव हुए हैं। संगठनात्मक चुनाव न होने से प्रायः सभी दलों में आतंरिक प्रजातंत्र की स्थापना नहीं हो पाती, तब तक राष्ट्र की राजनीति में लोकतांत्रिक सिद्धान्तों तथा मूल्यों की स्थापना होना असंभव हैं।

भारतीय राजनीतिक दलों का वर्गीकरण (Classification of Indian Political Parties)

भारतीय राजनीतिक दलों को चार भागों में बांटा जा सकता है :

1. राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष दल
2. क्षेत्रीय अथवा राज्यस्तरीय दल
3. स्थानीय, किन्तु जातीय साम्प्रदायिक दल और
4. तदर्थ दल

1. राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष दल

निर्वाचन आयोग ने राजनीतिक दलों के मान्यता सम्बन्धी नियमों में परिवर्तन के लिए 1968 के चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आबंटन) आदेश में संशोधन करते हुए। दिसम्बर 2000 को अधिसूचना जारी की थी। नए नियमों के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्तर के दल का दर्जा प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित राजनीतिक दल को लोकसभा चुनाव अथवा विधान सभा चुनावों के हिन्हीं चार अथवा अधिक राज्यों के कुल डाले गए वैध मतों के 6 प्रतिशत मत प्राप्त करने के साथ ही किसी राज्य अथवा राज्यों से लोकसभा की कम से कम 4 सीटें जितनी होगी अथवा लोकसभा में उसे कम से कम 2 प्रतिशत सीटें (मौजूदा 543 सीटों में कम से कम 1 सीटें) जितनी होगी जो कम से कम तीन राज्यों से हासिल की गई हो। ऐसे दल दो प्रकार के हैं – बिना विचारधारा के और

विचारधारा पर आधारित वाले दलों में कांग्रेस को लिया जा सकता है। विचारधारा से अभिप्रायः है किसी विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक दर्शन में विश्वास और प्रतिबद्धता व्यक्त करना कांग्रेस को वैचारिक दृष्टि से तटस्थ दल कहा जा सकता है। कांग्रेस एक ऐसा दल है जिसमें अनेक विचारधारा और हितों के व्यक्ति शामिल हो सकते हैं। इसे दल के बजाय एक सार्वजनिक मंच (प्लेटफार्म) कहा जा सकता है।

विचारधारा में विश्वास करने वाले राष्ट्रीय दलों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। दक्षिण पन्थी और वामपन्थी। दक्षिणपन्थी दल जहाँ यथास्थिति को बनाये रखना चाहते हैं वहाँ वामपन्थी दल आर्थिक और सामाजिक ढांचे में आमूल चूल परिवर्तन चाहते हैं। स्वतंत्र दल, जनसंघ और भारतीय लोकदल को दक्षिणपंथी दल कहा जाता था क्योंकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में इनके दृष्टिकोण ब्रिटिश अनुदारवादी दल से मिलते जुलते हैं। वामपन्थी दल भी दो प्रकार के हैं – उदार और उग्र। उदार दलों में सभी समाजवादी दलों को लिया जा सकता है तथा उग्र दलों में सभी प्रकार के साम्यवादी दलों को स्थान दिया जा सकता हैं। उदारवादी दल, गांधीवाद, मार्क्सवाद और फेबियनवादी सिद्धान्तों में विश्वास करते है जबकि साम्यवादी दल क्रान्तिकारी साधनों में विश्वास करते है, समस्त प्रकार के अखिल भारतीय दलों का दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष है उनकी सदस्यता सभी धर्मो और जातियों के लिए खुली है।

2. क्षेत्रीय अथवा राज्यस्तरीय दल

ये वे दल हैं जिनका प्रभाव राज्य की सीमा तक ही है। इसमें तेनगू देशम्, शिव सेना, डी०एम०के०, अन्ना डी०एम०के०, असम गण परिषद्, सिक्किम संग्राम परिषद्, समाजवादी पार्टी, तमिल मनीला कांग्रेस, तृणमूल कांग्रेस, इण्डियन नेशनल लोकदल पार्टी आदि प्रमुख है। आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, असम, सिक्किम आदि राज्यों में ये दल प्रभावशाली हैं।

3. स्थानीय किन्तु जातीय साम्प्रदायिक दल

ये दल विशेष जाति या सम्प्रदाय तक ही सीमित हैं केरल की मुस्लिम लीग, उत्तर प्रदेश की बहुजन समाज पार्टी, पंजाब का अकाली दल आदि पार्टी ऐसे ही दल हैं।

4. तदर्थ दल

भारत में ऐसे भी दल है जो बनते और बिगड़ते रहते हैं। इन्हें छोटे–छोटे गुट कहा जा सकता है। ऐसे दलों में कांग्रेस (तिवारी) केरल, कांग्रेस बंगला कांग्रेस, रामराज्य परिषद आदि को याद किया जा सकता है। ऐसे दल कब बनते है और कब अस्त हो जाते है इसका पता लगाना कठिन है। ये विभिन्न दलों से निकले असन्तुष्ट नेताओं द्वारा निर्मित गुट है।

प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक दल और उनके कार्यक्रम

(Major Matinal Parties and their Programmes)

2019 में निम्नलिखित 8 दलों को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त है –

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), नेशनल पीपुल्स तृणमूल कांग्रेस, राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी तथा बहुजन समाजपार्टी।

इनमें से हम कुछ पार्टी प्रमुख राष्ट्रीय दलों की विचारधारा, कार्यक्रम, संगठन एवं भूमिका का वर्णन करेंगे।

कांग्रेस पार्टी : कांग्रेस (आई) (Congress Party : Congress [I])

कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में हुई। 1907 तक कांग्रेस का लक्ष्य विदेशी शासन पर दबाव डालना मात्र था। 1907 से 1919 तक कांग्रेस उदारवादियों और उग्रवादियों में विभक्त रही। सन् 1920 से 1947 तक कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गांधी ने किया और देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त कांग्रेस एक राजनीतिक दल में परिवर्तित हो गयी तथा केन्द्र और राज्यों के निर्वाचनों में प्रचण्ड बहुमत प्राप्त कर सत्ता का उपयोग करने लगी सन् 1967 के आम चुनाव में कांग्रेस की स्थिति दुर्बल हुई। सन् 1969 में कांग्रेस दो भागों में विभक्त हो गयी तथा 1971 एवं 1972 के चुनावों में कांग्रेस का पुनः प्रचण्ड विजय प्राप्त हुई। कांग्रेस किसका प्रतिनिधित्व करती है ? इस प्रश्न का जवाब 15 सितम्बर, 1931 में ही महात्मा गांधी ने लन्दन में 'फेडरल स्ट्रक्च कमेटी' में भाषण के दौरान किया था, कांग्रेस मूलतः भारत में 7 लाख गांवों में बसे मूक, अद्यभूत करोड़ों लोगों का प्रतिनिधित्व करती है – चाहे वे

तथाकथित ब्रिटिश भारत पर भारतीय भारत के हो। कांग्रेस यह मानती है कि उन्हीं हितों की सुरक्षा की जानी चाहिए जो इन करोड़ों मूक लोगों के हितों का साधन करते हैं।'' उन ऐतिहासिक दिनों से लेकर आज तक करोड़ो मूक लोगों तथा राष्ट्रीय हितों और दूसरी और कुछ वर्गीय हितों में संघर्ष छिड़ा कांग्रेस अपनी अधिकांश जनता के हितों के साथ दृढ़ प्रतिज्ञ रही।''

संगठन

कांग्रेस की सदस्यता दो प्रकार की है – प्रारम्भिक और सक्रिय। कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसकी आयु 18 वर्ष हो, कांग्रेस का सदस्य बन सकता है। सदस्य बनने के लिए दल के उद्देश्यों में लिखित विश्वास प्रकट करना पड़ता हैं प्रारम्भिक और सक्रिय सदस्यों के चन्दे तथा अधिकारों में अन्तर है। संगठन की दृष्टि से ग्राम या मोहल्ला कांग्रेस सीमित संगठन की आधारभूत इकाई हैं। ग्राम और मोहल्ला कांग्रेस समितियों के उपर तहसील समितियाँ होती है। इसके ऊपर जिला समितियां और प्रान्तीय समितियां होती हैं। प्रान्तीय कांग्रेस समीतियों के ऊपर कांग्रेस का राष्ट्रीय या अखिल भारतीय संगठन होता है जो एक अध्यक्ष एक कार्यकारिणी समिति, एक अखिल भारतीय कांग्रेस समिति और कांग्रेस के खुले वार्षिक अधिवेशन से मिलकर बनता हैं कांग्रेस ने विधान में एक नये संशोधन द्वारा अध्यक्ष कार्यकारिणी समिति में अध्यक्ष के अतिरिक्त 20 अन्य सदस्य होते है। कार्यकारिणी समिति के 10 सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा निर्वाचित किए जाते है और 10 सदस्य कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किए जाते है। कार्यकारिणी समिति में ही कांग्रेस की सर्वोच्च शक्ति निहित हैं अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में तीन प्रकार के सदस्य होते है। निर्वाचित प्रदेश और सम्बद्ध संस्थाओं के प्रतिनिधि। कांग्रेस के संसदीय कार्यो के नियंत्रण और समन्वय के लिए कांग्रेस कार्यकारिणी समिति एक संसदीय बोर्ड की स्थापना करती है, जिसमें कांग्रेसाध्यक्ष और पांच अन्य सदस्य होते हैं।

कांग्रेस (आई) की नीतियाँ और कार्यक्रम

(Programme and Policies of the Congress (I))

जनवरी 1980 के लोकसभा के चुनावों के समय इस दल ने जो चुनाव घोषणा–पत्र (Election Mainifeslo) जारी किया था और उसके बाद इस दल ने जो नीति

प्रस्ताव समय–समय पर पारित किये हैं उसके अनुसार इस दल के कार्यक्रम और नीतियों को हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन कर सकते है :

1. **धर्म निरपेक्ष समाज (Secular Society) :** इस दल ने यह वचन दिया था कि यह दल धर्म–निरपेक्षता की स्थापना के लिए वचनबद्ध है और इस मन्तव्य के लिए यह दल ऐसी कार्यवाहियाँ करेगा जिससे साम्प्रदायिक एकता और धार्मिक सहन शक्तियाँ विकसित हो सके। इस दल ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा और राष्ट्रीय जीवन में उनके प्रभावशाली सहभागिता को यकीनी बनाने के लिए आवश्यक पग उठाने का भी वचन दिया था। यह दल इस मत का समर्थक है कि संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुसार अल्पसंख्यकों के द्वारा स्थापित की गई शैक्षणिक संस्थाओं को पूर्ण सुरक्षा और धार्मिक तथा सांस्कृतिक व्यवहार की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। धर्म–निरपेक्षता को शक्तिशाली बनाने के लिए यह उन राजनीतिक सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं के विरूद्ध आवश्यक कार्यवाही करने के पक्ष में है जो संस्थाएं भारतीय शासन प्रणाली के मूल सिद्धान्तों को नष्ट करने के लिए साम्प्रदायिक वर्गो या जात–पात सम्बन्धी भावनाओं को उत्तेजित करती हैं।

2. **अल्पसंख्यक (Miniorties) :** इस दल ने यह वचन दिया था कि साम्प्रदायिक हिंसा (Communal Violences) को समाप्त करने के लिए यह दल एक विशेष शक्ति (Force) स्थापित करेगा जिसका उद्देश्य साम्प्रदायिक शक्ति स्थापित करने में सहायता करना होगा इस शक्ति में अल्पसंख्यकों, अनुसूचित कबिलों के लोग भर्ती किए जायेंगे। अल्पसंख्यकों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के प्रति भी यह दल विशेष ध्यान देने का समर्थक हैं। अपने चुनाव घोषणा–पत्र में इस दल ने अल्पसंख्यकों को विश्वास दिलाया था कि सुरक्षा सेवाओं और सरकार की अन्य सेवाओं में उन्हें उचित रोजगार अवसर प्रदान किए जाएंगे। इस दल ने यह भी विश्वास दिलाया कि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अल्पसंख्यक स्वरूप को यकीनी बनाया जायेगा और यह दल अल्पसंख्यकों के निजी कानून (Personal Law) में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

3. **प्रजातंत्र को शक्तिशाली बनाना (Strengthening of Democracy)** : इस दल ने यह विश्वास प्रकट किया था कि कुछ विशेष हितों के द्वारा धन का अधिक प्रयोग और शारीरिक पक्ष से डराने धमकाने (Physical Inlimidalious) की कार्यवाहियों को रोकने के लिए आवश्यक पग बने उठाने की तत्काल आवश्यकता है। इस दल के विचार में कार्यवाहियां विशेष करके पिछड़े क्षेत्रों में घटनाएं घटती हैं और जब तक इन कार्यवाहियों को समाप्त नहीं किया जाता तब तक भारतीय लोकतंत्र शक्तिशाली नहीं बन सकता। इस दल ने जनता दल की सरकार ने प्रजातंत्र विरोधी ऐसी कार्यवाहियों को रोकने के लिए कोई यत्न नहीं किये हैं, अपितु इसके विपरीत चुनावों में विजय प्राप्त करने के लिए जनता दल की सरकार ने स्वयं उन कार्यवाहियों का सहारा लिया हैं। जनता सरकार ने दल परिवर्तन को ही उत्साहित किया था और भी कुछ ऐसी कार्यवाहियाँ की थी जिनके कारण भारतीय प्रजातंत्र कमजोर है। इसलिए कांग्रेस (आई) ने इस बात पर बल दिया था कि भारतीय प्रजातंत्रीय प्रणाली में जो भी अभाव या पथभ्रष्टता प्रवेश कर गई है, उन सभी को दूर करने के लिए यह दल ठीक रूप से कार्यवाही करेगा।

4. **प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentalisation)** : इस दल ने अपने चुनाव घोषणा–पत्र में प्रजातंत्रीय विकेन्द्रीयकरण पर दृढ़ विश्वास प्रकट किया था। इस दल का विचार है कि राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों में लोगों को विशाल स्तर पर शामिल करने के लिए प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की क्रिया को कार्यान्वित रूप देना अनिवार्य है। इस दल का यह मत हैं कि प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की क्रिया निम्न स्तर पर आरंभ होना अनिवार्य हो ताकि लोग सरकार के साथ सम्बन्धित स्थानीय स्तर के कार्यो से क्रियाशील सहयोगी बन सके।

5. **आर्थिक कार्यक्रम (Economic Programme)** : यह दल समाजवादी समाज (Socialist Society) स्थापित करने के लिए वचनबद्ध है। यह दल ऐसी अर्थ–व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जो शोषण से मुक्त हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति

के लिए ही यह दल योजना बन्दी का पुनर्निर्माण करने का समर्थक है। अर्थव्यवस्था को दृढ़ बनाने के लिए इस दल की दृष्टि से अधिक से अधिक वे वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास की आवश्यकता है। मुद्रा स्फीति (Implation) के प्रसार को रोकने के लिए मांग और पूर्ति में ठीक संतुलन स्थापित करने के लिए यह दल उचित वित्तीय नीतियों को ग्रहण करना चाहता हैं। इस दल को विश्वास है कि इन मन्तव्यों को प्राप्ति के लिए उत्पादन को विशाल स्तर पर बढ़ाना अति आवश्यक है और यह तक ही सम्भव हो सकता है, यदि ऐसा आर्थिक वातावरण विकसित किया जाये जिसमें लोग औद्योगिक धन्धों में पैसा लगा सके। इसके अतिरिक्त इस दल का यह विश्वास है कि जब तक आवश्यक कच्ची सामग्री उचित मात्रा में उत्पादकों को प्राप्त नहीं होती तब तक उत्पादन के निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस मन्तव्य की प्राप्ति के लिए इस दल ने परिवहन के साधनों की योग्यता में सुधार करने, बिजली के उत्पादन को बढ़ाने और स्मगलिंग, जखीराबाजी और अन्य आर्थिक अपराधों को कठोरता सहित निपटाने के लिए आवश्यक कार्यवाहियाँ करने का विश्वास दिया था।

6. **रोजगार (Employment)** : यह दल रोजगार के अवसरों को बढ़ाने के लिए औद्योगिक विकास के साधन को विशाल स्तर पर अपनाना चाहता है। इस दल का विचार है कि बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने के लिए ऐसी औद्योगिक योजनाओं को प्राथमिकता दी जाये जो रोजगार के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करती हो। अधिक से अधिक रोजगार को यकीनी बनाने के लिए यह दल ग्रामीण और नगर क्षेत्रों में कारीगरों को अधिक से अधिक सुविधाएं देने का समर्थन करता है ताकि वह अपने लिए आप रोजगार पैदा कर सकें। यह दल रोजगार के अवसरों को बढ़ाने के मन्तव्य से वनों का विकास, दरियाओं और सिंचाई की नहरों में से रेत निकालने के कार्यो आदि को विशाल स्तर पर ग्रहण करना चाहता है। शिक्षक और योग्य युवक पुरूषों और स्त्रियों की

सहायता करके उन्हें अपना कारोबार चलाने के योग्य बनाना इस दल के कार्यक्रम में शामिल है।

7. **काश्तकारी (Agriculture)** : यह दल काश्तकारी का आधुनिकीकरण के लिए काश्तकारी की उपज को अत्याधिक बढ़ाने के पक्ष में है। इस दल ने अपने चुनाव घोषणा–पत्र में यह दावा किया था कि कांग्रेस शासन के दौरान की 'लघु कृषक विकास संस्था' (Small Farmer's Development Agency) स्थापित की गई थी। अत्याधिक संस्था में छोटे कृषकों ने इस संस्था से अनेकों प्रकार की रियायतें और लाभ प्राप्त किये थे। लघु कृषक विकास संस्था की गतिविधियों का सम्पूर्ण देश में विस्तार करना और इसके कार्यक्रमों का आधुनिकीकरण करना इस दल के कार्यक्रम में शामिल है।

8. **उद्योग (Industry)** : यह दल छोटे ग्रामीण स्तर और विशाल स्तर के उद्योग के सामूहिक विकास पर विश्वास रखता है। उद्योग में श्रमिकों की सहभागिता को यकीनी बनाना इस दल के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है।

9. **कमजोर वर्ग (Weaer Sections)** : इस दल ने अपने चुनाव घोषणा पत्र में यह विश्वास दिया था कि कमजोर वर्गो के लिए एक विश्वास कार्यक्रम लागू करेगा। पांच वर्षो के समय में सभी गांवों को पीने के शुद्ध पानी का प्रबन्ध करना, कमजोर वर्गो के लोगों को मकान बनाने के लिए मुफ्त भूमि देना, शहरी क्षेत्रों में गन्दे उपनिवेशों की सफाई कराना, सफाई कर्मचारियों के प्रति विशेष ध्यान देना, ग्रामीण क्षेत्रों में कर्जदारी समाप्त करना और वचनबद्ध मजदूरी (bouded labour) का अन्त करना कमजोर वर्गो की स्थिति को सुधारने सम्बन्धी ग्रहण किये जाने वाले कार्यक्रम के विशेष लक्षण होंगे। कांग्रेस (आई) ने 20 सूत्रीय कार्यक्रम को फिर से लागू करने के लिए अपने चुनाव घोषणा पत्र में घोषणा की।

विदेश नीति (Foregin Policy)

विदेश नीति पर निम्नलिखित बातों पर बल दिया गया :

1. आणविक तकनीकि का विकास शान्तिपूर्ण क्षेत्रों के लिए जारी रहेगा।

2. पार्टी देश की गरिमा और सुरक्षा कायम रखेगी।
3. अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व और गुट–निरपेक्षता की नीति का दृढ़ता के साथ पालन किया जाएगा।
4. अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में राष्ट्रीय हित और आत्मसम्मान को सर्वोपरि रखने का वचन दिया गया।

12वीं लोकसभा के चुनाव (फरवरी 1998) और कांग्रेस का चुनाव घोषणा पत्र

लोकसभा के फरवरी 1998 में सम्पन्न हुए मध्यावधि चुनावों के अवसर पर जारी चुनाव घोषणा पत्र में कांग्रेस ने बाबरी मस्जिद को ध्वस्त होने से नहीं बचा पाने के कारण बिना शर्त माफी मांगी और इसके लिए अपनी तत्कालीन सरकार के पूर्व प्रधानमंत्री पी०वी० नरसिंह राव को पूरी तरह जिम्मेदार ठहराया। घोषणा पत्र में संयुक्त मोर्च को भानुमति का कुनवा बताया। जनता दल को 'एमीबा' कीड़ें की तरह घोषित किया गया। इसे निराशा और घमण्डी लोगों का जमावड़ा बताया गया। कांग्रेस ने जैन आयोग की रिर्पोट के मुद्दे पर संयुक्त मोर्चा सरकार से समर्थन वापसी को उचित ठहराया और कहा कि वह किसी भी परिस्थिति में अपने नेता राजीव गांधी की हत्या पर समझौता नहीं कर सकती।

कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र में अल्पसंख्यकों से अनेक वादे किये। कहा गया कि अल्पसंख्यकों और मानवाधिकारों के लिए एक नया मन्त्रालय गठित किया जायेगा। संविधान में संशोधन करके अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के लिए एक आयोग स्थापित करेगी। उर्दू को उसका उचित स्थान दिलाया जायेगा पार्टी भारतीयों के लिए समान निजी कानून बनाने के विचार को नहीं मानती। कांग्रेस अल्पसंख्यकों के सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े लोगों को आरक्षण की सुविधा देगी। उन्हें पिछड़े वर्गो के लोगों को दी जाने वाली विशेष सुविधाओं का भी लाभ देगी।

कांग्रेस ने चुनाव पत्र में कहा है कि देश के आदिवासी क्षेत्रों में विशेष न्यायालयों को स्थापित किया जाएगा। बैंकों द्वारा अनुसूचित जाति और जनजाति किसानों के लिए शुरू की गई सौ करोड़ रूपए की विशेष ऋण व्यवस्था की राशि दुगुना कर दिया जाएगा। उद्योगों में कर्मचारियों की हिस्सेदारी को प्रोत्साहित किया जाएगा। पूर्व सैनिकों

के पुनर्वास के लिए नए कार्यक्रम शुरू किए जायेंगे। महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ भेदभाव को समाप्त करने के लिए पार्टी एक राजनीतिक अभियान शुरू करेगी। कांग्रेस सभी स्कूलों में एन०सी०सी० को अनिवार्य कर देगी। कांग्रेस यह सुनिश्चित करेगी कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली का लाभ सिर्फ गरीब और जरूरतमन्द लोगों को मिले। वर्तमान परिवार नियोजन की खामियों को एक सुनिश्चित तरीके से दूर करने का प्रयास किया जायेगा। चुनाव घोषणा पत्र में कांग्रेस ने अपने आर्थिक ऐजेण्डा की भी रूपरेखा निर्धारित की। कहा गया कि कृषि और ग्रामीण बुनियादी ढांचे में विशेषकर पिछड़े इलाकों में वास्तविक पूंजी निवेश बढ़ाना होगा। ऋण प्रणालियों को फिर सशक्त बनाना होगा। बिजली, सड़क, बन्दरगाह, कोयला, तेल और गैस, खनन और दूरसंचार जैसे क्षेत्रों में घरेलू और विदेशी, सार्वजनिक और निजी, पूंजी निवेश बढ़ाना होगा। पूंजी बाजार में फिर से उत्साह का संचार करना होगा। रोजगार परक आर्थिक गतिविधियों को नीति का विकास बनाकर उन पर विशेष ध्यान देना होगा। इनमें निर्यात, कृषि, पशुधन और पशुपालन, सूचना टेक्नॉलोजी, आवास और निर्माण, नवीकरण, छोटे और ग्रामीण उद्योग, कपड़ा तथा पर्यटन आदि उद्योग शामिल है।

कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र में कहा कि वह विदेश नीति को देश की आर्थिक प्राथमिकतओं और चिंताओं से जोड़ेगी। कांग्रेस देश में पाकिस्तान के सहयोग से चल रही आतंकवादी और घुसपैठ की गतिविधियों का डटकर मुकाबला करेगी। हमारी परमाणु नीति शान्तिपूर्ण और विकासात्मक बनी रहेगी। लेकिन जरूरत पड़ने पर हम अपने अन्य विकल्पों को भी खुला रखेंगे। कांग्रेस अमरीका के साथ सम्बन्धों को और मजबूत करेगी, यूरोपीय संघ के साथ समझौतों के सिलसिले को आगे बढ़ाया जाएगा। रूस के साथ ऋण समस्या का मान्य हल खोजने के प्रयास किए जाएंगे। कांग्रेस पूर्ण निरशस्त्रीकरण के प्रयास जारी रखेगी। कांग्रेस ने धर्मनिरपेक्षता की अपनी नीति को फिर दुहराया। घोषणा पत्र में कहा गया कि धर्मनिरपेक्ष होने का दावा करने वाले वामंपथी मोर्दे ने सन् 1989 के चुनावों में भाजपा के साथ रहा। कांग्रेस ने ही भाजपा से न कभी समझौता किया और न करेगी। पार्टी ने देश में आर्थिक स्वरूप की स्थापना को अपना लक्ष्य बताया।

''पूरे भारत से नाता है, सरकार चलाना आता है'' के उद्घोष के साथ कांग्रेस ने विश्वास व्यक्त किया है कि स्थायित्वपूर्ण और धर्मनिरपेक्ष सरकार के लिए एक बार फिर उसे भारत की जनता का समर्थन मांगा।

13वीं लोकसभा में चुनाव (सितम्बर–अक्टूबर 1999) और कांग्रेस का घोषणा पत्र

1999 में 13वीं लोकसभा का चुनाव कांग्रेस ने श्रीमती सोनिया गांधी ने नेतृत्व में लड़ा। पिछले वर्ष सोनिया के अध्यक्ष पद सम्भालने से पार्टी को नया वंशगत उत्तराधिकारी मिल गया। सोनिया गांधी के इस चुनाव में अल्पसंख्यकों और दलितों का समर्थन फिर से पाने के साथ–साथ अभिजात वर्ग की सद्भावना का पहले जैसा लाभ उठाने का भरसक कोशिश की। मध्यम वर्ग का दिल जीतने के लिए पार्टी ने चुनाव घोषणा पत्र में रोजगार पर जोर देते हुए कहा कि 'एक करोड़ नए रोजगार के अवसर बनाए जाऐगे। अल्पसंख्यकों के लिए विशेष पैकेज की चर्चा करते हुए प्राथमिक शिक्षा पर जोर दिया गया।

चुनाव घोषणा पत्र के प्रमुख बिन्दु

- मुद्रा स्फीति के नियन्त्रण के लिए केबिनेट समिति का गठन।
- सन् 2003 तक आपात लाइसेन्स का खात्मा करना।
- छोटे किसानों को मिलने वाले कर्ज की मात्रा दोगुनी करना।
- दूरसंचार में विदेशी निवेश की सीमा पर पुनविचार करना।
- प्रतिरक्षा सुधारों के लिए समिति का गठन करना।
- राष्ट्रीय वरिष्ठ नागरिक कोष की स्थापना।
- राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा परिषद का गठन करना।
- श्रम कानूनों का पुनर्निरीक्षण तथा नई कपड़ा नीति।

14वीं लोकसभा के चुनाव (अप्रैल–मई 2004 और कांग्रेस) : 2004 के लोकसभा चुनाव कांग्रेस ने श्रीमती सोनिया गांधी के नेतृत्व में लड़े और 114 से अपनी सीटें 145 करके चुनावी चमत्कार किया। चुनावों में कांग्रेस की रणनीति दो तरफा रही – सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरकर केन्द्रीय भूमिका में आना और अपने इर्द–गिर्द रणनीतिक

गठजोड़ बनाना। कांग्रेस के ज्यादातर साझीदार अपने–अपने राज्यों में उसके मुख्य विरोधी थे। कांग्रेस ने ज्यादातर उन्हीं राज्यों में अधिक सफलता प्राप्त की जहां वह सत्ता में नहीं है। पंजाब, कर्नाटक, उत्तराखण्ड और केरल में उसका प्रदर्शन खराब रहा। कुल मिलाकर उसे 26.69 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। चुनावों के बाद कांग्रेस की नेता श्रीमती सोनिया गांधी के नेतृत्व में 'संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन' (UPA) अस्तित्व में आया और डॉ० मनमोहन सिंह के नेतृत्व में सरकार का गठन किया गया।

15वीं लोकसभा के चुनाव (अप्रैल–मई 2009 और कांग्रेस) : 15वीं लोकसभा के लिए अप्रैल–मई 2009 में पांच चरणों में सम्पन्न चुनावों में सोनिया गांधी की अध्यक्षता वाले यूपीए ने अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की। लोकसभा की चुनाव वाली 543 सीटों में से 261 सीटों पर विजय प्राप्त करने वाला यूपीए गठबन्धन अपने ही दम पर सरकार के गठन हेतु स्पष्ट बहुमत के निकट पहुंच गया। यूपीए के प्रमुख घटक कांग्रेस को 29.67 प्रतिशत मतों के साथ अकेले ही 206 सीटों पर जीत प्राप्त हुई। पहले से भी अधिक शक्ति के साथ यूपीए ने सत्ता में वापसी की तथा डॉ० मनमोहन सिंह ने एक बार पुनः प्रधानमन्त्री के रूप में सरकार की कमान सम्भाली।

16वीं लोकसभा चुनाव (अप्रैल–मई 2014 और कांग्रेस) : इस चुनाव में कांग्रेस को 19.6 प्रतिशत मतों के साथ मात्र 44 सीटें प्राप्त हुई। सोनिया गांधी के नेतृत्व वाले यूपीए को भी कांग्रेस समेत कुल मिलाकर मात्र 60 सीटें ही मिली। दिल्ली, गुजरात, गोवा, हिमाचल प्रदेश, ओडिशा, झारखण्ड, राजस्थान एवं उत्तराखण्ड में कांग्रेस को एक भी सीट नहीं मिली। 80 सीटों वाले उत्तर प्रदेश में सोनिया गांधी (रायबरेली) और राहुल गांधी (अमेठी) ही अपनी जीत दर्ज कर सके। चूंकि दस प्रतिशत सीटें न होने के कारण 16वीं लोकसभा में कांग्रेस और उसके नेता को मान्यता प्राप्त विरोधी दल का दर्जा भी नसीब नहीं हुआ।

लोकसभा चुनाव 2014 : कांग्रेस घोषणा–पत्र

लोकसभा चुनावों के लिए कांग्रेस ने अपना घोषणा–पत्र 26 मार्च, 2014 को जारी किया। इसमें पार्टी ने 100 दिन का अपना एजेण्डा पेश किया। कांग्रेस के घोषणा –पत्र में सबके लिए आवास के अधिकार और स्वास्थ्य के अधिकार का वादा किया

गया। कांग्रेस भवन में घोषणा–पत्र जारी करते हुए कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी ने कहा कि हम भूमिहीनों और गरीबों के लिए आवास का वायदा करते हैं। इसके अतिरिक्त घोषणा–पत्र में बुजुर्गों, विधवाओं और विकलांगों को पेंशन देने की भी बात कही गई।

कांग्रेस ने आर्थिक वृद्धि दर तीन वर्ष में आठ प्रतिशत वार्षिक करने, 10 करोड़ रोजगार के अवसर सृजित करने तथा मुद्रास्फीति पर नियन्त्रण के लिए ठोस कदम उठाने का वायदा किया। घोषणा–पत्र में वायदा किया गया कि सत्ता में आने के एक वर्ष के अन्दर उनकी सरकार प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) को प्रोत्साहित करेगी और उत्पाद एवं सेवा कर (जीएसटी) एवं प्रत्यक्ष कर संहिता (डीटीसी) के प्रस्तावों को लागू किया जाएगा, जो घोषणा–पत्र दिया है उसमें उदारीकरण की जगह सामाजिक क्षेत्र को प्राथमिकता दी गई। पार्टी ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलाव के लिए 15 सूची कार्यक्रमों को जनता के सामने रखा। 20 वर्ष तक जमीनों पर काबिज लोगों को मालिकाना हक देने का वादा भी किया गया।

स्वास्थ्य सेवाओं और रोजगार को कानूनी अधिकार के दायरे में लाना भी पार्टी के घोषणा–पत्र का हिस्सा है। कांग्रेस ने आने वाले पांच वर्षों में शहरों में झुग्गियों की जगह पक्के मकान बनाने, 10 लाख की जनसंख्या वाले शहरों में हाईस्पीड ट्रेन चलाने और अगले पांच वर्षों में 10 करोड़ लोगों को प्रशिक्षित कर उन्हें रोजगार देने का वादा किया। 'आपकी आवाज, हमारा संकल्प' शीर्षक से जारी घोषणा–पत्र में कांग्रेस थोड़ी सहमी हुई भी दिखी। शायद यही कारण था कि घोषणा–पत्र में कहीं भी महंगाई को कम करने का वादा नहीं किया गया। पार्टी को आर्थिक मुद्दों पर चुप्पी साधना ही मुफीद लगा। इसके बजाय राहुल गांधी ने सामाजिक मुद्दों को आगे बढ़ाया।

चुनाव से पूर्व कांग्रेस ने मध्य और निम्नवर्ग को साधने का निर्णय किया। पार्टी कल्याणकारी उपायों पर विशेष ध्यान देने के एजेण्डे पर थी। इसके अन्तर्गत आम आदमी को स्वास्थ्य, पेंशन, आवास, सामाजिक सुरक्षा, प्रतिष्ठा के अनुरूप मानवीय स्थिति में काम करने और उद्यमशीलता के अधिकारों से लैस करने का वादा किया गया। इसके अतिरिक्त राजीव गांधी राष्ट्रीय छात्रवृति का दायरा बढ़ाकर इसमें पिछड़े

वर्ग को भी समाहित करने की बात कही गई। निजी क्षेत्र में आरक्षण लागू करने की बात और अनुसूचित जाति व जनजाति की प्रगति जानने के लिए पार्टी हर पांच वर्ष में सर्वेक्षण कराएगी। देश के हर ब्लॉक में गरीब बच्चों के लिए नवोदय विद्यालय खोले जाएंगे।

घोषणा–पत्र में कांग्रेस ने भ्रष्टाचार से निपटने का दृढ़ संकल्प, गरीबी रेखा के नीचे और मध्यवर्ग के बीच आने वाली 70 करोड़ की जनसंख्या के उन्नयन, महिलाओं को शक्ति सम्पन्न बनाने और राजनीति में उनके प्रतिनिधित्व को बढ़ाने का वादा भी किया। काले धन जैसे मुद्दों पर विपक्ष के धारदार हमलों को कुंद करने के लिए पार्टी काले धन को वापस लाने के लिए विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करने का वादा किया। सरकारी नौकरियों में आ रही कमी को ध्यान में रखते हुए नए रोजगारों के सृजन पर विशेष जोर देने की बात की गई।

भ्रष्टाचार के आरोपों से जूझ रही कांग्रेस ने इस मुद्दे पर विपक्ष के आक्रामक प्रचार अभियान का सामना करने के लिए घोषणा–पत्र में इस समस्या से निपटने के लिए कानून बनाने की बात कही है।

घोषणा–पत्र के मुख्य बिन्दु

- आम आदमी को स्वास्थ्य, पेंशन, आवास, सामाजिक सुरक्षा देने का वायदा;
- काले धन को वापस लाने के लिए विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करने का वादा;
- महिलाओं को लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में 33 प्रतिशत आरक्षण देगी पार्टी;
- साम्प्रदायिक हिंसा विरोधी बिल को पारित करेगी पार्टी;
- पिछड़े अल्पसंख्यकों को आरक्षण देने के लिए कानून लाएगी पार्टी;
- मौजूदा आरक्षण व्यवस्था में बदलाव किए बिना आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग को आरक्षण के दायरे में लाने का रास्ता निकालेगी पार्टी;
- बुजुर्गों, विधवाओं और विकलांगों को पेंशन देने का वादा;
- आपकी आवाज, हमारा संकल्प का चुनावी नारा;

- निजी क्षेत्र में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण पर राष्ट्रीय सहमति बनाना;
- लचीले श्रम कानून, काले धन को वापस लाने की कोशिश की जाएगी;
- स्वास्थ्य पर खर्च बढ़ाकर सकल घरेलू उत्पाद के तीन प्रतिशत के बराबर लाया जाएगा।

भारतीय जनता पार्टी (Bharatiya Janta Party)

भारतीय जनता पार्टी देश का एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय दल है। इस दल की स्थापना का मुख्य कारण जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति द्वारा दोहरी सदस्यता को अस्वीकार करना था। 4 अप्रैल 1980 को जनता पार्टी के एक और विभाजन की भूमिका तैयार हो गई जब दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने अपने संसदीय बोर्ड के प्रस्ताव का अनुमोदन कर दल के विधायकों तथा पदाधिकारियों पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यो में भाग लेने पर रोक लगा दी। इसके परिणामस्वरूप 5 अप्रैल 1980 को भूतपूर्व जनसंघ के सदस्यों ने नई दिल्ली में दो दिन का सम्मेलन बुलाया और एक नए दल की स्थापना करने का निश्चय किया। इस सम्मेलन की अध्यक्षता श्रीमति विजयराजे सिंधिया ने की। 16 अप्रैल, 1980 को 'भारतीय जनता पार्टी' की स्थापना की गई और श्री अटल बिहारी वाजपेयी को इसका अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। इस सम्मेलन में लगभग 4 हजार प्रतिनिधि शामिल हुए थे। भारतीय जनता पार्टी का चुनाव / चिन्ह 'कमल का फूल' है।

नीति तथा कार्य (Policy and Programme)

भारतीय जनता पार्टी के संविधान की धारा 2 में कहा गया है कि ''पार्टी राष्ट्रीय समन्वय, लोकतंत्र, सकारात्मक धर्म निरपेक्ष, राजनीति के लिए कृतसंकल्प है। पार्टी आर्थिक तथा राजनीतिक सत्ता के विकेंद्रीकरण में विश्वास रखती है।''

सन् 1998 में हुए लोकसभा चुनावों से पूर्व 3 जनवरी 1998 को भारतीय जनता पार्टी द्वारा जारी किए गए अपने चुनाव घोषणा पत्र में निम्नलिखित मुख्य बातें शामिल थी –

1. अयोध्या में राम मंदिर के निर्माण के लिए सभी प्रयास किऐ जायेगें।
2. उत्तरांचल, वनाचल, विदर्भ तथा छत्तीसगढ़ को पृथक राज्यों का दर्जा दिया जाएगा।
3. राजधानी दिल्ली को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया जाएगा।
4. प्रतिवर्ष एक करोड़ नौकरियां तथा बीस लाख नये मकान।
5. सरकारिया आयोग की सिफारिशों पर तुरन्त अमल किया जायेगा।
6. महिलाओं के लिए शिक्षा तथा संसद में 33 प्रतिशत आरक्षण।
7. अनुच्छेद 356 के दुरूपयोग को रोकने के लिए कदम उठाए जायेंगे।
8. अनुच्छेद 370 को जम्मू व कश्मीर के विशेष स्तर से सम्बन्धित है, को समाप्त किया जायेगा।
9. भ्रष्टाचार को रोकने के लिए योजनाबद्ध तरीके से कदम उठाने की घोषणा करते हुए कहा गया है कि लोकपाल की नियुक्ति की जायेगी और प्रधानमंत्री सहित सार्वजनिक पदों पर प्रतिष्ठित सभी लोग उसकी परिधि में आयेगे।
10. प्रत्येक निर्वाचित प्रतिनिधि को 90 दिन के भीतर अपने तथा अपने परिवार जनों की सम्पत्ति का ब्यौरा देना होगा।
11. सी०बी०आई० को और अधिक स्वायत्तता दी जायेगी।
12. न्यायिक व्यवस्था में सुधार किया जाएगा। और पार्टी शीघ्र ही निष्पक्ष एवं कम खर्चीला न्याय दिलाने के लिए अनेक कदम उठायेगी।
13. गन्तव्यवाद का सामना करने के लिए पार्टी उपयुक्त कानून बनायेगी शांति एवं व्यवस्था को बनाए रखने के लिए राज्य सरकारों को समय पर सहायता उपलब्ध कराऐगी, अवैध शस्त्रों का पता लगाने तथा उनकी तस्करी को रोकने के लिए देशव्यापी अभियान चलायेगी।
14. घोषणा पत्र में कहा गया है कि भारत को ऐसी नीतियां अपनानी चाहिए जिससे सकल घरेलू उत्पाद में 8–9 प्रतिशत की वृद्धि दर वार्षिक रूप से बनाई जा सके।

15. पार्टी सभी मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के चुनाव खर्च के लिए सरकारी सहायता देने की एक योजना लागू करने पर विचार करेगी।

16. 'स्वदेशी' पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए घोषणा पत्र में कहा गया है कि इसका सीधा–साधा अर्थ है – सर्वप्रथम भारत। सभी राष्ट्रों का यह मुख्य सिद्धान्त है कि अपने देश की वस्तुओं को प्राथमिकता दी जाये।

17. संविधान की समीक्षा के लिए एक आयोग का गठन किया जायेगा।

18. अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण पर जोर, कर सम्बन्धी मामलों का सरलीकरण तथा कर दायरे को व्यापक बनाना।

19. देश को आतंक और दंगों से मुक्ति।

20. घोषणा पत्र में भाजपा ने वायदा किया कि देश की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए परमाणु अस्त्रों के निर्माण के विकल्प को खुला रखा जाऐगा। इस सम्बन्ध में वह किसी का भी आदेश नहीं मानेंगे।

21. विदेश नीति के सम्बन्ध में घोषणा पत्र में ये कहा गया है कि भाजपा सभी देशों के साथ शांति स्थापित करने, भारत के आकार और उसकी क्षमता के अनुसार विश्व के मामलों में भारत की भूमिका और उसको समुचित स्थान दिलाने संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में भारत को स्थाई स्थान दिलाने के लिए जोरदार प्रयत्न करेगी।

13वीं लोकसभा के चुनाव (सितम्बर–अक्टूबर 1999) तथा भारतीय जनता पार्टी का घोषणा पत्र

13वीं लोकसभा चुनावों के अवसर पर भाजपा ने अपना पृथक घोषणा–पत्र जारी नहीं किया। राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन का प्रमुख घटक होने के कारण पार्टी ने राजग घोषणा पत्र के आधार पर ही चुनाव लड़ा। इस चुनाव में पार्टी ने राम मन्दिर, अनुच्छेद 370, समान नागरिक संहिता जैसे विवादास्पद मुद्दों को फिलहाल ठण्डे बस्ते में डाल दिया। 24 दलों ने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन को साथ लेकर अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा ने 339 सीटों पर प्रत्याशी खड़े कर 182 सीटें हासिल की।

चुनाव : 1999 : राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के घोषणा–पत्र के प्रमुख बिन्दु –

1. विदेशी मूल के लोगों को विद्यापिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका में उच्च पद देने पर पाबन्दी।
2. लोकसभा अपना कार्यकाल पूरा करें, इसकी पक्की व्यवस्था।
3. घरेलू उद्योग को खास महत्व।
4. नई सूचना प्रौद्योगिकी नीति।
5. रोजगार और महिलाओं के उद्यमों को कर्ज देने के लिए बैंक की स्थापना।
6. राष्ट्रीय बचत को सकल घरेलू उत्पाद के 24 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 प्रतिशत करना।
7. योजना राशि का 60 प्रतिशत कृषि और ग्रामीण विकास पर।
8. निजी ऑपरेटरों की नियन्त्रित के लिए प्रसारण विधेयक।

भारतीय जनता पार्टी का चेन्नई घोषणा पत्र

28–30 दिसम्बर 1999 को भाजपा की राष्ट्रीय परिषद ने अपनी चेन्नई बैठक में चेन्नई घोषणा–पत्र की स्वीकृति प्रदान की। गृहमंत्री लाल कृष्ण अडवाणी के अनुसार यही घोषणा पत्र अब भाजपा की आगे की सोच है। घोषणा पत्र में राम जन्मभूमि सहित सभी विवादित मुद्दों को दरकिनार कर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन (राजग) के ऐजेण्डे को निष्ठापूर्वक लागू करने का संकल्प व्यक्त किया गया है। प्रारम्भ में कहा गया है कि हर कार्यकर्ता को यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि राजग के ऐजेण्डे को छोड़कर पार्टी का अपना कोई ऐजेण्डा नहीं है। अल्पसंख्यकों के बारे में पार्टी का दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए घोषणा पत्र में कहा गया है कि भाजपा कभी एक–दूसरे के धर्म में मतभेदों को राष्ट्र निर्माण के मार्ग में बाधक नहीं बनने देगी।

संक्षेप में, भाजपा ने अपने को नई सदी के लिए तैयार करने के लिए जारी चेन्नई घोषणा–पत्र के प्रारूप में रामजन्म भूमि सहित सभी विवादित मुद्दों को अलग रखकर राजग के ऐजेण्डे को निष्ठापूर्वक लागू करने तथा देश को बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के कृत्रिम विभाजन से मुक्त करने का संकल्प लिया है।

14वीं लोकसभा के चुनाव (अप्रैल–मई 2004 और भाजपा) : वाजपेयी सरकार ने लगभग आठ माह पूर्व ही लोकसभा के विघटन की अनुशंसा कर नई लोकसभा के निर्वाचन की पृष्ठभूमि तैयार की। नवम्बर–दिसम्बर 2003 में आयोजित मध्य प्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ राज्यों की विधानसभाओं के लिए सम्पन्न चुनावों में अप्रत्याशित सफलता ने राजग के नीतिकारों क मस्तिष्क में खुशनुमा माहौल 'भारत उदय' की घोषणा कर रहा था। इस अवधि में जनमत सर्वेक्षण भगवा उभार और कांग्रेस के उतार की भविष्यवाणी कर रहे थे। वाजपेयी को सोनिया गांधी की तुलना में हांसिल भारी लोकप्रियता का राजग को खासा लाभ मिलना इंगित किया गया, किन्तु चुनावों में भाजपा नीत गठबन्धन कारगर सिद्ध नहीं हुआ। भाजपा अपनी अब तक की सर्वाधिक 182 सीटों से खिसककर 138 पर पहुंची और उसे 22.16 प्रतिशत मत ही प्राप्त हुए। जनता ने भाजपा की इस सोच को नकार दिया कि केवल प्रबन्धन और धुआंधार चुनाव प्रचार के सहारे चुनाव जीता जा सकता है।

15वीं लोकसभा के चुनाव (अप्रैल–मई 2009 और भाजपा) : 15वीं लोकसभा चुनावों में भाजपा नीत एनडीए को 159 सीटें और अकेली भाजपा को 19.29 प्रतिशत मतों के साथ मात्र 116 सीटें हासिल हुई। आडवाणी ऐसा कोई सन्देश नहीं दे सके जो समय की जरूरतों से मेल खाता हो। पहचान के संकट और सैद्धान्तिक भ्रम में फंसी भाजपा ने मध्यम वर्ग को खो दिया।

16वीं लोकसभा के चुनाव (अप्रैल–मई 2014 और भाजपा) : 16वीं लोकसभा के चुनावों में भाजपा को 282 सीटों के साथ 31.5 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। लोकसभा में तीस वर्षों बाद किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। भाजपा के नेतृत्व वाले एनडीए को कुल मिलाकर 335 सीटों पर विजय मिली। भाजपा/एनडीए को दिल्ली, उत्तराखण्ड, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, गोवा, गुजरात, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में अभूतपूर्व जीत प्राप्त हुई। यहाँ तक कि असम, ओडिशा, विहार, झारखण्ड में भी भाजपा/एनडीए को सफलता मिली। भाजपा की सफलता का श्रेय उसके प्रधानमन्त्री पद के प्रत्याशी नरेन्द्र मोदी एवं उनके सुशासन और विकास के नारों में देखी जा सकती है।

भारतीय जनता पार्टी का लोकसभा चुनाव 2014 के लिए घोषणा–पत्र

भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने 7 अप्रैल, 2014 को 16वीं लोकसभा के पहले चरण के मतदान शुरू होने के साथ ही अपना घोषणा–पत्र जारी किया। भाजपा ने अपने चुनावी घोषणा–पत्र में अयोध्या में राम मन्दिर के निर्माण, जम्मू–कश्मीर से धारा 370 हटाने और समान नागरिक संहिता जैसे मुद्दों को शामिल करते हुए लोगों से इन्हें पूरा करने का वायदा किया है।

- घोषणा–पत्र में अर्थव्यवस्था व आधारभूत संरचना को मजबूत करने और भ्रष्टाचार मिटाने पर जोर दिया गया है, वहीं राम मन्दिर और कश्मीर जैसे संवेदनशील मुद्दों को एक बार फिर शामिल किया है।
- भाजपा के घोषणा–पत्र में नीतियाँ की कमी, व्यवस्था में सुधार और भ्रष्टाचार के साथ ही टीम इण्डिया की परिकल्पना जैसे मुद्दे शामिल।
- युवाओं के लिए रोजगार पर जोर दिया जाएगा। युवाओं को नीति–निर्धारण में शामिल करेंगे।
- फ्रेट एवं औद्योगिक कॉरिडोर विकसित किए जाएंगे।
- प्रत्येक गांव तक पानी, प्रत्येक क्षेत्र तक पानी सरकार की प्राथमिकताओं में से एक होगा।
- बहु ब्रांड खुदरा क्षेत्र को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में एफडीआई का स्वागत।
- तटीय क्षेत्र नेटवर्क का विकास सागरमाला परियोजना के द्वारा किया जाएगा।
- निवेशकों को आकर्षित करने के लिए कर प्रणाली में सुधार किया जायेगा। कर आतंक का खात्मा होगा और लोगों की परेशानी कम होगी।
- अल्पसंख्यकों को शिक्षा और उद्योग में अधिक अवसरों की आवश्यकता पर जोर।
- न्यायिक, चुनावी और पुलिस सुधारों पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है।

- राष्ट्रीय स्वास्थ्य गारंटी मिशन सहित नई राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति तैयार की जाएगी। अस्पतालों का आधुनिकीकरण किया जाएगा। प्रत्येक राज्य में एम्स होगा।
- महिला सुरक्षा पर भी खासतौर पर ध्यान रखा गया है, जिसके लिए हर राज्य में पुलिस सिस्टम को रिफॉर्म करने की बात की गई है।
- अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति को विशेष अधिकार देने का वादा किया गया है।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के अन्तर को कम करने का दावा किया गया है। केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों को मजबूत किया जाएगा।
- अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए टैक्स ढांचे में सुधार जरूरी है। टैक्स के मौजूदा नियमों से लोगों की मुश्किलें बढ़ी हैं। संप्रग सरकार ने टैक्स टेरोरिज्म को बढ़ाया है। इसके साथ ही सरकारी बैंकों की हालत सुधारने की बात की गई है।
- भाजपा ने भारत के हर व्यक्ति को पक्का घर का वादा किया है।
- भाजपा सरकार निवेशकों को आकर्षित करने के लिए कर प्रणाली में सुधार करेगी।
- कई नए कॉलेज और यूनिवर्सिटी खोलने का वादा किया गया है। हर गांव में नेशनल ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क बिछाया जाएगा। रेलवे का एग्री नेटवर्क तैयार करेंगे। पूरे देश में गैस ग्रिड बनाया जाएगा। 50 नए टूरिस्ट सर्किट बनाए जाएंगे। बॉर्डर और कोस्टल एरिया में यातायात सुविधा को बेहतर बनाया जाएगा।
- कृषि क्षेत्र और मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर में भी विशेष पैकेज देने का वादा किया गया है।
- देश के युवा अभी स्किल्ड नहीं हैं और उन्हें पूरी तरह स्किल्ड किया जाएगा।
- इसके अतिरिक्त हाई स्पीड रेल नेटवर्क तैयार करने की बात कही गई है।
- विज्ञान के क्षेत्र में और विकास करेंगे। नदियों के जोड़ने का कार्य होगा।

- योग, आयुर्वेद और होम्योपैथ का विकास होगा। मल्टी कंट्री एक्सचेंज प्रोग्राम शुरू करेंगे। यूजीसी उच्च शिक्षा में सुधार का कार्य भी करेगा।
- शहरों और गांवों का फर्क कम किया जाएगा। विकलांगों के लिए नए अधिकार तय होंगे। मदरसों के आधुनिकीकरण का कार्य करेंगे। मदरसों को केन्द्र सरकार पैसा देगी।
- भाजपा ने जम्मू–कश्मीर मुद्दे पर कहा है कि कश्मीरी पंडितों की सम्मान के साथ घाटी में वापसी कराई जाएगी और उनकी सुरक्षा की कड़ी व्यवस्था करने के साथ ही जीवनयापन की सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएंगी।
- कालेधन के सम्बन्ध में कहा गया है कि विदेशों में जमा कालेधन के लिए टॉस्क फोर्स बनाई जाएगी, जिसके द्वारा कालेधन को वापस देश में लाया जाएगा। ब्लैक मनी को रोकने के लिए दूसरे देशों की सरकार के साथ सूचनाओं का आदान–प्रदान किया जाएगा।
- भाजपा ने भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में कहा है कि वह एक सिस्टम खड़ा करेगी जो भ्रष्टाचार की सभी गुंजाइशों को समाप्त कर देगा। इसके लिए जनता को जागरूक किया जाएगा।
- पार्टी जनता को जन जागरूकता, प्रौद्योगिकी आधारित ई–गवर्नेंस आदि के बारे में सक्षम करेगी, जिससे भ्रष्टाचार रोकने में मदद मिलेगी। भ्रष्टाचार रोकने के लिए भाजपा टैक्स प्रणाली को सरल करेगी, ताकि लोग ईमानदारी से अपने टैक्स का भुगतान कर सकें। टैक्स प्रणाली को आसान बनाने से नागरिकों का संस्थानों और प्रतिष्ठानों में विश्वास मजबूत होगा।

भाजपा ! जनसंघ का दूसरा अवतार भले ही हो, लेकिन उसमें जनसंघ जैसी कोई बात कहीं नजर नहीं आती। जनसंघ के मुकाबले भाजपा ने राजनीतिक दृष्टि से संगठन का विस्तार तेजी से किया, केन्द्र और अनेक राज्यों में सत्ता भी हासिल की, लेकिन अन्य दलों के लोग ही नहीं स्वयं भाजपा के अधिकांश लोग मानते हैं कि बहुत कुछ हासिल करने के बावजूद पार्टी की पुरानी पहचान खो गई। केन्द्र में 1998 से 2004 तक सत्ता का दौर पार्टी के लिए नई पहचान बनाने का माध्यम तो बना, लेकिन

उसमें वह सब अवगुण धीरे–धीरे घर करते गए, भाजपा जिसके लिए कांग्रेस की आलोचना करती रही थी।

सत्ता की होड़, ऊपर से नीचे तक गुटबाजी, पार्टी के स्थान पर व्यक्तिवाद और पांच सितारा संस्कृति जैसी बुराईयां पार्टी में कब आईं और जड़ें मजबूत करती गईं, पता ही नहीं चला। सत्ता के इस दौर में कुछ नेताओं ने अवश्य यदा–कदा इस तरफ पार्टी का ध्यान खींचने की कोशिश की, लेकिन उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती बनकर रह गई। कांग्रेस का विकल्प तो भाजपा बनती गई, लेकिन इन दौरान वह न सिर्फ अपने सिद्धान्तों से भटकती गई, बल्कि अनुशासन की अपनी विशिष्ट पहचान भी खोती गई।

श्यामाप्रसाद मुखर्जी, दीनदयाल उपाध्याय और बलराज मधोक के शुरूआती दौर को छोड़ दें तो पिछले लगभग 45 वर्ष से जनसंघ–भाजपा अटल–आडवाणी के भरोसे पली, बढ़ी और अन्य दलों के मुकाबले देश की राजनीतिक धारा में अपनी खास जगह बनाई। सत्ता की मदहोशी में या यूं कहा जाए कि अपने 'उद्देश्यों' से भटकाव ने पार्टी के उन लाखों कार्यकर्ताओं को निराश किया जिन्हें सत्ताधारी भाजपा से कुछ खास उम्मीदें थीं।

सपने जब टूटने लगे तो टकराव का नया रास्ता खुला और केन्द्र में सत्ता की बेदखली के बाद से शुरू हुआ यह टकराव नई दिल्ली से होकर अहमदाबाद, भोपाल, रांची, जयपुर अर्थात् सभी राज्यों तक पहुंचने लगा। असन्तोष और खिन्नता की चिंगारी 'शब्दों' के रूप में बाण बनकर एक–दूसरे पर बरसने लगे। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का नारा पुरजोर करने वाली भाजपा के 'लौह पुरुष' ने पाकिस्तान में जिन्ना को धर्मनिरपेक्ष बताकर तो मानो आग में घी डाल दिया। भाजपा ही नहीं अन्य दलों में भी अपनी साख रखने वाले प्रचारक से भाजपा के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचे आडवाणी अपनों की आंख की ही किरकिरी बन बैठे। मदनलाल खुराना, यशवन्त सिन्हा, भाई महावीर, प्यारेलाल खण्डेलवाल, शत्रुघ्न सिन्हा खुलकर सामने आ गए, तो परिवार का मुखिया समझे जाने वाले संघ ने भी अपने इस पुराने 'प्रचारक' से पल्ला झाड़ लिया और यहीं से शुरू हुआ टकराव के पराकाष्ठा पर पहुंचने का सिलसिला। जब आलाकमान ही नेताओं

कार्यकर्ताओं के निशाने पर हो तो क्षत्रपों को कौन समझाए और समझाने पर वे मान भी कैसे सकते हैं।

यह मांग उठ रही है कि भाजपा इस पर चर्चा करे कि उसे हिन्दुत्व की मूल विचारधारा का ही अनुसरण करते रहना चाहिए या नहीं। भाजपा में भी नेतृत्व का संकट है। दूसरी पंक्ति के नेता एक–दूसरे की पार्टी की हार का कारण बताकर टांग–खिंचाई में लगे हैं। जिन्ना प्रकरण के बाद विपक्ष के नेता लालकृष्ण आडवाणी की आवाज में पहले जैसा दम नहीं रहा, इसीलिए वे इन झगड़ रहे नेताओं को काबू में नहीं कर पाये। वे दिन हवा हुए जब वाजपेयी और आडवाणी की पार्टी में तूती बोलती थी और उनके निर्णय को कोई चुनौती नहीं देता था।

दिसम्बर 2007 में हिमाचल प्रदेश और गुजरात विधानसभा के चुनाव नतीजे इस बात के संकेत थे कि भाजपा के राजनीतिक सितारे बुलन्दी पर है। गुजरात में मिली जीत के बाद भाजपा के शानदार प्रदर्शन की अनुगुंज राष्ट्रीय राजनीतिक पटल पर सुनाई देने लगी थी। फरवरी–मार्च 2012 में सम्पन्न 5 विधानसभा चुनाव परिणामों से भाजपा को निराशा ही हाथ लगी। उत्तर प्रदेश में जहां 2007 में उसे 51 सीटें प्राप्त हुई थी वहीं अब उसके पास 47 सीटें ही रह गयी। बहुमत के करीब पहुंचकर भी उत्तराखण्ड उसके हाथ से निकल गया, उसके मुख्यमंत्री खंडूरी कोटद्धार से हार गये। गोवा की 40 सदस्यीय विधानसभा में उसे 21 सीटें प्राप्त हुई।

वर्ष 2014 में जब दिल्ली में नरेन्द्र मोदी ने नेतृत्व में भाजपा/एनडीए सरकार पदासीन हुई तो भाजपा लगभग 7 राज्यों में सत्तारूढ़ थी और 16वीं लोकसभा में एनडीए के 67 प्रतिशत सांसद 21 राज्यों से जीतकर आए थे। वर्तमान में (मई 2018 के बाद) भाजपा 20 राज्यों में सत्ता पर काबिज है उसने 2014 के लोकसभा चुनावों के बाद से 16 राज्यों में सरकारें बनाने में सफलता प्राप्त की है। 224 सदस्यीय कर्नाटक विधानसभा में 104 सीटें जीतकर वह सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी है। आज भाजपा देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या पर शासन कर रही है और कांग्रेस तथा उसके गठबंधन सहयोगी महज 7.53 प्रतिशत जनसंख्या पर ही शासन कर रहे हैं।

भारतीय साम्यवादी दल (Communist Party of India)

भारत में साम्यवादी दल की स्थापना सन् 1924 में हुई, परन्तु सन् 1934 में इस दल को, अवैध घोषित कर दिया तथा इसके नेताओं को बंदी बना लिया गया। द्वितीय महायुद्ध में जब रूस भी अंग्रेजों के साथ शामिल हो गया तो इस दल ने अंग्रेजों का समर्थन करना आरम्भ कर दिया जिसके परिणामस्वरूप 1943 में इस दल पर से प्रतिबंध हटा लिया। इस काल में अनेक साम्यवादी नेता कांग्रेस में शामिल हो गए, परन्तु 1945 में जब कांग्रेसी नेता जेल से छूटकर आए तो इन साम्यवादियों को कांग्रेस से बाहर निकाल दिया गया।

भारत की स्वतंत्रता के बाद इस दल ने काफी प्रगति की। सन् 1957 में इसे केरल में प्रथम गैर–कांग्रेसी सरकार बनाने का अवसर मिला, परन्तु 1962 के भारत–चीन युद्ध के बारे में इस दल में फूट पड़ गई। इसके एक गुट ने भारत सरकार का समर्थन किया परन्तु दूसरे गुट ने चीन को ठीक बतलाया और भारत सरकार से अनुरोध किया कि वह चीन के साथ वार्ता आरम्भ करें।

सन् 1964 में इस दल का विभाजन हुआ और इसमें वामंपथी सदस्यों ने श्री गोपालन के नेतृत्व में एक अन्य दल साम्यवादी दल मार्क्सवादी (C.P.I. (M)) की स्थापना की।

सन् 1996 में हुए लोकसभा चुनावों से पूर्व पार्टी में महासचिव की इंद्रजीत गुप्त द्वारा 27 मार्च 1996 को पार्टी का जो घोषणा पत्र जारी किया गया था। उसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित बातें शामिल थी –

1. आर्थिक क्षेत्र में उदारीकरण, भूमंडलीकरण और निजीकरण की नीतियों को रोका जाएगा।
2. सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों के प्रबन्ध को व्यवसायिक बनाया जाएगा और मजदूरों की भागीदारी के जरिए उसका लोकतंत्रीकरण किया जाएगा।
3. बजट का 50 प्रतिशत कृषि, बागवानी, मत्स्य पालन, पशुपालन आदि के विकास के लिए निर्धारित किया जाएगा।

4. कृषि उत्पादों के लिए लाभकारी मूल्य और उपभोक्तावादों के लिए युक्तिसंगत कीमतें तय की जाऐगी।
5. छोटे उद्यमियों एवं स्वरोजगार शुदा लोगों के लिए अवसरों का विस्तार किया जाऐगा।
6. काला धन (Black Money) को बाहर निकालने के लिए कठोर प्रयास किए जाएंगे।
7. केवल कुछ विशेष क्षेत्रों में विदेशी निवेश की अनुमति दी जाएगी और जहां उच्च टेक्नोलोजी की आवश्यकता हो, वहीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को स्वीकृति दी जाएगी।
8. सभी गांवों तथा शहरी गरीबों के इलाकों में स्वच्छ पीने के पानी की व्यवस्था की जाएगी।
9. काम के अधिकार को (Right to Work) संविधान में मौलिक अधिकार के रूप में शामिल किया जाऐगा और बेकारी भत्ता (Unemployment Allowance) देने की शुरूआत की जाएगी।
10. 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी।
11. बाल मजदूरी व बंधुआ मजदूरी को समाप्त किया जाएगा।
12. दलितों और पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए आरक्षण सम्बन्धी नीतियों को लागू किया जाएगा।
13. अलग उत्तराखंड राज्य की स्थापना के लिए संवैधानिक तथा प्रशासनिक कदम उठाए जाएगें।
14. महिलाओं और पुरूषों के लिए समान परिश्रमिक की व्यवस्था लागू की जाएगी।
15. एक लोकतांत्रिक आवास नीति बनाई जाएगी तथा मध्यवर्गीय लोगों को सस्ता आवासीय कर्ज दिया जाएगा।
16. धर्मनिरपेक्षता की सभी प्रकार की साम्प्रदायिक शक्तियों के प्रहार में रक्षा की जाएगी।

17. अपराधिक रिकार्ड (Criminal Record) वाले व्यक्तियों को चुनाव में उम्मीदवार नहीं बनाया जाएगा।

18. व्यापक रूप से चुनाव सुधार लागू किए जाएगे और आचार संहिता (Code of Conduct) लागू की जाऐगी।

19. गुटनिरपेक्ष आंदोलन (Non-Alignment Movement) को सशक्त बनाया जाएगा और नाभिकीय अप्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर करने से मना किया जाएगा।

20. उर्दू तथा सिंधी को संवैधानिक मान्यता प्रदान की जाएगी।

21. सरकारी आयोग की सिफारिशों के अनुसार राज्यों को अधिक वित्तीय अधिकार देने, अंतर्राष्ट्रीय परिषद् का पुनर्गठन करने, लोकपाल व्यवस्था लागू करने तथा स्थानांतरण (Transfer) और नियुक्ति में भ्रष्टाचार को रोकने का भी पार्टी द्वारा वायदा किया गया।

12वीं लोकसभा के चुनाव (फरवरी 1998) और भारतीय साम्यवादी दल : फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल को 9 सीटें प्राप्त हुई इनमें से 3 सीटें पश्चिम बंगाल तथा 2–2 सीटें केरल और आन्ध्र प्रदेश से उसे मिलीं।

13वीं लोकसभा चुनाव (सितम्बर–अक्टूबर 1999) और भारतीय साम्यवादी दल : सितम्बर–अक्टूबर, 1999 में सम्पन्न 13वीं लोकसभा के चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल को 4 सीटें प्रापत हुई और उसका वोट प्रतिशत 1.45 रहा। दल ने 54 सीटों पर अपने प्रत्याशी खड़े किए।

14वीं लोकसभा चुनाव (अप्रैल–मई 2004) और भारतीय साम्यवादी दल : अप्रैल–मई 2004 में सम्पन्न 14वीं लोकसभा के चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल को 10 सीटें प्राप्त हुई और उसका वोट 1.4 प्रतिशत रहा।

15वीं लोकसभा चुनाव (अप्रैल–मई 2009) और भारतीय साम्यवादी दल : 15वीं लोकसभा में भारतीय साम्यवादी दल को मात्र 1.46 प्रतिशत मतों के साथ 4 सीटों पर जीत हासिल हुई। केरल में कांग्रेस के बजाय अपनी ही आन्तरिक गुटबाजी से लोहा लेने के कारण वामपंथियों को भारी हार का सामना करना पड़ा।

16वीं लोकसभा चुनाव (अप्रैल–मई 2014) और भारतीय साम्यवादी दल : 16वीं लोकसभा चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल को मात्र 01 सीट से साथ 0.8 प्रतिशत मत प्राप्त हुए।

भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) Communist Party of India (Marxist)

सन् 1964 में साम्यवादी दल दो भागों में विभक्त हो गया तथा एक नये दल भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) का जन्म हुआ। इसके नेता प्रमोद दास गुप्ता, ज्योति बसु, ए०के० गोपालन तथा पी० राममूर्ति हैं। 1967 ई० के चुनावों में इस दल को भारतीय साम्यवादी दल के मुकाबले में अधिक सफलता मिली। दल को लोकसभा में 19 एवं राज्य–विधानसभाओं में 128 स्थान प्राप्त हुए। केरल में नम्बूद्रीपाद के नेतृत्व में संयुक्त सरकार का निर्माण हुआ। पश्चिम बंगाल में अजय मुखर्जी की संयुक्त सरकार में मार्क्सवादी–साम्यवादी दल की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सन् 1971 के चुनावों में इसकी शक्ति में वृद्धि हुई और लोकसभा में इसके 25 सदस्य हो गये।

सन् 1998 में हुए लोकसभा चुनावों से पहले वाम मोर्चा (मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, कम्युनिष्ट पार्टी, राष्ट्रीय सोशलिस्ट पार्टी और आल इंडिया फारवर्ड ब्लॉक) द्वारा संयुक्त चुनावी घोषणा पत्र 16 जनवरी, 1998 को जारी किया गया। इस घोषणा पत्र में मुख्य रूप से निम्नलिखित बातें शामिल हैं –

1. मोर्चा के सत्ता में आने पर धर्म को राजनीति से अलग करने के लिए कानून बनाया जाएगा अयोध्या विवाद को निपटाने के लिए पार्टी इस मामले को उच्चतम न्याालय में ले जाएगी।
2. घोषणा–पत्र में कहा गया है कि तेजी से उदारीकरण की और दौड़ रही अर्थ व्यवस्था पर रोक लगाई जाएगी और निजीकरण को रोका जाएगा। बीमार मिलों और कारखानों को पुनः चलाने का प्रयास किया जाएगा। देश में विदेशी पूंजी का अंधाधुंध प्रवेश रोका जाएगा।
3. बैंकिग व्यवस्था के निजीकरण पर भी पूरी रोक लगाई जाएगी और नए प्राइवेट बैंक नहीं खोलने दिये जाऐगे।

4. जम्मू व कश्मीर से सम्बन्धित संविधान के अनुच्छेद 370 को बनाए रखा जाएगा। साथ ही राज्य को अधिक स्वतंत्रता भी दी जाएगी।

5. उत्तर–पूर्वी राज्यों को विघटन से रोकने के लिए विघटनकारी तत्वों से खुलकर बातचीत की जायेगी।

6. घोषणा पत्र में कहा गया है कि देश में सम्पूर्ण सामाजिक न्याय को साकार बनाने के लिए कृषि मजदूरों के लिए केन्द्रीय कानून बनाया जाएगा, फसल तथा पशुओं के बीमा की व्यवस्था की जाएगी।

7. काले धन को रोकने के लिए कड़े उपाय किये जायेंगे।

8. सार्वजनिक वितरण प्रणाली को और व्यापक बनाया जाएगा। गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को केन्द्र से घोषित कीमतों से आधी कीमत पर खाद्यन्न उपलब्ध कराया जाएगा।

9. 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने का वादा किया गया और कहा गया कि केन्द्रीय बजट में शिक्षा पर कम से कम दस प्रतिशत और राज्यों में इस मद पर तीस प्रतिशत खर्च होना चाहिए।

10. घोषणा पत्र में महिलाओं को समान अधिकार देने संसद एवं राज्य विधानसभाओं में एक तिहाई आरक्षण आदि अनुसूचित जाति तथा जनजातियों के आरक्षण कोटे को पूरी तरह से भरने की बात कही गई।

11. दलित ईसाइयों के लिए भी आरक्षण का वादा किया गया।

12. अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा, उर्दू भाषा के संरक्षण तथा प्रसार भारती को मजबूत बनने की बात भी कही गई है।

13. संविधान के अनुच्छेद 356 में समुचित सुनिश्चित वामपंथी दल करेंगे ताकि राज्य सरकारों को बर्खास्त करने के केन्द्र के निरंकुश अधिकारों पर रोक लग सके।

14. विदेशी नीति के बारे में वामपंथी दलों ने कहा कि वह अप्रसार सन्धि या व्यापक परीक्षण प्रतिबंध सन्धि पर भारत के हस्ताक्षर न करने पर जोर देंगे, क्योंकि यह भारत के प्रति भेदभाव जनक है। वे दक्षिण एशियाई देशों से सहयोग बढ़ाना चाहेंगे तथा अपने को मजबूत करेंगे।

15. वामंपथी दल–बदल विरोधी कानून में संशोधन सुनिश्चित करेंगे ताकि अपनी पार्टी छोड़ने वाले निर्वाचित प्रतिनिधि के लिए अपनी सीट छोड़ना अनिवार्य हो जायेगा।

16. घोषणा पत्र में प्रधानमंत्री समेत सभी लोकसेवकों के खिलाफ भ्रष्टाचार के मामलों में जांच और अभियोग चलाने के लिए लोकपाल कानून बनाने का वायदा किया गया है।

17. घोषणा पत्र में कहा गया है कि वामंपथी दल पार्टियों और मित्रों के चुनाव खर्च को भी प्रत्याशी के खर्च में शामिल करने पर जोर देगी तथा चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा सम्बन्धी प्रावधान का परिपालन सुनिश्चित करने के लिए जन प्रतिनिधित्व अधिनियम में संशोधन का मुद्दा उठाएगी।

18. मोर्चा सत्ता में आने पर प्रसार भारती निगम को मजबूत करने तथा प्रिंट और इलैक्ट्रानिक मीडिया में एकाधिकारवाद को रोकने के लिए काम करेगी।

12वीं लोकसभा के चुनाव (फरवरी 1998) और मार्क्सवादी दल : फरवरी 1998 में सम्पन्न लोकसभा के चुनावों में मार्क्सवादी साम्यवादी दल को 32 सीटें प्राप्त हुई और दल कांग्रेस के नेतृत्व में गैर–भाजपा सरकार को बाहर से समर्थन देने के लिए तैयार हो गया। सीताराम येचुरी और प्रकाश कारत सरीखे पदाधिकारी कांग्रेस को भाजपा से कम खतरनाक दुश्मन बताने लगे।

13वीं लोकसभा के चुनाव (सितम्बर–अक्टूबर 1999) और मार्क्सवादी साम्यवादी दल : बार–बार खण्डित जनादेश के चलते 1996 से ही मार्क्सवादी पार्टी की अगुवाई राजनीति के मंच पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता आ रहा वाममोर्चा 1999 में अपनी जोड़ –तोड़ की क्षमता खो बैठा। 11वीं लोकसभा (1996–98) में वह सत्तारूढ़ संयुक्त मोर्चे को पीछे से चलाने वाला सशक्त चालक था।

13वीं लोकसभा के चुनावों में मार्क्सवादी साम्यवादी दल ने 72 प्रत्याशी खड़े किए और उसके 33 प्रत्याशी लोकसभा में पहुंचे। दल को 5.38 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। मई 2001 में सम्पन्न पश्चिम बंगाल विधानसभा के चुनावों में मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व

में वाम मोर्चे को 294 में से 199 सीटों पर जीत हासिल हुई। अकेली मार्क्सवादी साम्यवादी दल को 143 सीटें प्राप्त हुई।

14वीं लोकसभा के चुनाव (अप्रैल–मई 2004) और मार्क्सवादी साम्यवादी दल : 14वीं लोकसभा के चुनावों में मार्क्सवादी साम्यवादी दल ने 43 सीटें जीतकर 5.69 प्रतिशत मत प्राप्त किए।

15वीं लोकसभा के चुनाव (अप्रैल–मई 2009) और मार्क्सवादी साम्यवादी दल : 14वीं लोकसभा चुनावों के बाद माकपा विकास की जगह पतन के निम्नतम बिन्दु पर पहुंच गई और अब तक सबसे कम 16 सीटें (5.52 प्रतिशत मत) पाकर 15वीं लोकसभा में 8वीं सबसे बड़ी पार्टी के रूप में सामने आई, जबकि पिछली लोकसभा में यह तीसरी सबसे बड़ी पार्टी थी। अब राष्ट्रीय परिदृश्य के साथ–साथ अपने गढ़ों–केरल और पश्चिम बंगाल के दूरस्थ क्षेत्रों में भी वामपंथियों का लाल रंग तेजी से फीका पड़ता जा रहा है।

16वीं लोकसभा के चुनाव (अप्रैल–मई 2014) और मार्क्सवादी दल : 16वीं लोकसभा चुनावों में भारतीय साम्यवादी (मार्क्सवादी) दल को मात्र 9 सीटों के साथ 3.2 प्रतिशत मत प्राप्त हुए।

माकपा ने 1977 में मोरारजी देसाई की सरकार को, 1989 में वी०पी० सिंह की सरकार को तथा 1996–97 में देवेगौड़ा एवं गुजराल सरकारों को बाहर से समर्थन दिया था। देश में सबसे लम्बे समय तक मुख्यमन्त्री रहने का रिकॉर्ड बनाने वाले नेता ज्योति बसु माकपा के ख्याति प्राप्त दिग्गज रहे।

14वीं लोकसभा का गणित कुछ ऐसा था कि यूपीए सरकार चलाने की कुंजी मार्क्सवादी साम्यवादी पार्टी नीत वाम मोर्चे के हाथों में आ गई। वाम मोर्चे के कुछ मिलाकर लोकसभा में 61 सदस्य थे और यूपीए की अल्पमत सरकार को वाम मोर्चा बाहर से समर्थन दे रहा था। मार्क्सवादी पार्टी के वरिष्ठतम नेता सोमनाथ चटर्जी स्पीकर पद पर आसीन हुए और पार्टी बाहर रहकर सरकार को यदा–कदा नीति निदेशन देती रहती। मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में वामपन्थी दलों ने मनमोहन सरकार की आर्थिक नीतियों के मोर्चे पर नकेल डाल रखी थी।

चुनाव परिणामों से वामपंथी दलों का 'किंगमेकर' बनने का सपना टूट गया। आज वे अप्रासंगिक हो गए हैं। निस्सन्देह केरल और पश्चिम बंगाल जैसे सुदृढ़ गढ़ों के ध्वस्त होने से वामपंथियों का मानमर्दन हुआ है। पश्चिम बंगाल में हार का कारण बने नन्दीग्राम और सिंगूर आन्दोलन। केरल के मुख्यमन्त्री अच्युतानन्दन और राज्य पार्टी के सचिव पिनारई विजयन के बीच झगड़ा केरल में हार की बड़ी वजह बना। झगड़े की शुरूआत 2006 में उस समय हुई जब शुरू में पार्टी का टिकट नहीं मिलने के बाद अच्युतानन्दन ने चुनाव लड़ा। चुनावों के बाद अच्युतानन्दन मुख्यमन्त्री बन गए। वाम लोकतान्त्रिक मोर्चे (एलडीएफ) के राज्य में सत्ता सम्भालने के साथ ही पिनारई के नेतृत्व वाले बहुसंख्यक धड़े और मुख्यमंत्री वी०एस० अच्युतान्दन के धड़ों में टकराव शुरू हो गया। अनुशासन स्थापित करने के लिए माकपा आलाकमान ने दोनों नेताओं को पार्टी से निलम्बित कर दिया था, लेकिन उससे भी कोई लाभ नहीं हुआ।

पिछले लोकसभा चुनावों में राज्य की 20 में से 19 सीटें जीतने वाले वाममोर्चे के हाथ इस बार केवल चार सीटें लगी। लवलीन भ्रष्टाचार प्रकरण में राज्यपाल आर०एस० गवई द्वारा विजयन के खिलाफ मुकदमा चलाने की अनुमति देने से दोनों नेताओं के सम्बन्ध और खराब हो गए। पार्टी के नेताओं ने राज्यपाल के अनुमति देने के कदम को 'राजनीति से प्रेरित' बताया, दूसरी ओर अच्युतानन्दन ने कहा कि राज्यपाल ने कुछ भी गलत नहीं किया है। पोलित ब्यूरो के पास दो ही रास्ते हैं या तो वह दोनों नेताओं से झगड़े खत्म कर मिल–जुलकर काम करने की घोषणा कराए या दोनों को ही पद से हटा दे।

जहां तक पश्चिम बंगाल का प्रश्न है, वामपंथी दुर्ग धीरे–धीरे ढहने लगा। वयोवृद्ध ज्योति बाबू जैसा नेता राज्य स्तर पर सक्रिय नहीं रहा। मुख्यमन्त्री अधिक शक्तिशाली हो गए, हालांकि पार्टी में ही उनकी नीतियों की आलोचना होती रही। मुख्यमन्त्री बुद्धदेव भट्टाचार्य और कारत के बीच भी गहरे मतभेद उभरे। सिंगूर और नन्दीग्राम के बाद लालगढ़ में माओवादी हिंसा मुख्यमन्त्री के नियन्त्रण से बाहर हो गई। तृणमूल और कांग्रेस के गठबन्धन ने 15वीं लोकसभा चुनावों में शानदार विजय प्राप्त कर उन्हें तगड़ा झटका दिया। अप्रैल–मई 2011 के पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनावों

में विगत 34 वर्षों से सत्तारूढ़ वाम मोर्चे को केवल 62 सीटें ही 294 सदस्यीय 15वीं विधानसभा में मिल सकी। माकपा में दिक्कत यह है कि उनके पास ई०एम०एस० नम्बूदरीपाद या ए०के० गोपालन के कद का कोई नेता नहीं रहा। जहां तक विचारधारा का प्रश्न है, इस पर भी पार्टी में चर्चा हो रही है। समय की पुकार है कि वामपंथी पार्टियां विश्व में जो कुछ बदलाव हो रहे हैं, उनसे कदम मिलाकर आगे बढ़ें। साथ ही अपनी प्रासंगिकता कायम रखने के लिए माकपा, भाकपा, आरएसपी और फार्वर्ड ब्लॉक को एकजुटता बनाए रखनी होगी।

3.2.4 निष्कर्ष

पीछे किए गए वर्णन से स्पष्ट है कि सभी राजनीतिक दल गुटबाजी से ग्रस्त है, चाहे वे दल राष्ट्रीय स्तर के हो या राज्य स्तर के। इस गुटबाजी ने विघटन, दल–बदल व सिद्धांतहीन समझौतों को जन्म दिया है। इस गुटबाजी के कारण न केवल अनेक सरकारों का पतन हुआ, बल्कि सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था में अस्थिरता का भी जन्म हुआ। इसलिए वर्तमान में एक प्रमुख मुद्दा यह है कि किस प्रकार देश में स्वस्थ दलीय प्रणाली की स्थापना की जाए।

3.2.5 प्रमुख शब्दावली

- गुटबन्दी : जब एक ही राजनैतिक दल के भीतर असन्तुष्ट सदस्यों द्वारा कई गुट बना लिए जाते है और आपस में संघर्ष करते रहते है।
- दल–बदल : दलों में अनुशासनहीनता के कारण जब कोई सदस्य जिस दल से वह चुनाव लड़ता है उसे छोड़कर किसी अन्य दल में सत्ता लोलुपता के कारण शामिल हो जाता है।
- अवसरवादिता : सत्ता प्राप्ति के लिए जब किसी राजनैतिक दल के द्वारा सिद्धान्तहीन समझौते किए जाते है।
- पंजीकरण : प्रत्येक राजनैतिक दल को चुनाव में भाग लेने के लिए चुनाव आयोग में पंजीकरण करवाना अनिवार्य है।

3.2.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत में राजनीतिक दलों के विकास का वर्णन कीजिए।
2. भारत में दल प्रणाली की वृद्धि एवं विकास की व्याख्या कीजिए।
3. स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत में दलीय व्यवस्था की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
4. भारत में दलीय प्रणाली के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
5. भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् में दलीय व्यवस्था की प्रकृति का वर्णन करें।
6. भारतीय राजनीतिक प्रणाली में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की भूमिका और दोषों का वर्णन कीजिए।
7. दल–बदल से आप क्या समझते है ? दल–बदल के कारण व भारतीय राजनीति पर इसके प्रभावों को समझाइयें। इस सम्बन्ध में 52वें व 91वें संविधान संशोधनों की समीक्षा कीजिए।
8. ''गुटबाजी भारतीय राजनैतिक दलों के अनिष्ट का कारण है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
9. भारत में दलीय प्रणाली की कोई चार विशेषताएँ लिखें।
10. क्षेत्रीय दलों के उदय के कारण बताए।
11. राष्ट्रीय स्तर के दल की मान्यता के लिए क्या शर्ते निर्धारित की गई है ?
12. दल–बदल के सम्बन्ध में 91वें संविधान संशोधन अधिनियम का वर्णन कीजिए ?
13. वर्तमान में भारत में कुल कितने राष्ट्रीय स्तर के राजनैतिक दल है ?

3.2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966

- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998

- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

3.3 भारतीय राजनीति में दबाव समूह (Pressure Groups in Indian Politics)

3.3.1 परिचय

राजनीतिक प्रक्रिया में दबाव समूहों का विशेष महत्व है। ऐसा भी समय था जब दबाव तथा हित समूहों को अनैतिक माना जाता था। किन्तु आधुनिक काल में दबाव तथा हित समूहों को लोकतन्त्र का पक्षपोषक एवं सहयोगी माना जाने लगा है। विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्था में इन समूहों का महत्व और योगदान इतना अधिक बढ़ गया हैं कि इन्हें न केवल एक आवश्यक बुराई माना जाता है अपितु राजनीतिक क्रियाशीलता एवं सार्वजनिक नीतियों के प्रभावशाली क्रियान्वयन के लिए स्वास्थ्य जनक तत्व भी स्वीकार किया जाता है।

3.3.2 उद्देश्य

- भारत में दबाव समूहों की उत्पत्ति कैसे हुई
- भारतीय राजनीति पर दबाव समूहों के क्या प्रभाव है
- क्या दबाव समूह भी राजनैतिक दलों की भांति लोकतन्त्र की सफलता के परिचायक है
- दबाव समूहों का वर्तमान समय में महत्त्व को जानना
- दबाव समूहों के द्वारा किन साधनों का प्रयोग किया जाता है अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतू

3.3.3 दबाव समूह : अर्थ एवं परिभाषा (Pressure Groups : Meaning and Definition)

दबाव समूहों को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है हित समूह, गैर–सरकारी संगठन, लॉबीज, अनौपचारिक संगठन, गुट आदि शब्दों का प्रयोग दबाव समूहों के लिए किया जाता रहा है। दबाव समूहों तथा अन्य संगठन में अन्तर आवश्यक है। सभी संगठन दबाव समूह नहीं होते और न हित समूह और दबाव समूह समान ही

है। प्रत्येक देश और समाज में सैंकड़ों हित समूह होते है, किन्तु जब वे सत्ता को प्रभावित करने के इरादे से राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय हो जाते हैं तो 'दबाव समूह' बन जाते है। व्यक्तियों के ऐसे समूहों को दबाव समूह कहा जाता है जो किसी कार्यक्रम के आधार पर निर्वाचकों को प्रभावित नहीं करते, लेकिन जिनका सम्बन्ध विशेष मामलों से होता है। ये राजनीतिक संगठन नहीं होते और न ही चुनावों में अपने प्रत्याशी खड़ा करते है।

ओडिगार्ड के अनुसार, ''दबाव समूह ऐसे लोगों का औपचारिक संगठन है जिनके एक अथवा अधिक सामान्य उद्देश्य या स्वार्थ होते हैं और वे घटनाओं के क्रम को विशेष रूप से सार्वजनिक नीति के निर्माण एवं शासन को इसलिए प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं कि अपने हितों की रक्षा एवं वृद्धि कर सके।'' माइनर वीनर के शब्दों में, ''दबाव समूहों से हमारा तात्पर्य शासकीय व्यवस्था के बाहर किसी भी ऐसे ऐच्छिक, किन्तु संगठित समूह से है जो शासकीय अधिकारियों की नामजदगी अथवा नियुक्ति, सार्वजनिक नीति के निर्धारण, उसके प्रशासन और समझौता व्यवस्था को प्रभावित करने का प्रयास करता है।''

वास्तव में दबाव समूह ऐसा माध्यम है जिनके द्वारा सामान्य हित वाले व्यक्ति सार्वजनिक मामलों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। इस अर्थ में ऐसा कोई भी सामाजिक समूह जो प्रशासनिक और संसदीय दोनों ही प्रकार के पदाधिकारियों को, सरकार पर नियन्त्रण प्राप्त करने हेतु कोई प्रयत्न किये बिना ही प्रभावित करना चाहते हैं तो दबाव गुट की श्रेणी में आयेंगे। दबाव समूहों की तुलना 'अज्ञात साम्राज्य' (Anonymous Empire) से की जाती है। जब इनके हित संकट में होते है अथवा जब इन्हें कतिपय स्वार्थो की प्राप्ति करनी होती है तो वे सक्रिय बन जाते है। अन्यथा वे हित समूहों के रूप में निष्क्रिय ही बने रहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर दबाव समूहों के प्रमुख लक्षण इस प्रकार है –

1. दबाव समूह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नीति–निर्माताओं को प्रभावित करते हैं।

2. दबाव समूहों का सम्बन्ध विशिष्ट मामलों (Special Issues) से होता है।
3. ये राजनीतिक संगठन नहीं होते और न ही ये चुनाव में भाग लेते है।
4. दबाव समूहों को अज्ञात साम्राज्य कहा गया है। जब उनके हित खतरे में होते है तो वे सक्रिय बन जाते है।

दबाव समूहों का महत्व (Importance of Pressure Groups)

दबाव समूहों का महत्व अत्यन्त व्यापक बनता जा रहा है। अधिकांश देशों में संविधान इस बात को स्वीकार करते हैं कि वहां पर इस प्रकार के समूहों के विकास के लिए उपयुक्त सुविधाएं प्रधान की जायें। ये समूह प्रशासन को जन–इच्छा के अनुकूल बनाने में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। दबाव समूहों की उपयोगिता तथा महत्व निम्नलिखित रूप से वर्णित किया जा सकता है –

1. **जनतान्त्रिक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति के लिए दबाव समूह :** दबाव समूहों को लोकतन्त्र की अभिव्यक्ति का साधन माना जाता है। लोकतन्त्र की सफलता के लिए लोकमत तैयार करना आवश्यक है ताकि विशिष्ट नीतियों का समर्थन अथवा विरोध किया जा सके। विभिन्न देशों में दबाव समूह विभिन्न तरीकों से अपनी बात मनवाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। लोकमत को शिक्षित करके, आंकड़े इक्ट्ठे करके, नीति निर्माताओं के पास आवश्यक सूचनाएं पहुंचाकर अपने अभीष्ट की प्राप्ति करना आज जनतान्त्रिक प्रक्रिया का अंग बन गया है।
2. **शासन के लिए सूचनाएं एकत्रित करने वाले संगठनों के रूप में दबाव समूह :** प्रत्येक देश में सरकार तथा शासन के पास आवश्यक सूचनाएं पर्याप्त रूप से होनी चाहिए। शासन की सूचनाओं के गैर–सरकारी स्त्रोतों के रूप में दबाव समूह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। दबाव समूह आंकड़े इक्ट्ठे करते है, शोध करते हैं तथा सरकार को अपनी कठिनाइयों से परिचित कराते है।
3. **शासन को प्रभावित करने वाले संगठन के रूप में दबाव समूह :** आजकल दबाव समूहों का अस्तित्व एक ऐसी संस्था के रूप में हैं जिनके पास इस दृष्टि से काफी शक्ति होती है कि वह स्वार्थ या हित विशेष की रक्षा के लिए सरकारी मशीनरी पर उपयोगी व सफल प्रभाव डाल सकें।

4. **सरकार की निरंकुशता को सीमित करना :** प्रत्येक शासन–व्यवस्था में केन्द्रीकरण की प्रवृति बढ़ रही है और समूची शक्तियां सरकार के हाथों में केन्द्रित होती जा रही हैं। दबाव समूह अपने साधनों द्वारा सरकारी निरंकुशता को परिसीमित करते है।

5. **समाज और शासन में सन्तुलन :** दबाव समूहों के अस्तित्व का एक लाभ यह है कि विभिन्न हितों के बीच सन्तुलन सा बना रहता है और इस प्रकार कोई भी एकमात्र प्रभावशाली सत्ता उदित नहीं हो पाती। व्यापारी, श्रमिक, किसान, जातीय समुदाय, स्त्रियां और धार्मिक समुदाय आदि सभी अपने स्वयं के हितों को प्राप्त करना चाहते है, किन्तु उनको एक–दूसरे से प्रतियोगिता करने के लिए मजबूर किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप समाज और शासन में सन्तुलन स्थापित हो जाता है और यह सन्तुलन कर्ता प्रवृति (Countervailing Tendency) समाज को उस स्थिति से बचाती है जिसमें कि वह व्यक्तिगत समुदाय ही सारी शक्ति को हथिया लेते हैं।

व्यक्ति और सरकार के मध्य संचार के साधन

दबाव समूह लोकतान्त्रिक राज्य–व्यवस्था में व्यक्तिगत हितों का राष्ट्रीय हितों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं। ये समूह नागरिक और सरकार के बीच संचार साधन का कार्य करते हैं।

विधानमण्डल के पीछे विधानमण्डल का कार्य

दबाव समूह विधि निर्माण में विधायकों की सहायता करते हैं। अपनी विशेषता तथा ज्ञानगुरूता के कारण ये विधि–निर्माता समितियों के सदस्यों को आवश्यक परामर्श देते हैं। इनका परामर्श और सहायता दोनों ही इतनी उपयोगी होती है कि इन्हें विधानमण्डल के पीछे का विधानमण्डल कहा जाने लगा है।

दबाव समूह एवं राजनीतिक दल (Pressure Groups and Political Parties)

भारत की राज–व्यवस्था में राजनीतिक दलों एवं दबाव समूहों में अन्तर करना एक कठिन कार्य है। हमारे देश में बहुदलीय प्रणाली विकसित हुई है तथा दलों की संख्या इतनी अधिक है कि वे गुटीय राजनीति के उपकरण बन जाते हैं फिर भी राजनीतिक दलों और दबाव समूहों में आधारभूत अन्तर है जो कि निम्नलिखित है –

1. राजनीतिक दल चुनावों में भाग लेते हैं जबकि दबाव समूह चुनावों में अपने प्रत्याशी खड़ा नहीं करते।
2. राजनीतिक दलों के विस्तृत उद्देश्य तथा कार्यक्रम होते हैं जबकि दबाव समूहों के संकुचित लक्ष्य होते हैं।
3. राजनीतिक दल विधानमण्डलों में कार्य करते है जबकि दबाव समूह विधान–मण्डलों के बाहर कार्य करते है।

दबाव समूहों के तरीके (Pressure Groups Techniques)

दबाव समूह अपने स्वार्थो के लिए उपयुक्त साधन या तरीके अपनाते है। प्राचीन समय में उनके साधनों को बुरी नजर से तथा घृणा से देखा जाता था, किन्तु आज इन्हें बुरा नहीं माना जाता। दबाव समूह द्वारा अपनाये जाने वाले साधन इस प्रकार है :

प्रचार व प्रसार के साधन

अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जनता में अपने पक्ष में सद्भावना का निर्माण करने के लिए और उद्देश्य प्राप्ति में सहायक सिद्ध होने वालों के दृष्टिकोण को अपने पक्ष में करने के लिए विभिन्न दबाव समूह अथवा वर्गीय या आर्थिक हितों के प्रभावशाली संगठन प्रेस, रेडियो, टेलीविजन और सार्वजनिक सम्बन्धों के विशेषज्ञों की सेवाओं का उपयोग व प्रयोग करते हैं।

आंकड़े प्रकाशित करना

नीति–निर्माताओं के समक्ष अपने पक्ष को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए दबाव समूह आंकड़े प्रकाशित करते हैं, ताकि अपनी बात को पूरा करवा सके।

गोष्ठियाँ आयोजित करना

आजकल दबाव समूह विचार–विमर्श तथा वाद–विवाद के लिए गोष्ठियाँ, सेमिनार तथा भाषण मालाएं तथा वार्ताएं आयोजित करते हैं। इन गोष्ठियों में विधायिका तथा प्रशासिका के प्रमुख अधिकारियों को आमन्त्रित करते हैं और उन्हें अपने मत से प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।

संसद की लॉबियों में सक्रिया रहना

दबाव समूह अपने एजेण्टों के माध्यम से संसद के सभाकक्षों में जाकर सदस्यों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। व्यावसायिक संगठन संसद की लॉबियों में संसद सदस्यों को प्रभावित करने के लिए चतुर वकीलों या एजेण्टों को नियुक्त करते हैं, जो अपने स्वार्थो की पूर्ति हेतु कठोर परिश्रम करते हैं। लॉबी क्षेत्र के एजेन्ट अपने न्यायसंगत अधिकारों की रक्षा हेतु खुले उपायों का भी सहारा लेते हैं। विधायकों के साथ सम्पर्क स्थापित करते हैं, उनकी गतिविधियों पर निगरानी रखते हैं और विचारधारा को बदलने का प्रयास करते हैं।

रिश्वत तथा बेईमानी

अपने ध्येय की रक्षा के लिए दबाव समूह रिश्वत व घूस देने में नहीं कतराते। बेईमानी के तरीकों का भी यथासम्भव प्रयोग करते हैं तथा विरूद्ध हितों को अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए बदनाम करवा देते है।

लॉबीइंग

लॉबीइंग से अभिप्रायः है 'सरकार को प्रभावित करना'। यह एक राजनीतिक उपाय है। लॉबीस्ट का कार्य करने वाले व्यक्ति दबाव समूह और सरकार के बीच मध्यस्थ होते हैं। ये लॉबीस्ट तीन प्रकार के कार्य करते है – सूचनाएं प्रसारित करते हैं, नियोजनकर्ता के हितों की रक्षा करते हैं तथा विधियों के राजनीतिक प्रभावों को स्पष्ट करते है। लॉबीस्ट के माध्यम से दबाव समूह विधि निर्माताओं को प्रभावित करते हैं और वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति करते हैं।

संसद सदस्यों के मनोनयन में रूचि

दबाव समूह ऐसे व्यक्तियों को चुनावों में दलीय प्रत्याशी मनोनीत करवाने में मदद देते हैं जो आगे चलकर संसद में उनके हितों की अभिवृद्धि में सहायक हो। ऐसा कहा जाता है कि लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में संसद सदस्य दबाव समूहों की जेब में होते है। चुनावों में संसद सदस्य को पैसा चाहिए और जिसे दबाव समूह उपलब्ध कराते हैं। वे पैसे की खोज में दबाव समूहों के पास जाते हैं और बदले में उन्हें दबाव समूहों की मांग का समर्थन करना पड़ता है।

प्रदर्शन

कभी–कभी दबाव समूह उग्र आन्दोलनात्मक तथा प्रदर्शनकारी साधनों का भी प्रयोग करते हैं। प्रायः प्रदर्शनकारी दबाव समूहों द्वारा ही ऐसे साधनों का अधिक प्रयोग किया जाता है। आजकल तो दूसरे दबाव समूह भी हड़ताल, जुलूस, रैली आदि साधनों का आमतौर से प्रयोग करने में लगे है।

भारत में दबाव समूह (Pressure Groups in India)

स्वाधीनता से पहले अनेक हित समूह भारतीय राजनीति में क्रियाशील रहे हैं। ब्रह्म समाज, धर्मसभा, तरूण बंगाल ग्रुप, सत्यशोधक समाज, ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन आदि हित समूह समाज–सुधार के रूप में कार्यरत थे। सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। आमण्ड तथा कोलमेन का मत है कि दक्षिण एशिया के प्रारम्भिक आधुनिक समुदाय यथार्थ में हित समूह ही थे न कि राजनीतिक दल। कांग्रेस, मुस्लिम लीग इत्यादि का ध्येय तो मात्र मध्यम वर्ग के हितों की ही अभिवृद्धि करना था और इसलिए इन्हें प्रारम्भिक हित समूह कहा जा सकता है। बाद में कांग्रेस एक राष्ट्रीय आन्दोलन में परिवर्तित हो गयी। हित समूह से राष्ट्रीय आन्दोलन में परिवर्तन की इस घटना ने भारतीय राजनीति में उदित होने वाले दबाव समूह के स्वरूप और ढांचे को अत्यधिक प्रभावित किया है। कांग्रेस को एक जन आन्दोलन के रूप में संगठित करने के ध्येय से हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने कृषक संघों, श्रमिक संघों, छात्र समुदायों आदि का निर्माण किया। अतः यह कहना उचित होगा कि स्वाधिनता से पूर्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक ऐसा संगठन था जिससे भांति–भांति के हित समुदाय संगठित होकर अपने हितों की अभिवृद्धि करते थे। मुस्लिम समाज के हितों की अभिवृद्धि के लिए मुस्लिम लीग भी इस काल में काफी सक्रिय रही है। मुस्लिम लीग के प्रभाव को सन्तुलित करने के लिए ही हिन्दू महासभा की स्थापना की गयी थी।

दबाव समूहों के प्रकार (Kinds of Pressure Groups)

भारत में क्रियाशील दबाव समूहों को आयण्ड तथा पॉवेल मण्डल के आधार पर चार समूहों में विभाजित किया जा सकता है –

1. संस्थात्मक दबाव समूह (Institutional Pressure Groups)
2. समुदायात्मक दबाव समूह (Associational Pressure Groups)
3. असमुदायत्मक दबाव समूह (Non-Associational Pressure Groups)
4. प्रदर्शनात्मक दबाव समूह (Anomic Pressure Groups)

(1) भारतीय राजनीति में संस्थापक दबाव समूह (Institutional Pressure Groups)

संस्थानात्मक दबाव समूह राजनीतिक दलों, विधानमण्डलों, नौकरशाही आदि में सक्रिय रहते है। इनके औपचारिक संगठन होते हैं, ये स्वायत रूप में क्रियाशील रहते हैं अथवा विभिन्न संस्थाओं की छत्रछाया में पोषित होते हैं, ये अपने हितों की अभिव्यक्ति करने के साथ–साथ अन्य सामाजिक समुदायों के हितों का भी प्रतिनिधित्व करते है।

भारतीय राजनीति समूहों में इस स्वरूप के संस्थानात्मक दबाव समूहों में कांग्रेस समिति, कांग्रेस संसदीय बोर्ड मुख्यमन्त्री क्लब, केन्द्रीय चुनाव समिति, नौकरशाही को लिया जा सकता है।

कांग्रेस न केवल भारत का प्रमुख राजनीतिक दल है अपितु भारतीय सरकार का नेतृत्व भी लम्बे समय तक इस दल के हाथों में रहा है। भारत भी राजनीति कांग्रेस के इर्द–गिर्द घूमती है और कांग्रेस कार्य समिति कांग्रेस 'हाईकमान' है। राष्ट्रीय आन्दोलन के युग में 'हाईकमान' की स्थिति बेताज के सम्राट की सी थी। कांग्रेस के अनेक महत्वपूर्ण निर्णय 'हाईकमान' यानि कार्यसमिति द्वारा ही लिये गये तथा उनका क्रियान्वयन भी बड़ी तत्परता से हुआ। स्वाधीनता के बाद वह दलीय 'हाईकमान' हमारी राजनीतिक धुरी का केन्द्र बिन्दु बन गया जिसके चारों ओर सरकार, संसद एवं मन्त्रिमण्डल चक्कर लगाने लगे। यदि 'हाईकमान' को स्वातन्त्र्योतर भारत का किंग मेकर्स कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। श्री नेहरू के दिवंगत होने के बाद श्री लाल बहादुर शास्त्री और श्रीमती इन्दिरा गांधी को प्रधानमन्त्री पद पर आरूढ़ कराने में कार्य समिति की सक्रिय भूमिका रही।

कांग्रेस संसदीय बोर्ड भी प्रभावशील दबाव समूह रहा है। संसदीय बोर्ड का अपना पृथक कार्यालय तथा संगठन हैं कांग्रेस दल के महत्वपूण्र नेता बोर्ड के सदस्य

होते हैं प्रारम्भ में कार्यसमिति की तुलना में संसदीय बोर्ड अत्यन्त प्रभावहीन संस्था थी, किन्तु धीरे–धीरे स्वतन्त्रता के बाद राजनीति में बोर्ड ने अपनी शक्तियों में अप्रतिम वृद्धि कर ली। सन् 1957 में संसदीय बोर्ड ने नेहरू की उपेक्षा करते हुए डॉ० राधाकृष्णन् के स्थान पर डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी घोषित किया।

राजनीतिक निर्णय–प्रक्रिया में मुख्यमन्त्रियों की भूमिका भी दबाव समूह के ही समान रही है। दंबग और शक्तिशाली मुख्यमन्त्री केन्द्रीय स्तर पर दल तथा सरकार के निर्णयों को लगातार प्रभावित करते रहे है। गैर–कांग्रेसी मुख्यमंत्री तो चौथे आम चुनाव के बाद आपस में मिल–जुलकर केन्द्रीय सरकार को प्रभावित करते थे। अपने राज्यों के हितों की सुरक्षा के लिए आजकल सभी राज्य नयी दिल्ली में उच्च स्तर के अधिकारियों की नियुक्ति करते हैं जिन्हें 'राज्यलॉबी' कहना अनुचित नहीं होगा। नेहरू के उत्तराधिकारी के चयन में दस राज्यों के मुख्यमंत्रियों की संगठित भूमिका रही और 15 जनवरी 1966 को अनेक मुख्यमंत्रियों ने शास्त्री के उत्तराधिकारी के चयन में श्रीमती गांधी का खुलकर समर्थन किया।

कांग्रेस दल की केन्द्रीय चुनाव समिति भी निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती है। जन निर्वाचनों में प्रत्याशियों के चयन का भार चुनाव समिति पर ही डाला जाता है और चुनाव समिति हजारों ऐसे प्रत्याशियों का साक्षात्कार करती है जो दलीय टिकट पाने के इच्छुक होते हैं। शास्त्री और मोरारजी ने चुनाव समिति में सक्रिय रूप से कार्य किया था। सिण्डिकेट ने शास्त्री का प्रधानमन्त्री चुनाव में इसलिए पक्ष लिया था कि उन्होंने चुनाव समिति में कार्य करते हुए सिण्डिकेट समर्थक लोगों की मदद की थी।

नौकरशाही भी संगठित होकर राज–व्यवस्था में क्रियाशील है। उच्च सेवा में कार्यरत अधिकारियों के अपने संघ है जो उनके हितों की सुरक्षा करते है। भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों का ऐसा ही एक संघ है जिसे भारतीय सिविल तथा प्रशासनिक सेवा संघ कहा जाता है। यह अखिल भारतीय संघ है जिसकी शाखाएं राज्यों की राजधानियों में भी है। प्रो० सी०पी० भाम्भरी का विचार है कि, ''यदि राजनीतिक नेतृत्व कमजोर होता हैं तो नौकरशाही के दबाव में वृद्धि हो जाती है।''

(2) भारतीय राजनीति में समुदायात्मक दबाव समूह

(Associational Pressure Groups in Indian Politics)

समुदायक दबाव समूह हितों की अभिव्यक्ति के विशेषीकृत संघ होते हैं। इनकी मुख्य विशेषता विशिष्ट हितों की पूर्ति करना होता है। ये अपने आधुनिक परिवेश में भारतीय राजनीति में सक्रिय है। इनमें प्रमुख हैं, श्रमिक संगठन, व्यावसायिक संगठन, कृषक संगठन इत्यादि।

श्रमिक संगठन श्रमिकों के संघ हैं जो सामूहिक कार्यो द्वारा अपने हितों की रक्षा करते है। स्वाधीनता से पूर्व भी श्रमिक संघ कार्यरत थे और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कई नेता श्रमिक संघों में सक्रिय रहे थे। राष्ट्रीय आन्दोलन ने श्रमिकों को अपने हितों की पूर्ति के लिए संगठित होने के लिए प्रोत्साहित किया। वर्तमान में मजदूर संघों का सम्बन्ध राजनीतिक दलों से जुड़ा हुआ है। भाजपा के नेतृत्व में भारतीय मजदूर संघ, मार्क्सवादी दल के नेतृत्व में यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस, कांग्रेस के नेतृत्व में इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस क्रियाशील है। सभी मजदूर संघों का ध्येय मजदूरों के आर्थिक राजनीति, सामाजिक और सांस्कृतिक हितों की रक्षा करना है। मजदूर संघों ने सरकारी नीतियों को आंशिक रूप से ही प्रभावित किया है, वे तो राजनीतिक दलों की भुजाएं मात्र है और उनका नेतृत्व भी राजनीतिज्ञों के हाथों में है न कि श्रमिक नेताओं के हाथों में।

व्यापारियों के हित समूहों में आधुनिक दबाव समूह के रूप में कार्य करने की सामर्थ्य सबसे अधिक है। व्यापारियों के संघ कई प्रकार के हैं – जैसे उद्योग समूह, साम्प्रदायिक समूह, क्षेत्रीय समूह, अखिल भारतीय समुदाय तथा बड़े व्यावसायिक घराने। व्यापारियों के दबाव समूह संगठित और अधिकारिक रूप से साधन सम्पन्न है। इनके द्वारा अपनायी जाने वाली दबाव की आधुनिक तकनीकों को देखते हुए इनकी तुलना पश्चिमी देशों में पाये जाने वाले दबाव समूहों से की जा सकती है। इनके समाचार पत्र और पत्रिकाएं है, फोरम ऑफ फ्री एण्टरप्राइज द्वारा अपने हितों का प्रचार करते हैं, राजनीतिक दलों को आर्थिक सहायता देते हैं, मन्त्रियों तथा विभागीय सचिवों से

व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करते हैं तथा संसद सदस्यों को अपने हितों से आगाह करते है।

व्यापारियों के संगठनों में आजकल फेडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री (F.I.C.C.I.) अत्यन्त आधुनिक और प्रभावशाली दबाव समूह माना जाता है। लगभग एक लाख से भी ज्यादा छोटी बड़ी व्यावसायिक इकाइयों का प्रतिनिधित्व करता है। विभिन्न तरीकों से फेडरेशन व्यावसायिक दृष्टिकोणों और भागों को सरकार के सम्मुख रखता है। फेडरेशन का प्रतिवर्ष प्रधानमन्त्री द्वारा उद्घोषित किया जाता है। अन्य मन्त्रिगण जैसे वित्तमन्त्री और वाणिज्य मन्त्री भी फेडरेशन की वार्षिक बैठकों में भाग लेते है। बड़े–बड़े अधिकारी और सचिव भी बैठकों में भाग लेते है। विभिन्न अवसरों पर प्रस्ताव पारित करके फेडरेशन ने सरकार की नीतियों को प्रभावित करने का प्रयास किया है। यह बात सच है कि अनेक अविवादास्पद विधेयकों के निर्माण तथा सुधार में फेडरेशन के निर्माण तथा सुधार में फेडरेशन ने सरकार को प्रभावित किया है किन्तु प्रमुख आर्थिक प्रश्नों जैसे आर्थिक नियोजन, सार्वजनिक उधम नीति, बैंक राष्ट्रीयकरण आदि पर फेडरेशन का सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सरकार की अनेक परामर्शात्मक समितियों में फेडरेशन के प्रतिनिधि भाग लेते है और आज फेडरेशन देश में संगठित दबाव समूह के रूप में संगठित दबाव समूह के रूप में प्रभावशाली भूमिका अदा कर रही है।

कृषकों के हित समूह भी राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय होते जा रहे है। सन् 1936 से ही अखिल भारतीय किसान सभा (All India Kisan Sabha) एक हित समूह के रूप में सक्रिय रही है किन्तु सभा पर साम्यवादी दल का नियन्त्रण रहा है। आज भी किसान सभा साम्यवादी दल की भुजा के रूप में कार्यरत है। अन्य दलों ने भी अपने–अपने कृषक, संगठन बनाये है, जैसे समाजवादी दल की हिन्द किसान पंचायत तथा वामपंथी दलों की संयुक्त किसान सभा कभी–कभी सक्रिय हो जाती है। वास्तव में भारत सरकार की कृषि नीतियों को प्रभावित करने में किसान संघों की प्रभावशाली भूमिका नहीं रही है। फिर भी यह तो मानना पड़ेगा कि आज तक किसान लॉबी के प्रभाव के कारण ही सरकार कृषि पर आय कर नहीं लगा पायी। पंजाब, उत्तर प्रदेश व

हरियाणा सरकार की नीतियों पर किसान लॉबी का प्रभाव रहा है। आजकल पंचायतों का राजनीतिक महत्व बढ़ता जा रहा है और पंचायतों पर किसानों का प्रभाव हैं, अतः भविष्य में कृषक लॉबी अत्यन्त शक्तिशाली हो सकती है।

स्वतन्त्रता संग्राम में युवा वर्ग सक्रिय रहा है और आज भी हमारे विद्यार्थी राजनीतिक दृष्टि से जागरूक है। विद्यार्थी संगठनों का सम्बन्ध विभिन्न राजनीतिक दलों से रहा है और राजनीतिक दलों ने विद्यार्थी संगठनों का दुरूपयोग किया है। विद्यार्थी समुदाय श्रमिक संघों के तौर–तरीके अपनाते है और कभी–कभी यह मान लेते है कि उनके हित शिक्षकों और विश्वविद्यालयों के अधिकारियों के हितों से टकराते है। विद्यार्थी परिषद् का सम्बन्ध भाजपा से है तो नेशनल यूनियन ऑफ स्टूडेण्टस संगठन कांग्रेस दल का है। स्टूडेण्टस फेडरेशन का सम्बन्ध साम्यवादी दल से है। इन संघों की आर्थिक सहायता विभिन्न राजनीतिक दल ही करते हैं और कभी–कभी राजनीतिक दलों के आह्वान पर ये संगठन हड़ताल, घेराव, बन्द आदि का सहारा भी लेते है।

सरकारी कर्मचारियों के अपने–अपने विशिष्ट संगठन हैं। ये संगठन अपने हितों के संरक्षण के लिए तथा प्रशासन द्वारा अनावश्यक हस्तक्षेप की रोकथाम के लिए विभिन्न स्तरों पर कार्य करते है। इनमें 'ऑल इण्डिया रेलवे मैने एसोसिएशन', ऑल इण्डिया टीचर्स एसोसिएशन आदि प्रमुख है। विगत वर्षो में कर्मचारियों के दबाव समूहों ने वेतन संशोधन तथा मंहगाई भत्ते की जोरदार मांग रखी है। अपनी मांगों के समर्थन में यदाकदा ये समुदाय हड़तालें और बन्द भी आयोजित करते हैं। वास्तव में ये दबाव समूह सरकार की वेतन तथा अन्य सुविधाएं प्रदान करने सम्बन्धी नीति को प्रभावित करते रहे है।

कई प्रकार के साम्प्रदायिक संगठन भी अपने संघों के माध्यम से विशिष्ट हितों की अभिवृद्धि में लगे रहते है। इन संघों में हिन्दू सभा, न्यायस्थ सभा, भारतीय ईसाईयों की अखिल भारतीय परिषद्, पारसी ऐसोसिएशन आदि प्रमुख है। इनकी मांगे विशिष्ट है और वे उसी परिप्रेक्ष्य में सरकारी नीतियों को प्रभावित करते है।

(3) असमुदायात्मक दबाव समूह

(Non-Associational Pressure Groups)

असमुदायात्मक दबाव समूह अनौपचारिक रूप से अपने हितों की अनिवार्य करते हैं, इनके संगठित संघ नहीं होते और इन परम्परावादी दबाव समूहों में साम्प्रदायिक और धार्मिक समुदाय, जातीय समुदाय, गांधीवादी समुदाय, भाषागत समुदाय आदि प्रमुख है।

साम्प्रदायिक आधार पर गठित समुदायों में मुस्लिम मजलिस, विश्व हिन्दू परिषद बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी, जमायत–ए–एस्लाम–ए–हिन्द, जमायत–ए–इस्लाम आदि प्रमुख है। जैन सभाएं, चर्च, वैष्णव समाज आदि भी इसी श्रेणी में आते है। इनकी अपनी पृथक पाठशालाएं, महाविद्यालय, छात्रावास आदि है। ये अपनी पृथकता बनाये रखने के लिए लगातार कोशिश करते रहते है। ये स्थानीय और राज्य स्तर के प्रशासकों से लाभान्वित होने का प्रयास करते है। चुनावों के दिनों में ये गुट सक्रिय हो जाते है और प्रत्याशियों की जीत बहुत कुछ इनके रूख पर निर्भर करती है।

जातिगत समूहों ने प्रारम्भ से ही भारतीय राजनीति को प्रभावित किया है। आजादी के बाद की राजनीति में जाति का महत्व बढ़ा है। अपने आर्थिक और राजनीतिक हितों की प्राप्ति में जातियाँ संगठित होने लगी और विभिन्न राज्यों में जातिगत राजनीति का अभ्युदय हुआ। जातीय हितों के आधार पर विभिन्न दबाव गुटों का जन्म हुआ और इन जातियों ने संगठित होकर राजनीतिक प्रतियोगिता में भाग लेना शुरू किया जिससे उनमें राजनीतिक जागरूकता और राष्ट्रीय राजनीति के प्रति रूचि उत्पन्न हुई। रूडेलफ ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जाति पर आधारित समूहों का निर्माण राजनीतिक आधुनिकरण के आदर्शो को स्थापित करने और संसदीय जनतंत्र के कुशल संचालन में सहायक हुआ है।

अनेक गांधीवादी संगठन भी शासकीय नीतियों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के तौर पर सर्वसेवा संघ, सर्वोदय, भूदान खादी ग्रामोद्योग संघ, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान आदि ऐसे ही समूह हैं। इनका नेतृत्व विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण, काका कालेकर, दादा धर्माधिकारी जैसे प्रखर व्यक्तित्व वाले राष्ट्र के जाने माने सन्त करते रहे है।

सांसद विधानमण्डलों और मन्त्रीगण इनको आधार की दृष्टि से देखते है और उनकी सम्मतियों और सुझावों का राजनीति में आदर कर राष्ट्रपिता बापू के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि गांधीवादी गुट अपने स्वार्थो एवं हितों के लिए नहीं अपितु सार्वजनिक कल्याण की भावना से कार्यरत है।

भाषा के आधार पर भी दबाव समूह हमारी राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाते रहे है। ऐसा माना जाता है कि वर्तमान भाषायी राज्य शक्तिशाली भाषायी दबाव गुटों की राजनीति के ही परिणाम है। भाषीय दबाव गुटों की मांग को पूरा करने के लिए ही गुजरात, तमिलनाडू, पंजाब तथा बंगाल को भाषायी टापू का रूप दिया गया। भाषायी गुटों की मांग को पूरा करने के लिए यदा–कदा नये राज्यों का निर्माण करना पड़ा है।

इस प्रकार असमुदायात्मक दबाव समूह भारतीय राजनीति में काफी प्रभावशाली रहे हैं। बड़े–बड़े मसलों पर सरकारी नीतियों और निर्णयों को न केवल प्रभावित ही किया है अपितु कभी–कभी सरकार को इनके दबाव के कारण अपनी नीतियों में आमूल–चूल परिवर्तन भी करना पड़ा है। ये समुदाय जितने जागरूक हैं, इनके संगठन उतने मुखर नहीं है।

(4) प्रदर्शनकारी दबाव समूह (Anomic Pressure Groups)

प्रदर्शनकारी दबाव समूह वे हैं जो अपनी मांगों को लेकर असंवैधानिक उपायों का प्रयोग करते हुए हिंसा, राजनीतिक हत्या दंगे और अन्य आक्रामक रवैया अपना लेते है। प्रदर्शनकारी विरोध और प्रत्यक्ष कार्यवाही कई प्रकार के है, जैसे जनसभाएं गली–कूचा बैठक पद यात्रा रैली, विरोध दिवस मनाना, हड़ताल, धरना, सत्याग्रह, अनशन, सार्वजनिक सम्पति को हानि पहुंचाना, अग्निदाह, आवागमन अवरूद्ध करना, घेरना आदि। इनके द्वारा संगठित गुट न केवल अपना असन्तोष व्यक्त करते है अपितु सरकार के निवेश तथा निर्गत ढांचे को प्रभावित करते हुए नियम निर्माण (Rule Making) नियम प्रयुक्त (Rule Application) एवं नियम– अधिनियमनयन (Rule Adjudication) के स्वरूप को भी छू लेते है। ये गुट किसी विशेष नीति को बनवाने अथवा बदलने के लिए सरकार पर दबाव डालते है।

भारतीय राजनीति में प्रदर्शनकारी गुटों के उदय का कारण यह माना जाता है कि सरकार लोगों की न्यायोचित मांगों की ओर ध्यान नहीं देती और राजनीतिक दल सभी प्रकार के लोगों की मांगों का समुचित प्रतिनिधित्व नहीं करते। जब शान्तिपूर्ण मांगों की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता तो दबाव समूह वैधानिक ढांचे से हटकर कार्य करना प्रारम्भ कर देते है। मायरन वीनर के अनुसार, ''भारत में सरकार दबाव गुटों की मांगों की तरफ उस समय तक ध्यान नहीं देती जब तक कि जन–आंदोलन के माध्यम से वे अपनी शक्ति का परिचय नहीं देते। सरकार मांगों को इसलिए नहीं मानती कि वे न्यायोचित हैं अपितु इसलिए मानती है कि मांग करने वाले गुट ने उसे ऐसा करने के लिए बाध्य कर दिया हैं।

स्वाधीनता के बाद अनेक महत्वपूर्ण निर्णय प्रदर्शनकारी गुटों के दबाव के फलस्वरूप लिये गये हैं। इन्हीं के दबाव के फलस्वरूप मद्रास, बम्बई व पंजाब राज्यों का विभाजन हुआ। पूर्वाचल में नये राज्यों का निर्माण करना पड़ा। सरकार की गौवध नीति के विरोध में साधुओं ने अनशन किया एवं हिन्दी भाषा के समर्थकों ने अंग्रेजी के विरोध में सत्याग्रह किया। बंगाल में नक्सलावादी गुट का उदय हुआ। जिसने हिंसा, हत्या, लूटपाट आदि साधनों का प्रयोग करते हुए सरकार का भूमि–सुधार भूमि के न्यायोचित वितरण तथा भू–श्रमिकों की दैनिक मजदूरी बढ़ाने की ओर ध्यान आकर्षित किया। प्रदर्शनकारी दबाव गुटों में आजकल जम्मू एण्ड कश्मीर लिबरेशन फ्रन्ट (कश्मीर) खालिस्तान कमाण्डो फोर्स, बब्बर खालसा, सिख स्टूडेण्टस् फेडरेशन (पंजाब), उल्फा (असम) के नाम उल्लेखनीय है।

दबाव समूहों की विशेषताएं (Features of Pressure Groups)

प्रो० मायरन वीनर की रचना 'पॉलिटिक्स ऑफ स्कैरसिटी' भारत में दबाव राजनीति का विश्लेषण करने वाली प्रथम वैज्ञानिक रचना है। वीनर के बाद स्टेनली कोचनीक का ग्रन्थ 'बिजनेश एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया' भारतीय राजनीति में व्यापारियों के दबाव समूहों की भूमिका का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करता है। वीनर तथा कोचनीक के निष्कर्षों के अनुसार भारत में दबाव व हित समूहों की निम्नलिखित विशेषताएं है –

1. भारतीय राजनीति में परम्परावादी दबाव समूह जैसे जाति, समुदाय, धर्म और प्रादेशिक गुट निर्णायक भूमिका अदा कर रहे हैं। अधिकांश राजनीतिक दल जाति और समुदाय के आधार पर ही अपने अनुयायियों को संगठित करते हैं। जातीय समुदाय को आज भी भारत में 'बेताज के सरताज' कहा जा सकता है।
2. अधिकांश समुदायात्मक दबाव समूहों पर राजनीतिक दलों का नियन्त्रण है। उनका नेतृत्व राजनीतिक दलों के नेताओं के हाथों में है और उन्हें 'दल के पीछे दलीय सत्ता' कहा जा सकता है, किन्तु यह भी एक विचित्र सत्य है कि प्रमुख व्यापार उद्योग ही समूह दलीय नियन्त्रण से स्वायत हैं।
3. स्वाधीनता के बाद सार्वजनिक नीति के निर्माण में दबाव समूहों की सीमित भूमिका द्रष्टव्य है। इसके दो कारण थे – प्रथम केन्द्र और राज्यों में शक्तिशाली नेतृत्व था और दूसरा सरकार पर कांग्रेस दल का एकाधिकार था। जैसे–जैसे शक्तिशाली नेतृत्व का ह्रास होता गया और कांग्रेस का एकाधिकार टूटता गया वैसे–वैसे राजनीति में दबाव समूहों का प्रभाव भी बढ़ता गया। प्रारम्भ में दबाव गुटों की नकारात्मक भूमिका रही। वे इस बात पर बल देते रहे कि सरकार राष्ट्रीयकरण न करे और भूमि पर कर में अभिवृद्धि न करे। किन्तु, वर्तमान में अनेक दबाव गुट सकारात्मक रूप से अपने हितों के प्रभावित करने वाली नीतियों के निर्माण में सरकार के साथ सहयोग कर रहे हैं।
4. विगत कुछ वर्षों से केन्द्रीय सकार की नीतियों पर भारतीय संघ के राज्यों का भी प्रभाव पड़ने लगा है और राज्य संगठित दबाव डालने का प्रयास करने लगे हैं। राज्य लॉबीइग के लिए अधिकारी रखते है। जिसके वे संसद सदस्यों से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर सकें। संविधान के अनुच्छेद 262 तथा 263 को अन्तर्गत केन्द्रीय संसद को 'अन्तर्राज्यीय नदी–पानी विवाद' तथा 'सीमा विवाद' हल करने की शक्ति प्राप्त हैं और कई राज्यों के बीच ऐसे उग्रतर विवाद उलझे पड़े है। अतः दबाव और लॉबीइग की राजनीति द्वारा वे अपना हित वर्धन करने में लगे है।

5. राजनीतिक दलों के विद्यमान संस्थागत दबाव समूह ने दलीय व्यवस्था को ही डांवाडोल करने की चेष्टा की है। सत्ताधारी और विपक्षी दलों के कार्यरत गुटों ने बहुमत सरकार की कार्य प्रणाली को ही चुनौती दी है।
6. समुदायात्मक और प्रदर्शनकारी दबाव समूह हिंसा, जन–आन्दोलन, हड़ताल, अनशन और सत्याग्रह जैसे असंवैधानिक साधनों का प्रयोग करते नहीं हिचकिचाते।
7. भारत में दबाव समूह मुख्यतया प्रशासकों को प्रभावित करने में लगे रहते है न कि नीति–निर्माण को।
8. भारत में आम धारणा दबाव समूहों की कार्य पद्धति के प्रतिकूल है। यह अच्छा नहीं माना जाता कि हित समूह नीति निर्माताओं का मार्गदर्शन करें। ऐसा भी माना जाता है कि यदि एक बार सरकार दबाव गुटों के आगे झुक जाती है तो फिर कोई भी निर्णय सार्वजनिक हित में नहीं लिया जा सकता।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारत में असमुदायात्मक दबाव गुट सर्वाधिक प्रभावशाली है और उनमें भी जाति का प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। उसके बाद संस्थानात्मक दबाव समूहों ने राजनीति को प्रभावित किया है। समुदायात्मक दबाव समूहों में केवल 'फेडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डेस्ट्री' को ही आधुनिक दबाव समूह माना जा सकता है। भारतीय दबाव गुटों के स्वरूप से यह धारणा गलत सिद्ध हो जाती है कि परम्परावादी समाज में आधुनिक दबाव समूह विकसित नहीं हो सकते। भारत में परम्परावादी दबाव समूह अपने हितों की अभिव्यक्ति के लिए चुनाव और राजनीतिक दलों का प्रयोग करते हैं जबकि आधुनिक दबाव समूह मन्त्रिमण्डल और नौकरशाही हो अपनी नवीनतम शोध से प्रभावित करते हैं। यदा–कदा प्रदर्शनकारी दबाव समूह भी सक्रिय हो जाते है। ऐसे गुट कभी–कभी राज–व्यवस्था के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न कर देते हैं।

दबाव समूहों की आलोचना (Criticism of Pressure Groups)

विगत वर्षो में दबाव की राजनीति की आलोचना और वाद–विवाद का विषय रही है। आलोचकों ने यहां तक कह डाला है कि ये गुट नवजात भारतीय लोकतन्त्र

पर खतरे की काली घटाओं के रूप में मंडरा रहे है। ये सदैव, अपने घटिया स्वार्थो की पूर्ति हेतु सार्वजनिक कल्याणों को तुच्छ निगाह से देखते रहे। इन दबाव गुटों ने हमारे सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार, घूसखोरी और अनेक घृणित उपायों को आश्रय दे रखा है।

भारत में दबाव समूहों की कार्य–शैली को गुप्त रखा जाता है और जन–सामान्य को उसके बारे में कोई सूचना प्राप्त नहीं होती वे गुप्त ढंग से अधिकारियों और नीति–निर्माताओं से परामर्श करते हैं। विद्यायिका के सदस्यों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे खुले रूप से यह प्रकट करें कि उनका सम्बन्ध उनसे किन–किन गुटों से है और उन्हें उनसे किस प्रकार का लाभ मिलता है। कभी–कभी दबाव गुट रिश्वत देकर भी प्रशासकों को अपने स्वार्थो के अनुकूल बनाने में नहीं हिचकिचाते। दबाव समूहों की सफलता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि वे सही मांग प्रस्तुत कर रहें हैं अपितु इस तथ्य पर निर्भर करती है कि उनका गुट कितना विशाल और वित्तीय साधनों से सम्पन्न है। दबाव समूह सरकार के विरूद्ध हिंसात्मक साधनों का भी प्रयोग करते हैं। हिंसा और जन–आन्दोलन से अराजकता उत्पन्न होती है और ऐसी अव्यवस्था राज–व्यवस्था के अस्तित्व के लिए प्रत्यक्ष खतरा उत्पन्न कर देती हैं। सफेदपोश सरकारी कर्मचारियों के संगठनों के लिए तो हड़ताल, प्रदर्शन करना एक फेंशन हो गया है। सरकारी कर्मचारियों द्वारा अचानक कार्य बन्द कर देने से प्रशासन ठप हो जाता है और आम जनता को काफी असुविधा होती है। कभी–कभी तो दबाव गुट ऐसी दायित्वहीन मांगे भी प्रस्तुत करते हैं जिनको पूरा करना सरकार के लिए असम्भव होता है।

इन आलोचनाओं में सत्य का अंश अवश्य हैं, किन्तु किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए दबाव व हित समूहों से छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। वर्तमान लोकतन्त्रीय व्यवस्था में दबाव समूह जब शासक के निर्माता (King Makers) बन बैठे हैं तो हमारी वास्तविक समस्या यह है कि उन्हें सही दिशा में किस प्रकार मोड़ा जाए।

हमारी राज–व्यवस्था की स्थिरता और समुच्चय शक्ति को बढ़ाने के लिए दबाव समूहों को उसमें समुचित निर्णय दिया जाना चाहिए। हमारी राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में दबाव गुटों को स्थान देने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं –

1. नीति निर्माण के विभिन्न स्तरों पर शासन को प्रभावित हितों से परामर्श करने की स्थायी और अधिकाधिक आदत डालनी चाहिए।
2. राज्य सभा और विधान–परिषदों में हित समूहों के प्रतिनिधियों को अधिकाधिक स्थान दिया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में वर्तमान संविधान में अन्य संशोधन किया जा सकता है।
3. संसद की परामर्शदात्री समितियों में हित समूहों के सदस्यों को सह–सदस्यता प्रदान की जानी चाहिए, जिससे राजव्यवस्था की परिपक्वता में वृद्धि होगी।
4. सरकार के विभिन्न विभागों के साथ कार्यरत प्रतिनिधियों, परामर्शदात्री समितियों के सदस्यों का मनोनयन सरकार द्वारा न होकर हित समूह द्वारा किये जाने की परम्परा डाली जानी चाहिए।
5. अधिकांश निर्णय स्थानीय जनता को प्रभावित करते हैं और जिलाधीश व उप–जिलाधीश स्थानीय प्रशासक होते हैं। अतः सामान्य जनता और स्थानीय प्रशासकों के मध्य गहन सम्पर्क सूत्र होना चाहिए। स्थानीय अधिकारियों को किसी भी निर्णय के क्रियान्वयन से पूर्व स्थानीय हितों से परामर्श करने की आदत डालनी चाहिए।

3.3.4 निष्कर्ष

भारत में दबाव समूहों के अस्तित्व का सरकार की नीतियों पर प्रकाश डालने का सम्बन्ध है, इसमें कोई संदेह नहीं है इस उद्देश्य में केवल बड़े–बड़े औद्योगिक और व्यापारिक समूह ही सफल होते हैं। जहां तक व्यापारिक संघो या व्यावसायिक दबाव समूहों का सम्बन्ध है ऐसे समूह केवल अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिए और अपनी सीमित मांगों की पूर्ति के लिए ही सरकार पर दबाव डालने का प्रयत्न करते हैं। व्यवहार में सरकार की नीतियां ऐसे दबाव समूहों द्वारा विशेष करके प्रभावित नहीं होती, क्योंकि न तो सरकार ऐसे दबाव समूहों के समर्थन पर अधिकतर निर्भर करती है और न ही ऐसे दबाव समूह इस स्थिति में होते हैं कि वो सरकार को अपने पक्ष में झुकने के लिए विवश कर सकें। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि ऐसे दबाव समूहों का भारत में केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कहने का

अभिप्राय यह है कि भारत की राजनीति मुख्य रूप में उद्योगपतियों के समूहों, बड़े–बड़े किसानों के समूहों और व्यापरियों के प्रभावों के अधीन रहती है। संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि भारत में दबाव समूह इतने अधिक प्रभावशाली रूप से संगठित नहीं हैं जितने कि संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य प्रगतिशील पाश्चात्य देशों में पाए जाते हैं।

3.3.5 मुख्य शब्दावली

- लॉबीइंग : सरकार को प्रभावित करना
- अराजकता : दबाव समूहों द्वारा हिंसात्मक गतिविधियों द्वारा समाज में अराजकता का माहौल यानी अशान्ति पैदा करना।
- परम्परावादी दबाव समूह : ऐसे दबाव समूह, जाति, समुदाय, धर्म और प्रादेशिक आधार पर संगठित होते है।

3.3.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. दबाव समूहों की परिभाषा बताए। इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।
2. भारत में भिन्न–भिन्न प्रकार के दबाव समूहों का वर्णन करे तथा उनकी कार्यविधियों का भी विवेचन करें।
3. दबाव समूह का क्या अर्थ हैं ? दबाव समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किन –किन साधनों का प्रयोग करते हैं ? वर्णन कीजिए।
4. दबाव समूह अदृश्य सरकार माने जाते है ? इस कथन की समीक्षात्मक परीक्षा कीजिए।
5. दबाव समूह क्या होते है ? भारतीय राजनीति व्यवस्था में मुख्य दबाव समूहों की भूमिका का वर्णनकीजिए।
6. दबाव समूह के विभिन्न प्रकार बताइए।
7. दबाव समूह किन–किन साधनों का प्रयोग करते है ?
8. चार महत्त्वपूर्ण भारतीय व्यापारिक दबाव समूहों के नाम बतायें।

3.3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली

- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984

- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

3.4 जनमत (Public Opinion)

3.4.1 परिचय

बोलचाल की भाषा में जनमत का अर्थ जनता के मत से है, परन्तु सम्भवतः ऐसी कोई भी समस्या नहीं है जिस पर समूची जनता का एक ही दृष्टिकोण हो। अतः यह कहा जाता है कि ऐसी स्थिति में बहुमत को ही जनमत माना जाता है। यथार्थ में ऐसा भी कार्य नहीं होता क्योंकि अधिकांश जनता में चिन्तन और मनन की क्षमता कम होती है, अतः महत्वपूर्ण समस्याओं के बारे में उसकी अपनी कोई राय नहीं होती। वस्तुतः जिसे लोग अपना मत बताते है, वह उनका अपना मत नहीं होता, वह तो वास्तव में उनका दूसरों से उधार लिया हुआ तथा दूसरों के मुंह से सुना–सुनाया हुआ मत होता है। समाज में सोचने का काम तो कुछ चिन्तनशील व्यक्तियों के द्वारा सम्पादित होता है। अतः जब इनके द्वारा विचारा गया मत समाज के द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वही जनमत के नाम से जाना जाने लगता है।

जनमत की कसौटी सार्वजनिक हित को बताया गया है। जिस मत की रचना किसी वर्ग विशेष अथवा किसी सम्प्रदाय विशेष के हितों को ध्यान में रखकर हुई हो ध्यान में रखकर हुई हो, उसे जनमत की संज्ञा नहीं दी जा सकती। वस्तुतः यह कसौटी भी ऐसी है जिसके आधार पर जनमत को पहचाना नहीं जा सकता। 'सार्वजनिक हित' शब्दावली अत्यधिक स्पष्ट है। यथार्थ में जनसाधारण अपने–अपने दृष्टिकोण के आधार पर 'सार्वजनिक हित' की कल्पना करते हैं और यह दृष्टिकोण एक बड़ी सीमा तक उनके वर्ग सम्बन्धों से प्रभावित होता है। स्पष्टतः 'सार्वजनिक हित' के सम्बन्ध में एक पूंजीपति की जो कल्पना हैं, वह एक साधारण मजदूर की कल्पना नहीं हो सकती। लॉवेल ने इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि किसी भी समुदाय का एक मत नहीं होता, बहुधा किसी भी प्रश्न पर विभिन्न मत होते हैं।

किसी मत को हम केवल उसी स्थिति में जनमत का नाम दे सकते हैं जबकि उसे बहुसंख्यक लोग स्वीकार कर ले।

3.4.2 उद्देश्य

- जनमत क्या होता है ये समझना
- लोकतन्त्र में जनमत का क्या महत्त्व है
- भारत में जनमत का क्या प्रभाव है
- जनमत निर्माण कैसे होता है

3.4.3 जनमत का महत्व

लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली में जनमत के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। हमारा युग अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र का युग है। आज के विशालकाय राज्यों में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र तो सम्भव ही नहीं है। अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र के सफल परिचालन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रतिनिधियों और निर्वाचकों के प्रति बराबर सम्पर्क बना रहे। सरकार का यह दायित्व है कि प्रत्येक महत्वपूर्ण विषय पर निर्णय लेने से पूर्व जनता की इच्छा को जानने का प्रयास करे, जनमत सरकार को इस इच्छा से अवगत कराता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जनमत कभी स्थायी नहीं होता, उसमें आये दिन परिवर्तन होते रहते है। अतः सरकार के लिए उचित और वांछनीय यह है कि वह इस प्रकार के सभी परिवर्तनों की जानकारी रखे। यदि सरकार का आचरण जनमत के प्रतिकूल है तो वह सरकार स्थायी नहीं हो सकती। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली में सरकार के लिए लोकमत को उदार करना आवश्यक है।

जनमत सरकार के ऊपर हमेशा एक अंकुश की भाँति काम करता है। उसके भय से स्वार्थी तथा बेईमान राजनीतिज्ञ सरकार को अपने स्वार्थ साधन का यन्त्र नहीं बना सकते। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक देश में स्वतन्त्र एवं प्रबुद्ध जनमत पाया जायें। लोकतान्त्रिक प्रणाली की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है।

भारत में जनमत

स्वस्थ जनमत के निर्माण के लिए जिन बातों को आवश्यक माना गया है, भारत में वे बातें आमतौर पर अनुपस्थित है। यहाँ की जनता अभी भी निरक्षर है तथा उसकी सार्वजनिक विषयों में कोई अधिक रूचि नहीं है। यहाँ के अधिकांश लोग अपने ही जगत में रहते हैं। देश में नाना प्रकार के धर्म पाये जाते हैं। यहाँ का समाज जाति–बिरादरी और प्रान्तियता की भावना से ग्रसित है। अतः इस स्थिति में सार्वजनिक समस्याओं पर यहां मतैक्य पाये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। समाचार पत्र एकाधिकारी पूँजीपतियों के नियन्त्रण में हैं, अतः जनता को सूचना प्रदान करने वाले साधन ईमानदार और निष्पक्ष नहीं है। देश में ऐसे अनेक दल हैं जिनका आधार साम्प्रदायिक है। इन सब बातों का स्वस्थ जनमत के निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। फिर भी पिछले वर्षों में देश की स्थिति तेजी के साथ बदली है। आज देश में पहले की अपेक्षा साक्षरों की संख्या कहीं अधिक है तथा देश के औद्योगिकरण के साथ स्थानीयता और धर्म के बन्धन भी कुछ ढीले हो रहे है। फलतः अनेक समस्याओं के ऊपर जनमत की अभिव्यक्ति बहुत अधिक स्पष्ट रूप से हो सकी है।

भारत में जनमत की रचना में राजनीतिक दलों, दबाव समूहों तथा समाचार पत्र का विशेष योगदान रहा है। राजनीतिक दल लोकमत को अपने पक्ष में बनाने के लिए पार्टी के समाचार पत्र निकालते हैं, अपना साहित्य वितरित करते हैं, सार्वजनिक सभाओं का आयोजन करते हैं तथा चुनावों में भाग लेते हैं। दबाव समूह भी चुनाव लड़ने को छोड़कर अन्य सभी उपायों को काम में लाते हैं। जनमत के निर्माण में अराजनीतिक संगठनों तथा व्यक्तियों का भी हमारे देश में एक योगदान रहा है। वस्तुतः राजनीतिक और अराजनीतिक संगठन इस दृष्टि से एक दूसरे के पूरक की भूमिका अदा करते है। उदाहरणार्थ यदि आचार्य विनोबा भावे के भूदान–यज्ञ ने भूमि के असमान वितरण की समस्या की और जनसाधारण और सरकार का ध्यान आकर्षित किया तो कम्यूनिस्ट पार्टी द्वारा संचालित 'भूमि हथियाओं' आन्दोलन ने इस बात को भली भांति व्यक्त कर दिया कि भूमि सुधार की समस्या का समाधान अत्यन्त आवश्यक है।

आधुनिक काल में प्रैस एक शक्तिशाली सामाजिक संस्था का रूप धारण कर चुका है। यह बात इस तथ्य से प्रमाणित है कि उसे चतुर्थ वर्ग (Fourths Estate) के नाम से गौरवान्वित किया गया है। प्रेस के माध्यम से आधुनिक जीवन की समस्त जटिल प्रतिक्रियाओं को न केवल व्यक्त किया जाता है, अपितु उन्हें एक निश्चित दिशा भी प्रदान की जाती है। उसके माध्यम से थोड़े समय में ही बड़े पैमाने पर विचारों का आदान–प्रदान सम्भव बनाया जा सकता है। उसकी सहायता से विवादों का निराकरण किया जा सकता है, आन्दोलन संगठित किये जा सकते हैं तथा संस्थाओं का निर्माण किया जा सकता है। प्रेस के द्वारा शासन के ऊपर लोकतान्त्रिक नियन्त्रण कायम किया जा सकता है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि देश में जनमत के निर्माण में प्रेस एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करे।

3.4.4 निष्कर्ष

जनमत आधुनिक प्रजातांत्रिक देशों में बहुत महत्त्व रखता है। जनमत निर्माण में बहुत सारे साधन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। यहाँ उपरोक्त उल्लेखित साधनों के अलावा भी अनेक साधन है जो जनमत निर्माण में सहायक है। एक व्यक्ति पर दूसरे व्यक्ति का प्रभाव पड़ सकता है। आपसी बातचीत, किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार, किसी दृश्य, कहानी या नाटक व सरकार के किसी कार्य का भी व्यक्तियों के विचारों पर प्रभाव पड़ सकता है। कई बार अफवाह भी जनमत को प्रभावित करने का कार्य करती है। कुल मिलाकर अनेक साधन भारत में जनमत का निर्माण एवं अभिव्यक्ति करते हैं।

3.4.5 मुख्य शब्दावली

- कोई नहीं

3.4.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. जनमत के निर्माण तथा अभिव्यक्ति के साधनों का वर्णन करें।
2. भारत में जनमत का निर्माण कैसे होता है ? विवेचना कीजिए।
3. मीडिया की बढ़ती हुई भूमिका ने भारतीय प्रजातंत्र को एक नई दिशा दी है। इस कथन को समझाइये।

4. भारत में जनमत के निर्माण एवं अभिव्यक्ति के प्रमुख अभिकरणों का वर्णन कीजिए।
5. जनमत का क्या महत्त्व है ?
6. जनमत का अर्थ स्पष्ट करें ?

3.4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967

- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

3.5 मीडिया (Media)

3.5.1 परिचय

लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनमत का बहुत महत्त्व होता है। वर्तमान समय में जनमत निर्माण में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अगर किसी की है तो वो मीडिया है। भारतीय लोकतन्त्र में भी इसकी भूमिका को बड़े पैमाने पर देख सकते है। मीडिया और राजनीति एक ही सिक्के के दो पहलू, समान और विपरीत पक्ष है और ये एक दूसरे पर निर्भर करते है। मीडिया के पास किसी भी राजनीतिक प्रणाली में अद्वितीय शक्ति है और यह शक्ति अपनी संस्कृति, लोगों और घटनाओं के बारे में जानकारी के मुख्य स्रोत से नियमित रूप से राजनीति में उनके कई कार्यों से उपजी है। मीडिया अपने दर्शको के दृष्टिकोण, राय और बेहतरी के लिए व्यवहार और भावी राष्ट्र बनाने में राजनीति का सबसे शक्तिशाली तना है।

3.5.2 उद्देश्य

- जनमत निर्माण में मीडिया की भूमिका का मूल्यांकन
- भारतीय मीडिया के विभिन्न पक्षों को समझना
- जनहित के मुद्दों के प्रति जनता को मीडिया कैसे जागरूक रखता है
- क्या मीडिया न्यायपालिका को भी प्रभावित करता है

3.5.3 मीडिया का महत्त्व

मीडिया ने पूरी दुनिया में लोकतन्त्र की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीडिया को लोकतान्त्रिक देशों में, विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बाद 'चौथा स्तंभ' माना जाता है, क्योंकि स्वतन्त्र मीडिया ही लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत करता है।

मीडिया से ही भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन को बहुत बल मिला जिसकी वजह से लाखों भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई में शामिल हो पाये भारतीय लोकतन्त्र में मीडिया की भूमिका आजादी के बाद भी महत्त्वपूर्ण रही है, चाहे वो 1975

की आपातकाल हो या फिर 2014 और 2019 के चुनाव या फिर राजनीतिक भ्रष्टाचार मीडिया की बढ़ती भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता।

मीडिया की भूमिका को समझने के लिए मुख्य रूप से दो पक्ष हो सकते है

सकारात्मक पक्ष

मीडिया के माध्यम से लोगों को देश की हर गतिविधियों की जानकारी मिलती है। किसी भी देश की जनता का मार्गदर्शन करने के लिए निष्पक्ष एवं निर्भिक मीडिया का होना आवश्यक है। मीडिया ही देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों की सही तस्वीर प्रस्तुत करता है। चुनाव एवं अन्य परिस्थितियों में सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों से जन–साधारण को अवगत कराने की जिम्मेदारी भी मीडिया को निभानी होती है। विभिन्न प्रकार के अपराधों एवं घोटालों का पर्दाफाश कर मीडिया देश व समाज का भला करता है।

मीडिया की शक्ति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि कई बार जनमत का निर्माण करने में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जनमत के निर्माण के बाद जनक्रान्ति ही नहीं बल्कि अन्य अनेक प्रकार का परिवर्तन सम्भव है। यहाँ तक की कभी–कभी सरकार को गिराने में और सरकार को बदलने में भी सफल रहते है। इसका उदाहरण हम 2014 के चुनाव से पहले अन्ना हजारे के आन्दोलन में मीडिया की भूमिका से सहज ही ले सकते है।

भारत में मीडिया के द्वारा विभिन्न प्रकरणों जैसे जैसिका लाल हत्याकाण्ड, 2जी स्पैक्ट्रम, बोफोर्स तोप, हवाला कांड, चारा घोटाला, राष्ट्रमण्डल खेल घोटाला इत्यादि अनेक घोटालों का पर्दाफाश करने में मीडिया की निर्भीकता का ही परिचायक है। मीडिया भारतीय राजनीति की दुष्टता को लोगों तक पहुँचाने का कार्य किया और समय –समय पर जनता के हितों की रक्षा की और उन्हें जागृत किया है।

नकारात्मक पक्ष

सरकार और सत्तारूढ़ दल की मीडिया पर बढ़ता नियन्त्रण आज किसी से छुपा नहीं है। ये मीडिया का हथकंडा अपनाकर सरकार जनता पर पकड़ बनाने में कामयाब हो जाती है। मीडिया द्वारा अपने तरह का विमर्श गढ़ने और राय की स्वतन्त्रता को

सीमित करने के अलावा लोगों को उनके वास्तविक हितों को पूरा करने वाली जानकारी से वंचित रखा जाता है। मीडिया पर राजनीतिक दलों, सरकार व बड़े–बड़े निगमों का दबाव रहता है और समाज को इनके फायदे के लिए हाशिये पर रख दिया जाता है। मीडिया को इन सबसे युक्त करने के लिए कड़े कानूनों का बनना आवश्यक है। वरना लोगों की राय स्वतन्त्र न होकर मीडिया द्वारा थोपी हुई होगी।

मीडिया के ऊपर स्वामित्त्व का जो दबाव है वो जनता के सामने प्रत्यक्ष नहीं है। जनता उससे अनभिज्ञ है। ये प्रैस की स्वतन्त्रता पर भी कुठाराघात है। मीडिया और राजनेताओं की किस तरह से सांठ–गांठ है। इसके संबंध में आम जनता को जागृत होना होगा और मीडिया द्वारा दी जाने वाली जानकारी पर जनता की पैनी नजर रखनी होगी।

प्रिंट से इलैक्ट्रानिक

भारतीय मीडिया ने समाचार पत्र और रेडियों से लेकर टेलीविजन और सोशल मीडिया के वर्तमान युग तक का लंबा सफर तय किया है।

प्रिंट मीडिया

प्रिंट मीडिया में समाचार–पत्र, पत्रिकाएं आदि होती है और प्रिंट मीडिया ही आम लोगों का पहली पसंद बना रहा है और प्रिंट मीडिया की पहुँच भी अधिक लोगों तक है। ये सरल, सुलभ और सस्ता है। प्रिंट मीडिया का लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रिंट मीडिया का अतीत तो शानदार रहा ही है लेकिन ये अपना दायित्व वर्तमान में भी बखूबी निभा रहा है।

इलैक्ट्रानिक मीडिया

इलेक्ट्रानिक मीडिया का अर्थ –

1. टेलीविजन : विद्युत माध्यम से संचार होता है। यानि इलैक्ट्रानिक साधनों से जो जनसंचार होता है।
2. रेडियो
3. इंटरनेट
4. यूट्यूब

5. बेब मीडिया

6. सिनेमा

3.5.4 निष्कर्ष

भारत जैसे जीवंत लोकतन्त्र में एक स्वतन्त्र और नियंत्रण मुक्त प्रैस की आवश्यकता है। लेकिन पिछले कुछ वर्षो में मीडिया की कार्यशैली में बहुत गिरावट आई है, जिससे भारत की मीडिया को विश्व स्तरीय आलोचना का शिकार होना पड़ा है। भारतीय मीडिया पर ये आरोप लगाया जाता है कि वो समाचारों में हेराफेरी करना और सूचनाओं को घुमा–फिराकर दिखाता है। ये भारतीय मीडिया के लिए नकारात्मक है। अतः इस छवि को भारतीय मीडिया को सुधारना होगा। ताकि लोगों के बीच में उसकी विश्वसनीयता बनी रहे।

3.5.5 मुख्य शब्दावली

सार्वजनक हित : आम जनता के लाभ का मामला

प्रिंट मीडिया : समाचार पत्र, पत्रिकाएँ इत्यादि जो लोगों तक लिखित रूप में सूचनाएं पहुँचाता है

3.5.6 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. मीडिया के भारतीय राजनीति पर क्या–क्या प्रभाव है ? नोट लिखे।
2. मीडिया के भारतीय राजनीति पर प्रभाव के विभिन्न पक्षों का वर्णन कीजिए।
3. मीडिया और भारतीय राजनीति के सम्बन्धों पर नोट लिखिए।
4. भारतीय राजनीति पर मीडिया के बढ़ते प्रभाव का वर्णन कीजिए।

3.5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966

- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998

- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

3.6 किसान आन्दोलन (Peasants Movement)

3.6.1 परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी जनता का 70 प्रतिशत से अधिक भाग गांवों में रहता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हमारी ग्रामीण कृषि व्यवस्था दो गम्भीर समस्याओं का शिकार थी। एक यह अत्यन्त अविकसित थी। सिंचाई तथा अन्य आवश्यक सुविधायें न के बराबर उपलब्ध थी। परिणामस्वरूप उपज का स्तर अत्यन्त कम था। दूसरे, कृषि भूमि का बंटवारा अत्याधिक असमान था। थोड़े से जमींनदार तथा बड़े किसान भूमि के बहुत बड़े भाग के मालिक थे। ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा भाग भूमिहीन श्रमिकों का था। मध्य नये छोटे स्तर के किसान भी काफी संख्या में थे। परन्तु इनके पास भूमि की मात्रा अधिक नहीं थी। कुल मिलाकर भारत में खाद्यानों की कमी थी, कृषि में लगा एक बहुत बड़ा भाग निर्धन तथा शोषित था तथा जमींदार और बड़े किसान ऐश्वर्य तथा विलासता में व्यस्त थे।

स्वतन्त्र भारत की सरकार के सामने प्रमुख कार्य कृषि उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि करना तथा इस क्षेत्र में सामन्ती व्यवस्था को परिवर्तित कर न्यायपूर्ण समाज बनाना था। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कई नीतियां बनाई गई। इनमें से एक पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से विकास को प्राप्त करने की थी। तो दूसरी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधारों के द्वारा असमानताओं को कम करने की। व्यवहार में इन नीतियों को जिस प्रकार लागू किया गया इसके परिणाम विरोधाभासी निकले। इनके कारण जहां खाद्यान्नों के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। ग्रामीण क्षेत्रों में नये प्रकार के वर्ग सम्बन्ध तथा तनाव भी उत्पन्न हुए है। इन्हीं के कारण आज भारत में व्यापक आन्दोलन विकसित हो रहे है। आमतौर पर इन आन्दोलनों को एक सामान्य किसान आन्दोलन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। वास्तव में यह आन्दोलन दो अलग–अलग प्रकार के हैं।

एक आन्दोलन वह जिनका लक्ष्य शहरी और औद्योगिक क्षेत्र के मुकाबले कृषि क्षेत्र को महत्व दिलाना तथा कृषि उत्पादकों के हितों की रक्षा है। स्वाभाविक है इसमें बड़े, मध्य स्तरीय और कुछ छोटे किसान की रूचि है। दूसरे आन्दोलन कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्र में भूमिहीन श्रमिकों, अत्यन्त छोटे किसानों, बटांईदारों तथा किरायेदारों आदि को न्याय दिलवाने के लिए है।

3.6.2 उद्देश्य

- कृषि विकास क्या महत्त्व है
- कृषक आन्दोलनों के क्या कारण थे
- सरकार द्वारा कृषकों के उत्थान हेतु उठाए गए नीतिगत कदम
- विभिन्न आन्दोलनों के लक्ष्य क्या थे
- क्या कृषकों की दशा में वर्तमान तक सुधार हुए है

3.6.3 विभिन्न किसान आन्दोलन

नियोजन के आरम्भिक वर्षो में कृषि क्षेत्र के विकास को अधिक महत्व नहीं दिया गया था। जमींदारी उन्मूलन तथा बाद में भूमि सुधार कानून बनाने के बावजूद कृषि क्षेत्र में सामन्ती व्यवस्था बनी रही। जमींदार तथा बड़े किसान यथास्थिति बनाए रखने में प्रसन्न थे। उन्होंने अपनी आर्थिक, जातीय तथा सामाजिक स्थिति के आधार पर राजनीति को प्रभावित कर पाने के प्रयत्न किए। इन दबावों के उपरान्त लोकतान्त्रिक व्यवस्था तथा उत्पादन वृद्धि की आवश्यकता के कारण सरकार को कुछ न कुछ सुधार करने पड़े। इन सुधारों का एक परिणाम यह था कि ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े किसानों के साथ–साथ एक नया मध्यम वर्ग विकसित होने लगा। जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधारों का लाभ भी अधिकतर मध्यम वर्गीय किसानों को हुआ। 1960 के दशक के अन्तिम वर्षो में आरम्भ हरित क्रान्ति ने देश के कुछ भागों में बड़े तथा मध्यम वर्गीय किसानों को और अधिक महत्व तथा लाभ प्रदान किया। कृषि क्षेत्रों में विकास के साथ –साथ लोकतान्त्रिक व्यवस्था के चुनाव प्रक्रिया के सन्दर्भ में ग्रामीण तथा कृषक

राजनीति में रूचि लेने लगे थे। राजनीतिक दल जाति तथा समुदाय के अतिरिक्त कृषकों को व्यवसायिक तथा वर्गीय आधार पर भी सचेत कर रहे थे।

1970 के दशक के प्रारम्भ से अनेक राज्यों में किसानों को अपनी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति की स्पष्टता, अपने हितों की रक्षा के लिए चेतना, राजनीति को प्रभावित कर सकने की अपनी शक्ति इत्यादि का एहसास होने लगा। इस परिवेश में किसान वर्ग ने अपने को संगठित करना शुरू किया। इसका आरम्भ राज्य स्तरीय संगठनों तथा आन्दोलनों से हुआ। बाद में राष्ट्रीय स्तर पर भी काफी संगठन बनाने के प्रयत्न किये गए। उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा हरियाण में भारतीय किसान यूनियन तथा महाराष्ट्र में खेतहारी संगठन इत्यादि उग्र तथा महत्वपूर्ण रूप से विकसित हुए।

इन किसान आन्दोलनों के मुख्य लक्ष्य थे –

1. कृषि उत्पादनों के लिए अधिक मूल्य
2. कृषि के लिए आवश्यक बिजली, पानी, खाद, डीजल, ट्रैक्टर इत्यादि सरकारी सहायता से सस्ते दामों पर उपलब्ध हो।
3. बैंकों तथा सरकारी संस्थाओं द्वारा कम ब्याज तथा आसान शर्तों पर ऋण
4. भूमि सुधारों का विरोध
5. कृषि पर काम करने वाले मजदूरों के लिए सरकार द्वारा न्यूनतम वेतन इत्यादि निर्धारित करने के निर्णयों को प्रभावित करना।
6. नियोजन प्रक्रिया में ग्रामीण तथा कृषि विकास को अधिक महत्व दिलाना।
7. कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों में असन्तुलन को दूर करना।
8. ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं को प्राप्त करवाना।

इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बड़े तथा मध्यम वर्गीय किसानों ने गैर–राजनीतिक संगठन बना कर आन्दोलनों, बैठकों, जलूसों तथा दबाव समूहों के रूप में कार्य कर सरकार पर दबाव डालने के रास्ते के साथ–साथ राजनीतिक दलों को अपने समर्थन के आधार पर लेन–देन की रणनीति भी अपनाई है। यह संगठन अपनी मांगों को वर्गीय आधार पर प्रस्तुत न कर इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि यह सम्पूर्ण ग्रामीण तथा कृषक समाज की है। ग्रामीण क्षेत्रों में मतदाताओं की संख्या तथा बड़े किसानों के

प्रभाव के संदर्भ में राजनीतिक दल इनकी अनदेखी नहीं कर सकते। इसलिए पिछले लगभग दो दशक से यह आन्दोलन काफी सफल हुए है। वास्तव में यह किसान राजनीति को ही प्रभावित करने में सफल होने लगे हैं। लगभगसभी राजनीतिक दल चुनावों में किसान वर्ग के प्रतिनिधियों को टिकट देने लगे है। लोक सभा तथा राज्य विधानसभाओं में इनका प्रतिनिधित्व काफी तेजी से बढ़ा है। विशेष रूप से उन राज्यों में जहां कृषि क्षेत्र अधिक विकसित है, जैसे पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश इत्यादि राजनीति में किसानों की भूमिका लगभग निर्णायक हो गई है। कुल मिलाकर इस प्रकार किसान आन्दोलन आज भारतीय राजनीति में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यह प्रशासन, राजनीतिक दलों तथा विद्यायिका सभी स्तरों पर निर्णय की प्रक्रिया को प्रभावित कर रहे है।

खेतीहर मजदूरों के आन्दोलन

भारत के कृषि के क्षेत्र में अनेक विडम्बनायें है। जहां यह एक कृषि प्रधान देश है वहीं भारत के अनेक भागों में आज भी कृषि अत्यन्त, परम्परागत तरीकों से होती है। भूमिका बंटवारा अत्याधिक असमानता पूर्ण है। जिन राज्यों में हरित क्रान्ति की सफलता से कृषि का विकास हुआ है वहां भी भूमि का बंटवारा अत्यन्त असमानता पूर्ण है। परन्तु इन राज्यों में भूमिहीन किसानों की स्थिति अविकसित राज्यों की तुलना में भिन्न है। अलग विकसित तथा पिछड़े राज्यों में भूमिहीन किसानों को पूरा काम ही नहीं मिलता। वह साल में कई दिन बेकार रहते है। काम की कमी के कारण वह भूमि के मालिकों पर पूरी तरह आश्रित है। अतः इन राज्यों में सामन्तशाही, बन्धुआ मजदूरी और बेरोजगारी की समस्याऐं गम्भीर है। विकसित राज्यों में श्रमिकों को काम तो मिलता है परन्तु इन राज्यों में श्रमिकों को उचित वेतन तथा भूमि के बंटवारे की समस्यायें है।

लोकतन्त्र की स्थापना तथा नियोजन में जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधारों के वायदों ने आरम्भ से ही भूमिहीन तथा छोटे किसानों की आकांक्षाओं को जागृत करना शुरू कर दिया था। अनेक राजनीतिक दल विशेष रूप से साम्यवादी तथा वामपन्थी दल अपनी विचार धाराओं तथा चुनावी समर्थन के आधार पर श्रमिकों तथा छोटे किसानों को संगठित करते रहे है। शासक दलों पर बड़े किसानों का नियन्त्रण कायम

रहने, नियोजन में कृषि विकास के असन्तुलित रहने तथा भूमि सुधारों की व्यापक विफलता से भूमिहीन किसानों में काफी असन्तोष है। मूल्य वृद्धि, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की असफलता तथा बढ़ती बेरोजगारी से यह असन्तोष और बढ़ रहा है। लोकतन्त्र द्वारा प्राप्त अधिकारों तथा विचारधारा आधारित दलों द्वारा संगठित किए जाने के प्रयत्नों ने खेतीहर मजदूरों में व्यापक आन्दोलनों को उदित किया है। यह आन्दोलन अनेक राज्यों में काफी उग्र रूप धारण कर रहे हैं। आन्ध्र प्रदेश, बिहार तथा कुछ अन्य राज्यों में क्रान्तिकारी दल जैसे साम्यवादी दल (मार्क्सवादी–लेनिनवादी) इन आन्दोलनों को हिंसक तथा क्रान्तिमय रूप भी प्रदान कर रहे है।

भूमिहीन किसानों के मुख्य लक्ष्य है – उचित रोजगार के अवसर, मजदूरी की न्यूनतम दरे, भूमि सुधार, सामाजिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता इत्यादि। शासक दलों पर बड़े किसानों के नियन्त्रण, प्रशासन में इनके प्रभाव तथा नीति निर्धारण में उनकी सुनवाई के कारण भूमिहीन किसानों के आन्दोलन अभी बहुत अधिक सफल नहीं हुए है। परन्तु इनकी भूमिका बढ़ रही है। इन आन्दोलनों के कारण अनेक राज्यों में दलित तथा शोषित जन अब जमींदारों तथा भूमिपतियों की इच्छा के विरूद्ध अपनी इच्छा से मतदान करने लगे है। इसके प्रतिरोध में कुछ क्षेत्रों में उच्च जातीय तथा बड़े किसान वर्ग दलितों तथा छोटे किसानों के विरूद्ध हिंसा का प्रयोग करने लगे है। अतः भूमिहीन किसानों के आन्दोलन एक और ग्रामीण क्षेत्रों में लोकतान्त्रिक जागृति, समानता के लिए संघर्ष तथा सामाजिक न्याय के लिए आवाज उठा रहे हैं वहीं दूसरी ओर राज्य की प्रकृति, प्रशासनिक सेवाओं के उच्च वर्गीय स्वरूप तथा शासन की निष्क्रियता के कारण इनसे ग्रामीण क्षेत्रों में हिंसा बढ़ रही है। परन्तु इन आन्दोलन को दबाया नहीं जा सकता। समय के साथ–साथ इनकी भूमिका तथा इनके आकार में वृद्धि होना स्वाभाविक है।

3.6.4 निष्कर्ष

भारत में किसान आन्दोलन एक सशक्त ताकत के रूप में उभरे हैं और इन्होंने किसानों की दशा सुधारने का कार्य भी किया है। इन आन्दोलनों के परिणामस्वरूप किसानों में राजनैतिक जागृति आई है और उन्होंने संसद तथा राज्य विधानसभाओं में

अपने प्रतिनिधि भेजने का प्रयास भी किया है। इसके परिणामस्वरूप सरकार इनकी समस्याओं की ओर ध्यान देने लगी है। सरकार ने कृषि उपज के मूल्यों में लगातार वृद्धि की है और किसानों को वित्तीय सहायता देने के लिए अनेक योजनाएँ लागू की हैं, किन्तु इन सभी योजनाओं का लाभ बड़े किसानों को ही पहुँचा है, जिससे मजदूरों तथा छोटे किसानों की स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। फिर भी, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि आमतौर पर किसान आंदोलनों में समूचे किसान वर्ग की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति में पहले से सुधार हुआ है।

3.6.5 मुख्य शब्दावली

- नियोजन : सरकार द्वारा किसी भी क्षेत्र में विकास के लिए योजना बनाकर कार्य करना।
- भूमिहीन किसान : जिनके पास खेती के लिए भूमि नहीं है। लेकिन वे दूसरे किसानों के यहाँ कृषि कार्य करते है।
- लोकतान्त्रिक जागृति : किसानों के द्वारा अपने हितों को पूरा करने के लिए संसद और विधानसभाओं में अपने प्रतिनिधियों को भेजना।

3.6.6 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. किसान आन्दोलनों से आपका क्या अभिप्राय है ? भारत में चलाए गए किसान आन्दोलनों का संक्षिप्त वर्णन करे।
2. विभिन्न खेतिहर आन्दोलनों पर प्रकाश डालिए।
3. भारतीय राजनीति पर किसान आन्दोलनों का क्या प्रभाव रहा है ? उदाहरण सहित उत्तर दीजिए।
4. भारत में किसान आन्दोलन के पीछे कौन से कारण रहे है।
5. तिभागा आन्दोलन पर संक्षिप्त नोट लिखे।

3.6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली

- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984

- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

ईकाई – 4

भारतीय राजनीति और चुनौतियाँ

4.0 ईकाई परिचय

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित होने के मार्ग में बहुत सारी समस्याएँ और चुनौतियां है। जातिवाद का भारतीय राजनीति पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। जाति व्यवस्था भारतीय समाज की परम्परागत विशेषता है। इसी तरह से क्षेत्रीयवाद भी एक बड़ी समस्या है। जिससे भारतीय राजनीति के सामने चुनौती प्रस्तुत की है। इससे राष्ट्रीय एकता को नुकसान हुआ तथा पृथकतावादी ताकतों को बढ़ावा मिला। वर्ग राजनीति, दलित मुद्दे भी ऐसे घटक है जिनसे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या को बढ़ाया है। महिलाओं की राजनीति में सहभागिता का बहुत कम होना भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए ठीक नहीं है। हालांकि 74वें संशोधन के माध्यम से महिलाओं को पंचायती राज में 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान करके उनकी सहभागिता को प्रोत्साहित किया है लेकिन ये पर्याप्त नहीं है। पंचायती राज प्रणाली का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय लोकतन्त्र को मजबूत करना तथा लोगों की मूल आवश्यकताओं को राजनीतिक व प्रशासनिक प्रयास से पूरा करना है।

हम ये कह सकते है कि उपरोक्त चुनौतियों का सामना करते हुए भी भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था सफलतापूर्वक अपना कार्य कर रही है, जो अपने–आप में एक मिसाल है।

4.1 उद्देश्य

- भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाली विभिन्न चुनौतियों को पहचानना
- इन चुनौतियों का सामना करते हुए भी भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सफलता का मूल्यांकन
- इन समस्याओं से निपटने के प्रयासों को कैसे प्रभावी बनाया जाये

- पंचायती राज व्यवस्था जो कि लोकतन्त्र में शासन की सबसे छोटी ईकाई है उसकी कार्यप्रणाली का मूल्यांकन करना
- पृथकतावादी शक्तियों को कैसे पहचानकर उनसे निपटा जाये जिससे राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा मिले

4.2 जाति और भारतीय राजनीति (The Caste and Indian Politics)

4.2.1 परिचय

परम्परावादी भारतीय समाज में आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना भारतीय राजनीति की एक अद्‌भुत विशेषता है। भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रारम्भ होने के बाद यह धारणा विकसित हुई कि पश्चिमी ढंग की राजनीतिक संस्थाएं और लोकतंत्रात्मक मूल्यों को अपनाने के फलस्वरूप पारम्परिक संस्था जातिवाद का अन्त हो जाएगा किन्तु आजादी के बाद भारत की राजनीति में जाति का प्रभाव अनवरत रूप से बढ़ता गया। जहां सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में जाति की शक्ति घटी है वहां राजनीति और प्रशासन पर इसके बढ़ते हुए प्रभाव को राजनीतिज्ञों, प्रशासनाधिकारियों और केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने स्वीकार किया है।

4.2.2 उद्देश्य

- जाति क्या होती है या उसका आधार क्या है
- भारत में जाति किस तरह राजनीति को प्रभावित करती है
- राजनीति जाति को कैसे प्रभावित करती है
- क्या जातियों के राजनीति पर प्रभाव से भारत में भाइचारे को ठेस पहुँचाई है

4.2.3 जाति का परम्परागत अर्थ एवं रूप (Traditional Meaning and Nature of Caste)

जाति प्रथा किसी न किसी रूप में संसार के हर कोने में पायी जाती है, पर यह गम्भीर सामाजिक कुरीति के रूप में यह हिन्दू समाज की ही विशेषता है। यह व्यवस्था एक अति प्राचीन व्यवस्था रही है। इसका अभिप्रायः पेशे के आधार पर समाज को कई भागों में बांट देना है। सामान्यतया यह माना जाता है कि जाति प्रथा की उत्पति वैदिक काल में हुई। ब्राह्मण धार्मिक और वैदिक कार्यो का सम्पादन करते थे। क्षत्रियों का कार्य देश की रक्षा करना और शासन प्रबन्ध करना था। वैश्य कृषि और वाणिज्य

सम्भालते थे तथा शुद्रों को अन्य तीन वर्णो की चाकरी करनी पड़ती थी। शुरू–शुरू में जाति प्रथा के बन्धन कठोर न थे और वह जन्म पर नहीं अपितु कर्म पर आधारित थे। बाद में जाति प्रथा में कठोरता आती गयी। वह पूरी तरह जन्म पर आधारित हो गयी तथा एक जाति से दूसरी जाति में अन्तःक्रिया असम्भव हो गयी। अपने मौलिक रूप में जाति प्रथा उपयोगी थी चूंकि वह श्रम विभाजन के सिद्धांत पर आधारित थी। अतः उसके आर्थिक क्षेत्र में निपुणता के तत्व का समावेश किया। एक जाति का पेशा उसी जाति में होता था। बेटा बाप से अपना पुश्तैनी पेशा सिखता था और प्रायः उसी को अपनी आजीविका के साधन के रूप में अपना लेता था। इस प्रथा ने एक जाति और बिरादरी के लोगों में भाई–चारे की भावना को बढ़ाया। एक जाति के लोग एक–दूसरे से भली भांति परिचित होते थे तथा एक–दूसरे के सुख–दुःख में काम आते थे। प्रो० घुरिये (Ghurye) ने जाति प्रथा की विशेषताएं बतायी है, जो इस प्रकार है :

1. भारत में जाति ऐसे समुदाय है जिसका अपना विकसित जीवन है और इसकी सदस्यता जन्म से निश्चित होती है।
2. भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति जानता है और जातियों में पदसोपान में ब्राह्मण सबसे ऊपर माना जाता है।
3. जातियों के आधार पर खान–पान और सामाजिक आदान–प्रदान के प्रतिबंध लगे रहते हैं।
4. गांवों तथा शहरों में जाति के आधार पर पृथकता की भावना बनी रहती है।
5. कुछ जातियां कातिपय विशेष प्रकार के व्यवसायों को अपना पुश्तैनी अधिकार समझती है।
6. जातियों की परिधि में ही वैवाहिक आदान–प्रदान होता है और जातियां कई उपजातियों में विभिक्त होती है। उप–जातियों में भी वैवाहिक परिसीमाएं है।

जाति का राजनीति से सम्पर्क सूत्र (Politics Attached to Caste)

स्वाधीनता संग्राम के दौरान ऐसा दिखाई देता था कि जनता पर जातिवाद का प्रभाव कम हो रहा है। किन्तु आजादी के बाद जातिवाद ने फिर जोर पकड़ा और व्यस्क मताधिकार व्यवस्था को देश में लागू कर दिए जाने के परिणामस्वरूप यह एक

राजनीतिक शक्ति के रूप में उदित हुआ। वैसे राजनीति पर जातिगत प्रभाव प्रतिनिधि व्यवस्था के लागू होने के समय से ही शुरू हो गया था, किन्तु यह प्रभाव नगण्य ही था। इसके लिए उत्तरदायी थे ब्रिटिश प्रशासन राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सीमित मताधिकार स्वतंत्रता की प्राप्ति ने प्रथम दो कारणों का निराकरण कर दिया और नए संविधान में अपनायी गयी व्यस्क मताधिकार व्यवस्था ने तीसरे का। फलतः जातियों के प्रभाव क्षेत्र में आशातीत वृद्धि हो गयी। आरम्भ में सामाजिक अथवा आर्थिक दृष्टि से उच्च अथवा श्रेष्ठ जातियां ही राजनीति से प्रभावित रही और राजनीतिक लाभ उन्हीं तक सीमित रहे। समय के साथ–साथ मध्यम और निम्न समझी जाने वाली जातियां आगे आने लगी और उसने राजनीतिक प्रभाव को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहने लगी। प्रो० रूडोलफ के शब्दों में, 'भारत के राजनीतिक लोकतंत्र के संदर्भ में जाति वह धुरी है जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों और तरीकों की खोज की जा रही है। यथार्थ में यह एक ऐसा माध्यम बन गयी है कि इसके जरिए भारतीय जनता को लोकतान्त्रिक राजनीति की प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है।

जाति और राजनीति में अन्तःक्रिया सैद्धान्तिक आधार

(Interation between Caste and Politics : Theoretical Framework)

भारत में जाति और राजनीति में किस प्रकार का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध में चार प्रकार से विचार प्रस्तुत किए जा रहे है –

1. यह कहा जाता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था का संकलन जाति की संरचना के आधार पर हुआ है और राजनीति केवल सामाजिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति मात्र हैं। सामाजिक संगठन राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित करता है।
2. राजनीति के प्रभाव के फलस्वरूप जाति नया रूप धारण कर रही है। लोकतान्त्रिक राजनीति के अन्तर्गत राजनीति की प्रक्रिया प्रचलित जातीय संरचनाओं को इस प्रकार प्रयोग में लाती है जिससे सम्बद्ध पक्ष अपने लिए समर्थन जुटा सकें तथा अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना सके। जिस समाज में जाति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण संगठन माना जाता है उसमें यह अत्यन्त

स्वाभाविक है कि राजनीति इस संगठन के माध्यम से अपने आपको संगठित करने का प्रयास करे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जिसे हम राजनीति में जातिवाद के नाम से पुकारते हैं वह वास्तव में जाति का राजनीतिकरण हैं।

3. भारत में राजनीति 'जाति' के इर्द–गिर्द घूमती है। जाति प्रमुखतम राजनीतिक दल है। यदि मनुष्य राजनीति की दुनिया में ऊँचा उठना चाहता है तो उसे अपने साथ अपनी जाति को लेकर चलना होगा भारत में राजनीतिक जातिय समुदायों को इसलिए संगठित करते हैं ताकि उनके समर्थन में उन्हें सत्ता तक पहुंचने में सहायता मिल सके।

4. जातियां संगठित होकर प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में भाग लेती है और इस प्रकार जातिगत भारतीय समाज में जातियाँ ही 'राजनीतिक शक्तियाँ' बन गयी है।

जाति के राजनीतिकरण की विशेषताएँ (Characteristic of Caste Politicisation)

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका की उभरती विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. जाति व्यक्ति को बांधने वाली कड़ी है। जातीय संघों और जातीय पंचायतों ने जातिगत राजनीतिक महत्वकांक्षाओं को बढ़ाया है। जाति व्यक्ति को समाप्त करने वाले आन्दोलन अन्तेतागत्वा नयी जातियों के रूप में मुखरित हुए जैसे लिंगायत, कबीरपन्थी और सिक्ख आन्दोलन स्वयं नयी जातियां बन गए।

2. शिक्षा, शहरीकरण, औद्योगिकरण और आधुनिककरण से जातियां समाप्त नहीं हुई अपितु उनमें एकीकरण की प्रवृति को बल मिला और उनकी राजनीतिक भूमिका में वृद्धि हुई।

3. राजनीति में प्रधान जाति की भूमिका का विश्लेषण किया जा सकता है। प्रधान जाति (Deminant Caste) न केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से ही शक्तिशाली होती है, बल्कि संख्या में भी गांव या इलाकों में ज्यादा होती है। प्रधान जाति अपने संख्या दल के आधार पर गांव और क्षेत्र की स्थानीय संस्थाओं जैसे पंचायतों की राजनीति में सक्रिय होती है। यदि किसी राज्य

विशेष में किसी जाति की प्रधानता होती है तो राज्य राजनीति में जाति एक प्रभावक तत्व बन जाती है।

4. उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तर्राद्ध में ही जातिगत समुदायों का झुकाव राजनीति की ओर हो गया था जबकि ब्रिटिश शासन ने भारत में एक मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था की नींव डाली थी। सबसे पहले इसका ध्यान जनगणना कार्यालय की ओर गया जहां जातीय समुदायों ने सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्ति के ध्येय से अपने संगठन का नामकरण कराना आवश्यक समझा। बाद में अपनी जाति के लोगों के हितों को संरक्षण के लिए जातीय संघों ने प्रस्ताव पारित किए और शासन को अपनी मांगों के लिए प्रभावित करना आरम्भ किया। यहां तक कि कुछ जातियों ने शैक्षणिक सुविधा, शिक्षण संस्थाओं में जातिगत आरक्षण और सरकारी नौकरियों में आरक्षण की मांग की। मद्रास की वेनिया (Venniyars) जाति के नेता पदायची (Padayachi) ने सी० राजगोपालाचारी के मन्त्रिमण्डल में शामिल होने से इन्कार कर दिया क्योंकि उन्होंने उनकी जातीय मांगों को मानने से इन्कार कर दिया था। बाद में वे कामराज मन्त्रिमण्डल में शामिल हो गए क्योंकि उन्होंने वेनियरो की मांगे स्वीकार कर ली।

5. निर्वाचनों के दिनों में जातिगत समुदाय प्रस्ताव पारित करके राजनीतिक नेताओं और दलों को अपने जातिगत समर्थन की घोषणा करके अपने हितों को मुखरित करते हैं।

6. जाति की भूमिका राष्ट्रीय स्तर की राजनीति पर उतनी नहीं है जितनी स्थानीय और राज्य राजनीति पर है।

7. जाति और राजनीति के सम्बन्ध स्थैयिक न होकर शक्तिशील हैं।

भारतीय राजनीति में 'जाति' की भूमिका (Role of Caste in Indian Politics)

जातीय व्यवस्था भारतीय समाज का एक परम्परागत तत्व है। भारत के नए संविधान में लागू होने से व्यस्क मताधिकार के आधार पर देश में चुनाव आरम्भ हुए और जातीय संस्थाएं महत्वपूर्ण बन गई, क्योंकि उनके पास भारी संस्था में मत थे और

लोकतन्त्र में सत्ता प्राप्त करने के लिए मतों की आवश्यकता थी। इस कारण से धीरे–धीरे राजनीति में जातिवाद की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती गई।

(1) राजनीतिक दलों का गठन जाति के आधार पर (Organisation of the Political Parties on the Basis of Caste)

भारत में अनेक राजनीतिक दलों का गठन जातीय आधार पर किया गया है। राष्ट्रीय दल चाहे प्रत्यक्ष रूप से किसी जाति विशेष का समर्थन न रखते हो, परन्तु क्षेत्रीय स्तर पर जातिवाद का खूब प्रचार किया जाता है। वर्तमान स्थिति में बहुजन समाज पार्टी, जाति पर आधारित एक दल है। तमिलनाडु में डी०एम०के० तथा ए०आई०ए०डी०एम०के० (A.I.A.D.M.K.) मुख्य रूप से ब्राह्मण विरोधी अथवा गैर–ब्राह्मणों के दल तथा बंगाल में रिपब्लिकन पार्टी आदि भी जातिवाद पर आधारित राजनीतिक दल है। मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के बाद तो जनता दल भी अपने आपको पिछड़े वर्ग का मसीहा घोषित करने में लगा हुआ है। चौ० चरण सिंह तथा देवीलाल ने भी अजगर के नाम से अहीर, जाट, गुजर तथा राजपूतों का संयुक्त मोर्चा बनाकर राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए लगातार प्रयत्न करते रहे।

(2) राजनीतिक नेतृत्व (Political Leadership)

भारतीय राजनीति में जातिवाद ने राजनीतिक नेतृत्व को बहुत हद तक प्रभावित किया है। सभी जातियों के समर्थन के आधार पर अनेक नेता राजनीति में अपना महत्व बनाए हुए हैं। उदाहरण के तौर पर पंजाब में प्रकाश सिंह बादल अकाली सिखों तथा हरियाणा में राव वीरेन्द्र सिंह अहीर जाति के तथा चौ० देवी लाल जाट जाति के समर्थक के आधार पर बहुत समय से राजनीति में अपने समर्थन को बनाए रखा। वर्तमान स्थिति में बिहार में लालू प्रसाद यादव तथा उत्तर प्रदेश व कुछ अन्य राज्यों में काशीराम व मायावती, रामविलास पासवान तथा शरद यादव जाति के आधार पर ही अपने नेतृत्व को बनाए हुए है।

(3) चुनाव में उम्मीदवारों का चयन (Selection of Candidate in Elections)

प्रत्येक चुनाव के समय उम्मीदवारों का चयन करने में जातिवाद का मुख्य रूप से आधार बनाया जाता है। प्रायः जिस निर्वाचन क्षेत्र में जिस जाति का बहुमत होता है,

उसी जाति के उम्मीदवार को ही दल का टिकट दिया जाता है। यह बात कांग्रेस तथा अन्य सभी राजनीतिक दलों पर लागू होती है। चूंकि भारतीय जनता का एक बहुत बड़ा भाग अभी तक अशिक्षित है, उन पर जातिवाद का असर और भी अधिक होता है। जिस निर्वाचन क्षेत्र में ब्राह्मण अधिक है, वहां पर प्रायः ब्राह्मण उम्मीदवार और जहां पर जाट अधिक संख्या में हैं, वहां पर जाट उम्मीदवार को ही खड़ा किया जाता है।

(4) चुनाव प्रचार (Election Propaganda)

भारत में होने वाले सभी चुनावों, पंचायत से लेकर लोकसभा तक में चुनाव अभियान में जातिवाद का खुलकर सहारा लिया जाता है। मतदाताओं की जातीय भावनाओं को उभारकर उन्हें अपनी जाति के उम्मीदवार के लिए मत देने की अपील की जाती है और प्रायः उसी जाति का उम्मीदवार चुनाव में विजयी होता है, जिस जाति के मतदाताओं की संख्या उस निर्वाचन क्षेत्र में सबसे अधिक होती है।

(5) जाति तथा मतदान व्यवहार (Caste and Voting Behaviour)

भारत में चुनावों के समय बहुत बड़ी संख्या में मतदाता अपनी जाति के उम्मीदवार के पक्ष में ही मतदान करते है। वे केवल अपना मत जाति के उम्मीदवार के पक्ष में ही नहीं देते बल्कि अन्य व्यक्तियों को भी अपनी जाति के उम्मीदवार के पक्ष में मतदान करने के लिए कहते है। बिहार, हरियाणा, पंजाब तथा उत्तरप्रदेश आदि के क्षेत्र इसके लिए बहुत कुख्यात रहे है। सन् 1996 तथा 1998 में हुए लोकसभा चुनावों में पंजाब में अकाली दल की भारी जीत का मुख्य कारण जातिवाद ही है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाट–गुज्जर राजनीति एक महत्वपूर्ण तथ्य है।

सन् 1998 के लोकसभा चुनाव में हरियाणा में ओमप्रकाश चौटाला के राष्ट्रीय जनता दल की अच्छी सफलता का एक कारण जाट जाति के मतों का विभाजन न होना। इसी प्रकार आन्ध्र प्रदेश में कार्मभा और रेड्डी, कर्नाटक में वोकलिग्गा और लिगांयत जाति के मतदाता प्रायः अपनी जाति के उम्मीदवारों के पक्ष में ही मतदान करते है। हरियाणा में तो चुनाव के समय यह नारा प्रायः सुनाई पड़ता है कि ''जाट की बेटी जाट को जाट की वोट जाट को।'' सन् 1996 तथा 1998 के लोकसभा चुनावों में

कांग्रेस पार्टी को विशेष सफलता न मिलने का एक कारण उससे भारी संख्या में पिछड़े वर्गो तथा मुसलमानों के मतों का कट जाना था।

(6) जातियों के नाम पर आरक्षण (Reservation on Cute Basis)

संविधान निर्माताओं ने अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जन–जातियों के लिए प्रशासन में कुछ स्थान आरक्षित करने की व्यवस्था 10 वर्ष के लिए की थी। इस नीति का उद्देश्य समाज के अत्याधिक पिछड़े वर्ग को शेष समाज के बराबर लाना था, लेकिन उसे उसकी मूल भावना के रूप में लागू नहीं किया गया। उन्हें सुरक्षित वोट बैंक मानकर उनके लिए यह आरक्षण बार–बार बढ़ाया जाता है। इसके अलावा, पिछड़े वर्ग के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा वी०पी० सिंह सरकार ने करके मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करते हुए सम्पूर्ण राष्ट्र को जातीय संघर्ष की होली में झोंक दिया था। सैंकड़ों युवक–युवतियां आत्मदाह कर बैठे। अरबों की सम्पति नष्ट हुई। विकास कार्य रूक गए। सामान्य जन–जीवन अस्त व्यस्त हो गया और हालात नियंत्रण से बाहर हो गए थे। न्यायपालिका को मामला सौंपकर ही शांति कायम की जा सकी।

(7) जाति एवं प्रशासन (Caste and Administration)

लोकसभा और विधानसभाओं के लिए जातिगत आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है, केन्द्र एवं राज्य सरकारी नौकरियों एवं पदोन्नति के लिए जातिगत आरक्षण का प्रावधान हैं। मेडिकल एवं इन्जीनियरिंग कॉलेजों में विद्यार्थियों की भर्ती हेतु आरक्षण के प्रावधान मौजूद हैं। चरण सिंह सरकार ने तो अल्पकाल में एक अध्यादेश के माध्यम से पिछड़ी जातियों के लिए केन्द्रीय सरकार की सेवा में आरक्षण व्यवस्था घोषित करने की मंशा प्रकट की थी और इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को भी ताक में रख दिया था। यदि अध्यादेश लागू हो जाता तो मध्यम जातियों, जैसे अहीर, यादव, कुर्मी आदि को भी आरक्षण के अवसर मिल जाते। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने 1990 में मंडल रिर्पोट लागू कर नौकरियों में पिछड़ी जातियों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया। ऐसा भी माना जाता है कि भारत में स्थानीय स्तर के प्रशासनिक अधिकारी निर्णय लेते समय अथवा निर्णयों के क्रियान्वयन में प्रधान और प्रतिष्ठित अथवा संगठित जातियों के नेताओं से प्रभावित हो जाते है।

(8) पंचायती राज तथा जातिवाद (Panchayati Raj and Casteism)

आजादी के बाद गांवों में पंचायती राज की व्यवस्था की गई, पंचायती राज के तीन स्तरों – पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद् के चुनाव में जाति का बहुत महत्व है। कई बार चुनाव में जाति की भावना भयानक रूप धारण कर लेती है तथा दंगे–फसाद भी हो जाते है।

(9) सरकार के निर्माण में जातिवाद का प्रभाव (Influence of Caste in the Formation of Government)

केन्द्र तथा राज्यों में सरकार के निर्माण के समय भी जातिवाद महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्रधानमंत्री अथवा राज्यों के मुख्यमंत्री अपने मंत्रिमण्डलों का निर्माण करते समय इस बात पर विशेष रूप से ध्यान रखते हैं कि सभी जातियों के सदस्यों को उसमें प्रतिनिधित्व मिले। मुख्यमंत्री के पद पर भी प्रायः उसी जाति का सदस्य नियुक्त होता है जिस जाति का उस राज्य में बहुमत होता है। पंजाब में अकाली दल की सरकार बनी, तो सरदार दरबारा सिंह, प्रकाश सिंह बादल, सुरजीत सिंह बरनाला, बेअंत सिंह तथा पुनः प्रकाश सिंह बादल ही मुख्यमंत्री बने। इसके विपरीत हरियाणा अथवा हिमाचल प्रदेश में कभी किसी सिख को मुख्यमंत्री बनने की संभावना दिखाई नहीं देती।

(10) निर्णय प्रक्रिया में जाति की भूमिका (Role of Caste in Decision Making)

भारत में जातियां संगठित होकर राजनीतिक और प्रशासकीय निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती है। उदाहरण के तौर पर संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों व जन–जातियों के लिए जो व्यवस्था आरम्भ में केवल 10 वर्ष के लिए की गई थी उसको उन्होंने दबाव डालकर बढ़ावा लिया है। आगे भी इसके समाप्त होने की कोई संभावना दिखाई नहीं देती।

जाति की भूमिका : वरदान या अभिशाप (The Role of Caste : Blessing or a Curse)

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का मूल्यांकन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। कई लोग जाति को राजनीति का कैंसर मानते हैं। जाति प्रथा को राष्ट्रीय एकता

के मार्ग में बाधक माना जाता है। क्योंकि इससे व्यक्तियों में पृथकतावाद की भावना जागृत होती है। राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा अपने जातिगत हितों को अधिक महत्व देने लगते हैं। जाति निष्ठाओं का सृजन कर यह प्रथा लोकतन्त्र के विकास मार्ग को अवरूद्ध कर देती है। डी०आर० गाडगिल के अनुसार, क्षेत्रीय दबावों से कहीं ज्यादा खतरनाक बात यह है कि वर्तमान काल में जाति व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांधने में बाधक सिद्ध हुई है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम०एन० श्री निवास का मत है कि परम्परावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को उस तरह प्रभावित किया है कि ये राजनीतिक संस्थाएं अपने मूलरूप में कार्य करने में समर्थ नहीं रही है।

दूसरी तरफ अमरीकी लेखकों–रूडाल्फ एण्ड रूडाल्फ का मत है कि जाति व्यवस्था ने जातियों के राजनीतिकरण में सहयोग देकर परम्परावादी व्यवस्था को आधुनिकता में ढालने के सांचे का कार्य किया है। वे लिखते है अपने परिवर्तित रूप में जाति व्यवस्था ने भारत में कृषक समाज में प्रतिनिधित्व लोकतन्त्र की सफलता करके तथा भारतीयों की दूरी कम करके उन्हें अधिक समान बनाकर समानता के विकास में सहायता दी है।

4.2.4 निष्कर्ष

संक्षेप में, चाहे जाति आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक न हो तथापि राजनीति में जाति का हस्तक्षेप लोकतन्त्र की धारणा के प्रतिकूल है। जातिवाद देश, समाज और राजनीति के लिए बाधक है। विविधता की सीमाएं होती है। इस देश में इतनी जातियां, उपजातियां तथा सहजातियां पैदा हो गयी है कि वे एक–दूसरे से पृथक रहने में ही अपने–अपने अस्तित्व की रक्षा समझती है। यह पृथकतावादी दृष्टि राष्ट्रीय एकता के लिए अत्याधिक घातक है।

4.2.5 मुख्य शब्दावली

- सीमित मताधिकार : केवल कुछ ही लोगों को वोट का अधिकार होना। ब्रिटिश शासन के दौरान यही मताधिकार लागू था।

- व्यस्क मताधिकार : सभी 18 वर्ष के नागरिकों को भारतीय संविधान द्वारा बिना किसी भेदभाव के वोट का अधिकार दिया है। पहले ये आयु सीमा 21 वर्ष थी लेकिन 61वें संवैधानिक संशोधन द्वारा इसे 18 वर्ष कर दिया गया।
- वर्ण व्यवस्था : भारत में प्राचीन काल से ये व्यवस्था लागू थी जिसमें व्यक्ति के कर्म के आधार पर उसका वर्ण तय होता था। चार वर्ण पाए जाते थे – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र।

4.2.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का वर्णन कीजिए।
2. भारतीय राजनीति जाति के बोझ से दबी है। भली–भाँति स्पष्ट कीजिए।
3. भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका की रजनी कोठारी के विचारों के सन्दर्भ में विश्लेषण करें।
4. भारतीय राजनीति में जाति की महत्ता के विषय में रजनी कोठारी के विचारों का वर्णन कीजिए।
5. ''भारत में राजनीति का जातिकरण हो रहा है।'' स्पष्ट करें।
6. स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में जाति तथा राजनीति में अन्तःक्रिया की व्याख्या करो।
7. जातिवाद के दोषों का वर्णन करें।
8. ''जातिवाद और लोकतन्त्र एक–दूसरे के विरोधी है।'' स्पष्ट करें।
9. जातिवाद का राष्ट्रीय एकता पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है ?

4.2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966

- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998

- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.3 वर्ग–राजनीति (The Class Politics)

4.3.1 परिचय

विश्व के सभी समाजों में वर्ग पाए जाते है। पुरातन काल से ही आयु, लिंग, शिक्षा, आय, व्यवसाय होता रहा है। समान सामाजिक परिस्थिति वाले व्यक्ति समूह को वर्ग कहेंगे। जब जन्म को छोड़कर अन्य किसी भी आधार पर समाज को विभिन्न समूहों में विभाजित कर दिया जाता है, तो उनमें से प्रत्येक समूह को हम सामाजिक वर्ग कहते है। जैसे – पूंजीपति वर्ग, मजदूर वर्ग, शिक्षक वर्ग आदि।

4.3.2 उद्देश्य

1. भारत में वर्गो का स्वरूप क्या है
2. ये वर्ग राजनीति को किस प्रकार प्रभावित करते है
3. क्या संविधान के तहत हर एक वर्ग को समान विकास के अवसर प्रदान किए गए है
4. कमजोर वर्गो के लिए क्या कोई विशेष प्रयास किए गए है

4.3.3 भारत में वर्ग राजनीति का स्वरूप

जाति की भांति भारतीय समाज में भिन्न–भिन्न वर्ग पाये जाते है सारे भारतीय राजनीति को प्रभावित करने की कोशिश करते है।

अगड़े वर्ग (Higher Classes) उच्च वर्ग की संज्ञा दी जाती है। इसमें ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य, नाडार और व्यायस्थ वर्गो को शामिल किया जाता है। इन्हें सवर्ण वर्ग के रूप में जाना जाता है। सामन्तों, जागीरदारों, पूंजीपतियों, उद्योगपतियों तथा बड़े किसानों, व्यापारियों और धार्मिक महन्तों को इस वर्ग में रखा जाता है। इन वर्गो का अल्पसंख्या में होने के बावजूद देश की राजनीति, व्यवसाय, प्रशासन तथा देश के संसाधनों पर प्रभुत्व रहा है। राजनीतिक दलों द्वारा भी इन्हीं वर्गो के हितों की पूर्ति की दिशा में ही कार्य किया जाता रहा है। जब पिछड़े और निम्न वर्गो ने इनके प्रमुख को

चुनौती देने अथवा इनके स्वार्थो पर चोट करने का प्रयत्न किया तो इस 'अगड़े वर्ग' ने उन्हें कुचलने हेतु उन पर अत्याचारों का कहर बरसाया है।

अंग्रेजी शासन के दौरान अंग्रेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप भारत में मध्य वर्ग (Middle Class) का उदय हुआ। इस वर्ग की समान भाषा तथा समान विचार थे। इसमें अध्यापक, इंजीनियर, वकील तथा डॉक्टर प्रमुख थे। इसी वर्ग ने राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़चढ़ कर भूमिका अदा की। वर्तमान राजनीति में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

हमारे देश की जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग अनुसूचित जातियों, जन –जातियों, पिछड़े वर्गों (Backward Classes) का है। इन्हें सामान्यतः पिछड़े वर्ग की संज्ञा दी जाती हैं। यह वर्ग सदियों से अगड़े या उच्च वर्ग के अत्याचारों, उत्पीड़न और शोषण की प्रताड़ना का शिकार होने के कारण 'पिछड़ा' रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात यही कहानी कमोवेश रूप में जारी है आये दिन उच्च या सवर्ण वर्गो के अत्याचारों की घटनाओं की गूंज संसद में, राज्य विधान सभाओं और समाचार पत्रों में सुनाई पड़ती है। पिछड़े वर्ग को आर्थिक विपन्नता, सामाजिक अन्याय और राजनीतिक पिछड़ेपन के साथ ही गरीबी बेरोजगारी, भूखमरी, दरिद्रता, आर्थिक विपन्नता तथा आर्थिक अभावों का सामना भी करना पड़ रहा है। यह वर्ग सामाजिक अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न तथा सामाजिक दृष्टि से हीनता की मनोदशा से ग्रसित है।

भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में इस वर्ग के उत्थान के लिए प्रावधान निश्चित किये गए हैं। इससे देश में सामाजिक और आर्थिक न्याय की स्थापना की दिशा में आधार–भूमि तय हुई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पिछड़े वर्गो के उत्थान के लिए अनेक कदम उठाए गए हैं। देश में जागीरदारी और जमींदारी प्रथा का उन्नमूलन किया गया है। राज्यों द्वारा भूमि सुधार कानूनों को लागू करके खेतिहर श्रमिकों को उनके आर्थिक उत्थान और कल्याण के लिए भी विभिन्न प्रकार के आरक्षणों के माध्यम से इन वर्गो को सरकारी सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व और पदोन्नति व्यवस्था लागू करने के प्रयास किये गये हैं। देश की राजनीति में इन वर्गो का समुचित प्रतिनिधित्व हो, इसके लिए पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण की व्यवस्था की गई हैं।

इन वर्गो पर अत्याचारों को रोकने की दिशा में सार्थक कदम उठाये गए है। जिससे इन वर्गो की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है और व्यवस्थापिका सभाओं और प्रशासन में इन वर्गो का प्रतिनिधित्व बढ़ा है। राजनीतिक जागरूकता में अभिवृद्धि हुई है। कतिपय वर्षो में प्रभावशाली राजनीतिक नेतृत्व का अभ्युदय हुआ है। डॉ० भीमराव अम्बेडकर, बाबू जगजीवनराम, चौधरी चरण सिंह, कर्पूरी ठाकुर जैसे नेताओं ने इन वर्गो का संगठित करके एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति बना दी है। वर्तमान में काशीराम, मुलायम सिंह यादव, लालू प्रसाद यादव, रामविलास पासवान, शरद यादव, सुश्री मायावती इन वर्ग के प्रमुख नेता है। विश्वनाथ प्रताप सिंह भी इस वर्ग के हितों के प्रवक्ता हैं इन नेताओं ने पिछड़े वर्गो को संगठित करने में उल्लेखनीय योगदान दिया है। इससे इन वर्गो में नया आत्म–विश्वास और गौरव की भावना का विकास हुआ है। इस वर्ग के नेतृत्व ने अपनी और सभी का ध्यान आकर्षित किया है। सभी राजनीतिक दल पिछड़े वर्गो में अपना जनाधार सशक्त करने के लिए इन वर्गो को अपने पक्ष में करने के लिए प्रयत्नशील है। राष्ट्रीय राजनीति दलों में डॉ० भीम राव अम्बेडकर को राष्ट्रीय नेता के रूप में सम्मान प्रदान करने और उनके विचारों का प्रचार करने की होड़ लगी हुई है।

4.3.4 निष्कर्ष

संक्षेप में, भारत के गांवों एवं शहरों में अलग वर्ग पाए जाते हैं। जहाँ गांवों में वर्गो का सम्बन्ध भू–स्वामित्व, कृषि एवं जाति से जुड़ा हुआ है। वहीं शहरों में व्यापार एवं औद्योगिकीकरण से। इस सम्बन्ध में माइकल यंग ने लिखा है कि ''भूमि ने जाति को एवं मशीन ने वर्गो को जन्म दिया है।'' अन्त में ये कहा जा सकता है कि विशेष रूप से दो वर्गो अगड़े पिछड़े वर्गो के आपसी समन्वय, सहयोग और सद्भावना पर देश की लोकतान्त्रिक व्यवस्था का भविष्य सुरक्षित रह सकता है।

4.3.5 मुख्य शब्दावली

1. उच्च वर्ग या अगड़ा वर्ग : बड़े–बड़े उद्योगों के मालिक पूंजीपति वर्ग और उच्च अधिकारी होते है।

2. पिछड़ा वर्ग या श्रमिक वर्ग : इनकी स्थिति निम्न स्तर की होती है। इनमें मजदूर, नौकर आदि शामिल होते है। इनकी आर्थिक स्थिति खराब होती है।
3. मध्यम वर्ग : इनकी आर्थिक स्थिति सामान्य होती है, इस वर्ग में छोटे व्यापारी, किसान, शिक्षक आदि आते है।

4.3.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत में वर्ग व्यवस्था पर निबन्ध लिखे।
2. भारत में वर्ग विभाजन के आधार क्या है और ये किस प्रकार राजनीति को प्रभावित करते है।
3. भारत में सामाजिक वर्गो की संरचना किस प्रकार की है। गांवों व शहरों की व्यवस्था में क्या भेद है ? वर्णन करें।

4.3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976

- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977

- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.4 महिलाओं की स्थिति और विकास (Women's Status and Development)

4.4.1 परिचय

शताब्दियों से भारत में ही नहीं बल्कि सारे संसार में पुरुषों की तुलना में महिलाओं को दूसरे स्थान पर माना जाता रहा है। मानव के पूरे इतिहास में पुरूषों को महिलाओं की तुलना में अधिक शक्तियाँ प्राप्त रही है। अभी तक यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि ऐसा क्यों है ? लेकिन इसका परिणाम यह हुआ है कि महिलाओं और उनके कार्यो को सम्मान नहीं दिया गया। यद्यपि महिला और पुरूष के बीच अन्तर जैविक प्रजनन के आधार पर किया जाता है लेकिन हजारों वर्षो से विभिन्न साम्राज्यों द्वारा इस अन्तर का प्रयोग सुविधा के रूप में किया जाता रहा है।

विज्ञान के क्षेत्र में हुए विकास, सुधारवादी आन्दोलनों और दार्शनिकों तथा विचारकों द्वारा प्रस्तुत समानता और स्वतन्त्रता जैसी धारणाओं के फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति, उसकी भूमिका और समाज में उसकी स्थिति आदि पर प्रश्न किए जाने लगे हैं। विशेष रूप से 20वीं शताब्दी में महिलाओं और समाज के दलित वर्गों ने समानता के लिए संघर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय रूप देकर लिंग भेद से सम्बन्धित अन्याय के खिलाफ आवाज उठाई। ये मुद्दे भारत में पहले राष्ट्रीय आन्दोलन के एक भाग के रूप में और आजादी के बाद विकास के रूप में आए।

4.4.2 उद्देश्य

- भारत में महिलाओं की स्थिति कैसी है
- संविधान द्वारा महिलाओं को क्या अधिकार दिए गए है
- महिलाओं के उत्थान के लिए सरकारों द्वारा उठाए गए कदम
- क्या महिलाओं की स्थिति वर्तमान में सबल हुई है
- महिलाओं की स्थिति को कैसे सुदृढ़ किया जा सकता है

4.4.3 भारत में महिलाओं की स्थिति (Status of Women in India)

भारत में प्राचीन काल में अर्थात् वैदिक युग (ईसा से 1000 वर्ष पूर्व) में महिलाओं और पुरुषों के बीच का सम्बन्ध समानता पर आधारित था। लिंग सम्बन्धी

मापदण्ड उदार थे। यद्यपि विवाह का महत्व था लेकिन यह अनिवार्य नहीं था। पत्नी को हर हाल में पति के प्रति वफादार होने का बन्धन नहीं था। उसे पुरुषों की तरह सभी धार्मिक कार्यो और चढ़ावा चढ़ाने में स्वतन्त्र रूप से भाग लेने और सभी संस्कारों में शामिल होने का अधिकार था। रोजगार में लगी विवाहित महिलाएं अपनी सम्पति और जायदाद को अपने अधिकार में रख सकती थी। अविवाहित महिलाएं पैतृक सम्पति में हिस्सा प्राप्त कर सकती थी।

ईसा पूर्व 100 वर्ष के बाद आर्यो के संघटित होने के समय विशेष रूप से उत्तरी भारत में हिन्दू समाज में अनेक प्रचण्ड परिवर्तन हुए। जिसके फलस्वरूप महिलाओं की स्वतन्त्रता में कमी आई। धीरे–धीरे सभी आर्य और गैर–आर्य महिलाएँ वैदिक और धार्मिक अध्ययन के लिए अयोग्य घोषित कर दी गई। मनु संहिता तथा उपनिषद और शंकराचार्य इत्यादि ने भारतीय समाज में लैंगिक भेदभाव शुरू किया। 900 ई० में भारत पर मुसलमानों की विजय के साथ पर्दा प्रथा शुरू हुई। जिसने महिलाओं को घर की चारदीवारी तक ही सीमित कर दिया। मुस्लिम शासन के दौरान महिलाओं में साक्षरता की दर में तेजी से कमी आई विधवा विवाह पर धार्मिक प्रतिबन्ध के कारण समाज में सती प्रथा का प्रचलन शुरू हुआ।

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान अंग्रेजी शिक्षा के संपर्क में आने के बाद और कुछ मामलों में ब्रिटिश शासन के प्रति प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भारत में अनेक सुधारवादी आन्दोलनों का जन्म हुआ। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज और कई अन्य आन्दोलनों ने महिलाओं के साथ किए जा रहे अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाई। राजाराम मोहनराय ने बाल–विवाह और सती प्रथा को समाप्त करने के लिए आन्दोलन चलाया और महिलाओं के उद्धार के लिए अनेक काम किए। सरकार ने इसके सम्बन्ध में सबसे पहले 19वीं शताब्दी में कानून बनाए जिससे सती प्रथा का उन्मूलन (1829), विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856), कानूनी विवाह अधिनियम (1872) शामिल है। उन्नीसवीं शताब्दी की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है – बालिका शिक्षा का प्रयास।

राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय महिलाओं की छुपी व्यापक प्रतिभा भी सामने आई। गांधी जी ने महिलाओं से पर्दा हटाने और राजनीति में भाग लेने का आह्वान किया। सन् 1917 में महिलाओं का एक प्रतिनिधि मण्डल भारत सरकार के सचिव से मिला और उससे महिलाओं को मताधिकार प्रदान करने की मांग की। सन् 1927 में महिलाओं के कल्याण और विकास के लिए एक सम्मेलन आयोजित किया गया।

सामाजिक सुधार और राष्ट्रवादी आन्दोलनों के फलस्वरूप यद्यपि महिलाओं की दुर्दशा और उनके कल्याण के बारे में जागृति उत्पन्न हुई लेकिन महिलाओं के प्रति लोगों के व्यवहार में विशेष रूप से गांवों में, कोई खास परिवर्तन नहीं आया। कुछ महत्वपूर्ण कानून बनाये जाने के बाद भी सम्पति, विरासत आदि के कानून महिलाओं के विरूद्ध ही बने रहे। कुल मिलाकर स्वतन्त्रता के समय महिलाएं सामाजिक आर्थिक प्रक्रिया की मुख्यधारा से बाहर ही रही। समाज में उनकी स्थिति संतोषजनक नहीं थी।

स्वतन्त्र भारत में महिलाओं के लिए कानूनी समानता

(Independent India and Legal Equality for Women)

भारत के संविधान निर्माताओं ने देश की सामाजिक संरचना में महिलाओं को उचित स्थान दिलाने का प्रयास किया। संविधान की प्रस्तावना में संविधान के जनकों ने सत्यनिष्ठा से दो विशेष उद्देश्यों पर बल दिया जिनका महिलाओं की स्थिति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था।

(क) न्याय ..... सभी के लिए सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक।

(ख) समानता ..... सभी के लिए प्रस्थिति और अवसर की।

मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धान्तों से सम्बन्धित संविधान के भाग III और IV में इन घोषणाओं का ठोस रूप से वर्णन किया गया है। मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित आधार के अनुच्छेद 14 में कहा गया है कि राज्य किसी भी व्यक्ति को कानूनी समानता और कानून के समान संरक्षण से इन्कार नहीं करेगा। अनुच्छेद 15 में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि किसी भी व्यक्ति से जाति, धर्म और लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 16 में सार्वजनिक नियुक्तियों से सम्बन्धित मामलों में अवसर की समानता की व्यवस्था की गई है। इसके साथ–साथ

संविधान ने राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष उपलब्ध बनाने की शक्तियाँ भी प्रदान की है। संविधान में इस उपबन्ध को शामिल किए जाने से राज्य को महिलाओं के कल्याण के लिए कानून बनाना आसान हो गया है।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त राज्य को समाज के सामाजिक–आर्थिक कल्याण के लिए काम करने का निर्देश देने के साथ–साथ महिलाओं से सम्बन्धित चार विशिष्ट निर्देश भी देते है –

1. पुरूष तथा महिला दोनों को जीने के लिए पर्याप्त साधन प्राप्त करने का समान अधिकार है। (अनुच्छेद 39क)
2. महिलाओं और पुरूषों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन (अनुच्छेद 39ग, घ)
3. कामगार महिला और पुरूषों के स्वास्थ्य, शक्ति और बच्चों की अल्पव्यस्कता का शोषण नहीं किया जाएगा और आर्थिक आवश्यकता के कारण किसी भी नागरिक को ऐसा कार्य करने के लिए विवश नहीं किया जाएगा जो उसकी उम्र और शक्ति के अनुकूल न हो (अनुच्छेद 39 ड़)
4. कार्य करने के लिए उचित और मानवीय स्थितियां बनाने तथा प्रसूति–सुविधा उपलब्ध कराने के लिए राज्य आवश्यक व्यवस्था करेगा।

राज्य के इन नकारात्मक और सकारात्मक उत्तरदायित्वों के अतिरिक्त संविधान ने सभी नागरिकों के लिए (1976 के 42 में संशोधन के बाद) महिलाओं की प्रतिष्ठा का अनादर करने वाली मान्यताओं को समाप्त करने हेतु मौलिक कर्त्तव्य की व्यवस्था भी की है। (अनुच्छेद 51क) भारत के संविधान ने सार्वभौमिक मताधिकार की व्यवस्था की है। इस प्रकार महिलाओं को समान रूप से मत देने तथा चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त है।

संविधान के माध्यम से समानता को औपचारिक संरचना उपलब्ध कराने के साथ –साथ सरकार परिवर्तन और विकास लाने के लिए कानून को भी एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयोग करती रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही विशेष रूप से जवाहरलाल नेहरू ने, महिलाओं के विरूद्ध प्रचलित भेदभाव समाप्त करने के लिए

कानून बनाने की बात सोची। इस प्रकार विशेष विवाह अधिनियम 1954, हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, हिन्दू अल्पआयु और संरक्षक अधिनियम 1956, हिन्दू दत्तक ग्रहण और अनुरक्षण अधिनियम, 1956, महिलाओं में अनैतिक व्यापार की समाप्ति अधिनियम, 1956 और दहेज निषेध अधिनियम 1961 जैसे अधिनियम बनाए गए। भारत में महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित समिति (1975) द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने और महिला आन्दोलन तथा संगठनों के उदय से 1970 और 1980 के दशक में कानून के क्षेत्र में और भी महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं।

इस दिशा में जो कानूनी व्यवस्था की गई उनमें चिकित्सा आधारित गर्भपात अधिनियम 1971, समान वेतन अधिनियम 1976, बाल विवाह प्रतिबंध (संशोधन) अधिनियम 1978 और अपराध कानून (संशोधन) अधिनियम 1983, परिवार न्यायालय अधिनियम 1984, अपराध कानून (द्वितीय संशोधन) अधिनियम 1985, दहेज निषेध (संशोधन) अधिनियम 1984 आदि प्रमुख हैं। इन अधिनियमों द्वारा लिंग के आधार पर रोजगार सम्बन्धी मामलों में महिलाओं के साथ भेदभाव को समाप्त कर दिया गया। बालिकाओं की शादी करने की उम्र को बढ़ाकर 18 वर्ष कर दिया गया, बलात्कार के मामले में साक्ष्य प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व अपराधी पर डाल दिया गया है और बलात्कार की सजा को कठोर कर दिया गया, पति अथवा सुसराल वालों द्वारा पत्नी के साथ निर्दयतापूर्वक व्यवहार को दंडनीय घोषित किया गया।

विधायिका द्वारा कानून बनाने के अतिरिक्त न्यायपालिका भी कुछ प्रचलित कानूनों की व्याख्या महिलाओं के पक्ष में करती रही है। नवम्बर 1995 में उच्चतम न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक फैसले में विधवा अथवा मृत व्यक्ति की पुत्री को उसकी सम्पति में समान अधिकार दिया। इससे पहले दो अन्य मामलों में उच्चतम न्यायालय ने तलाकशुदा हिन्दू महिलाओं को उनके भरण–पोषण के लिए दी गई सम्पति को बेचने, आय अर्जित करने या अपनी इच्छानुसार अन्य किसी प्रकार से प्रयोग करने की इजाजत दी और विधवा को भरण पोषण के रूप में दिए गए आवास पर पूर्ण मालिकाना अधिकार दिया। शाहबानों और अन्य ऐसे मामलों में न्यायपालिका द्वारा दिए

गए निर्णय इसलिए महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं क्योंकि इससे व्यक्तिगत कानून (Personal Law) में सुधार करने की न्यायपालिका की सक्रियता का पता लगता है।

विकास और कल्याण कार्यक्रम (Development and Walfare Programmes)

महिलाओं का विकास करने और उन्हें न्याय दिलाने के लिए किए गए प्रयास केवल कानून बनाने और कानून की उनके पक्ष में व्याख्या करने तक ही सीमित नहीं है। इस बात को भी मान्यता दी गई है और महसूस किया गया है कि महिलाओं की शिक्षा, दक्षता–विकास, प्रबन्ध, जैसे निवेशों तक पहुंच भी होनी चाहिए। इसके लिए सरकार द्वारा महिला विकास को पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल करने का प्रयास किया गया। महिलाओं के विकास से सम्बन्धित दृष्टिकोण को प्रथम पंचवर्षीय योजना में समुदाय विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत शामिल किया गया। तृतीय और चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में महिला शिक्षा कल्याण को उच्च प्राथमिकता दी गई। पाँचवी पंचवर्षीय योजना में दृष्टिकोण को महिला कल्याण से हटाकर महिला–विकास पर केन्द्रित किया गया। छठी पंचवर्षीय योजना में महिला स्वास्थ्य, शिक्षा ओर रोजगार पर बल दिया गया। सन् 1985 में महिलाओं को विशेष पहचान प्रदान करने और महिला और बाल विकास के लिए एक अलग विभाग स्थगित किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के लिए रोजगार के नए अवसर उपलब्ध कराने पर बल दिया और उन्हें देश के विकास के लिए निर्णायक संसाधन माना गया। आठवीं योजना में इस दृष्टिकोण को महिलाओं को शक्ति प्रदान कराने पर केन्द्रित किया गया।

सन् 1953 में भारत सरकार ने महिलाओं, बच्चों और सुविधाहीन वर्गो के कल्याण और विकास सेवाओं को बढ़ाने के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम चलाने हेतु केन्द्रित समाज बोर्ड स्थापित किया। इस बोर्ड के समान ही राज्यों में भी बोर्ड स्थापित किए गए है। सरकार के इस कार्यक्रम ने जहां एक ओर महिला संगठनों की संख्या में वृद्धि को प्रोत्साहित किया है वही दूसरी ओर पहले से सक्रिय महिला कार्यकर्ताओं को अधिक कुशलता से कार्य के अवसर प्रदान किए है। इसके फलस्वरूप बड़ी संख्या में महिला मंडलों का उद्‌भव हुआ है। कई राज्य सरकारों ने बालिकाओं के लिए माध्यमिक स्तर और कुछ मामलों में विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा निःशुल्क देने की व्यवस्था की है।

परिवार नियोजन और कल्याण कार्यक्रम भी महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से बनाए गए है।

महिलाओं को चुनावों में हिस्सा लेने और चुनाव लड़ने की स्वतन्त्रता और समानता का अधिकार दिए जाने के बावजूद निर्वाचित और निर्णय लेने वाले निकायों में महिलाओं का प्रतिशत बहुत कम ही नहीं रहा, बल्कि कुछ मामलों में यह शून्य भी रहा है। इस उद्देश्य के लिए स्थानीय स्वःशासी निकायों में महिलाओं के लिए सीट आरक्षित करने के लिए सन् 1988 में पहल की गई। सन् 1992 में संविधान 73वां तथा 74वां संशोधन पारित किया गया। जिसमें पंचायती राज निकायों और नगरपालिकाओं में विभिन्न स्तरों पर महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने की व्यवस्था की गई। यही व्यवस्था संसद और राज्य विधान सभाओं में भी लागू करने का प्रस्ताव संसद पेश किया गया जो पास नहीं हो पाया।

भारत, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी महिला विकास कार्यक्रमों में भाग लेती रही है और इन मंचों पर भारत ने अनेक प्रतिज्ञा पत्रों पर हस्ताक्षर भी दिए है। यहां पर यह उल्लेख करना सही होगा कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इस दिशा में विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर लगातार प्रयास किए जाते रहे है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रयासों का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

सन् 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने घोषणा पत्र में अनुच्छेद 8 में महिलाओं के प्रति भेदभाव न करने की प्रतीज्ञा की जिसमें कहा गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी निकायों में ''किसी भी प्रकार से समानता की परिस्थितियों में'' भेदभाव नहीं किया जाएगा। सन् 1946 में महिलाओं की परिस्थिति के सम्बन्ध में एक आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने अनेक घोषणाएं की, समागम आयोजित किए, विभिन्न मुद्दों की निगरानी की तथा महिला मुद्दों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सम्मेलनों के सचिवालय के रूप में काम किया। सन् 1967 में महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव बरतने वाले सभी साधनों को समाप्त करने के लिए घोषणा को स्वीकार किया गया। इसने वास्तविक जीवन में यथार्थ रूप में तथा कानूनी रूप से महिलाओं को समानता प्रदान कराने की अपील की।

सन् 1975 में संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा ने महिला मुद्दों पर प्रकाश डालने के लिए वर्ष 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा की। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के दौरान महिलाओं के सम्बन्ध में मैक्सिकों में आयोजित प्रथम सम्मेलन में विश्व स्तर पर कार्यवाही योजना को अपनाया गया और यह घोषणा भी की गयी कि प्रथम दशक में महिलाओं को समानता, विकास और शांति प्रदान की जाएगी। आम सभा ने 1976 में महिलाओं के लिए स्वैच्छिक निधि की स्थापना की। सन् 1985 में इसमें विस्तार करके इसे संयुक्त राष्ट्र महिला विकास निधि में परिवर्तित किया गया। महिलाओं के सम्बन्ध में दूसरा सम्मेलन सन् 1980 में कोपेनहेग में, तीसरा सन् 1985 में नौरोबी में आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में सन् 2000 तक महिला विकास के सम्बन्ध में रणनीति तैयार की गई। पर्यावरण और विकास विषय पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन् 1992 के सम्मेलन में स्वीकार किया गया कि महिलाएं पर्यावरण विकास और सामाजिक परिवर्तन से केवल अधिक प्रभावित ही नहीं है बल्कि वह इस क्षेत्र में सुधार के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सहयोग दे सकती हैं। सन् 1993 में विआना में मानव अधिकार पर आयोजित विश्व सम्मेलन में महिलाओं पर अत्याचार और अन्य महिला मानव अधिकार मुद्दों को संयुक्त राष्ट्र के सभी मानव अधिकारों से सम्बन्धित मुद्दों से ऊपर रखा गया।

सन् 1994 में जनसंख्या और विकास विषय पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पहली बार लैंगिक समानता और शिक्षा के माध्यम से महिलाओं को शक्तिशाली बनाने पर विचार किया गया तथा स्वस्थ और पोषण को परिवार नियोजन जैसे परम्परागत सम्बन्धी मुद्दों से जोड़ा गया। सन् 1995 में बीजिंग में महिलाओं से सम्बन्धित विश्व सम्मेलन में 12 चिन्तनाजनक विषयों की समीक्षा की गई और उन पर वार्तालाप किया गया है और कार्यवाही के लिए एक नया मंच बनाया गया। भारत इन सभी मुद्दों में समान रूप से भागीदार है।

4.4.4 निष्कर्ष

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए कई परिवर्तन किए गए है। विशेष रूप से महिलाओं

को पुरूषों से समानता प्रदान कराने के प्रयास किए गए है। वर्तमान समय में भारत में महिलाओं को कानून तथा संविधान द्वारा पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त है। महिलाओं को अपने भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने और प्रशिक्षण लेने की स्वतंत्रता प्राप्त है। वे किसी भी प्रकार की विशेषज्ञता और उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकती है। लेकिन जब हम समाज की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करते हैं, तो हम पाते है कि शहरी शिक्षित महिलाओं का एक छोटा सा वर्ग ही इन कानूनों और विकासीय कार्यक्रमों से लाभन्वित हुआ है। समाज में लिंग–भेद न केवल जारी है। अपितु कुछ स्थानों और अवसरों पर महिलाओं के प्रति हिंसा और अपराध की प्रवृति में भंयकर वृद्धि हुई है।

4.4.5 मुख्य शब्दावली

- औपनिवेशिक काल : जब भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था।
- मानवीय स्थितियां : एक मनुष्य होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति की वो मूलभूत आवश्यकताएं जो उसके जीवन और विकास के लिए आवश्यक है।

4.4.6 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. महिला सशक्तिकरण पर निबन्ध लिखें।
2. भारत में महिलाओं की स्थिति पर नोट लिखे।
3. भारत में महिला सशक्तिकरण के लिए किस तरह के प्रयास किए गए है। वर्णन कीजिए।
4. भारत में महिलाओं की राजनीति में क्या भूमिका है ? इसे किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है।
5. भारत में महिलाओं की स्थिति कैसी है। इसमें कैसे सुधार किया जा सकता है।

4.4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994

- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998

- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.5 दलित (Dalits)

4.5.1 परिचय

विश्व के प्रत्येक देश में ऐसे असंख्य लोग रहते है जो सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक आदि दृष्टि से समाज के अन्य वर्गो से पिछड़े हुए होते हैं। ये लोग समाज के अन्य सशक्त वर्गों के लोगों द्वारा कुचले हुए या शोषित होते हैं। ये लोग किसी जाति धर्म, वर्ग या रंग के नहीं होते बल्कि सामूहिक रूप से समाज के उपेक्षित और पिछड़े हुए व्यक्ति होते हैं। इन्हीं लोगों को भारत में दलित कहा जाता हैं। बी०आर० अम्बेडकर ने इन्हें 'टूटे हुए व्यक्ति' (Broken Men) कहा हैं। महात्मा गांधी ने इन्हें हरिजन (Harijans) कहा है। भारत के संविधान में इन्हें अनुसूचित जातियों के रूप में मान्यता दी हैं। दलित शब्द हिब्रू (Hobriu) भाषा के डाल (Dall) के सदृश है। जिसका अर्थ कुचला हुआ या दबा हुआ। दलित शब्द का भावार्थ यह निकलता है कि समाज का वह वर्ग जिसको समाज के उच्च वर्गो द्वारा शोषित किया गया हो, जिसके प्रमुख अधिकार एवं स्वतंत्रताएं छीन ली गई हो, जिसको शूद्र या नीच समझा जाता हो या जिसको उपेक्षित कर दिया गया हो। स्पष्ट है कि दलित समाज का वह वर्ग है जिसको उच्च वर्गो द्वारा उपेक्षित, शोषित या कुचला गया हो। इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप से केवल जाति, जन्म या रंग के आधार पर किसी व्यक्ति को दलित नहीं माना जा सकता। यदि कोई व्यक्ति तथा कथित निम्न जाति से सम्बन्ध रखता है या जन्म लेता है, परन्तु उसके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया जाता तो उसे दलित नहीं कहा जा सकता।

दलित कोई जाति नहीं है, दलित क्रान्ति और परिवर्तन का प्रतीक है। दलित मानवतावाद में विश्वास करता है। वह ईश्वर के अस्तित्व, पुर्नजन्म, आत्मा, पवित्र पुस्तकों आदि को नहीं मानता क्योंकि इन्होंने भेदभाव, भाग्यवाद और परलोकवाद सिखाया है और उसे दास बनाया है। वह अपने देश में शोषित व्यक्ति का प्रतिनिधित्व

करता है। परन्तु भारतीय समाज में दलित जातीयता का पर्याय बन गया हैं। यहाँ दलित शब्द साफ तौर पर पिछड़ी हुई व निम्न जातियों की और संकेत करता है। जबकि वस्तुस्थिति यह हैं कि दलित वर्ग में किसी जाति या वर्ग विशेष के शामिल नहीं किया जाता बल्कि सामूहिक रूप से समाज की पिछड़ी हुई जातियों के लोगों को शामिल किया जाता हैं। इसमें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन–जातियों, पिछड़ी जातियों व अनुसूचित कबीलों के व्यक्ति शामिल किए जाते हैं।

स्वतन्त्रता से पहले भारतीय राजनीति में दलितों का प्रयोग इतना व्यापक तौर पर नहीं किया जाता था क्योंकि सभी राजनीतिक दलों व नेताओं का एक मात्र उद्देश्य ब्रिटिश दासता में मुक्ति था। प्रत्येक दल व नेता अपने आपको दलितों का सच्चा मसीहा साबित करने का प्रयास कर रहा है। राजनीतिक दलों और नेताओं द्वारा दलितों के हितों की अनदेखी करने के आरोप–प्रत्यारोप लगाए जाते हैं। भारतीय राजनीति में दलितों का एक महत्वपूर्ण वोट बैंक समझा जाता हैं। इस वोट बैंक पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए अनेक दल और नेता अनेक दांव–पेच अपनाते रहते हैं। दलितों के लिए अधिक आरक्षण की लगातार मांग करना भी दलित राजनीति का ही एक पहलू हैं दलितों के राजनीतिक प्रयोग के कारण जहाँ एक और दलितों में राजनीतिक चेतना आई हैं वही इससे नवीन नेता भी उभरकर सामने आए हैं। इसके परिणामस्वरूप दलितों के नए अभिजन पनपे है। स्पष्ट तौर पर दलित राजनीति ने भारतीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक, धार्मिक सांस्कृतिक व शैक्षिणक ढांचे को प्रत्येक पक्ष से प्रभावित किया है।

4.5.2 उद्देश्य

- दलित कौन है या किसे दलित कहा जा सकता है
- दलितों की भारत में क्या दशा है
- दलितों को ऊपर उठाने के लिए क्या–क्या कदम उठाए गए है
- भारतीय राजनीति को दलित मुद्दे कैसे प्रभावित करते है

4.5.3 दलित मुद्दे एवं आरक्षण का प्रावधान

कुछ विद्वान दलित राजनीति की जड़े संविधान में दिए गए आरक्षण के प्रावधानों में निहित मानते हैं। शुरू से ही आरक्षण की व्यवस्था विवाद का विषय रही है। यद्यपि दलितों, पिछड़ों आदि के आरक्षण के लिए एकमात्र उद्देश्य यह था कि इन वर्गो का समुचित विकास किया जाए ताकि वे वर्ग अन्य उच्च वर्गो के समान ही सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकें। आजादी के बाद भी आरक्षण की व्यवस्था के आशतीत परिणाम नहीं निकले हैं। आरक्षण की व्यवस्था एक चुनौती के रूप में हमारे सामने आई है जिसने समाज के बुद्धिजीवियों तथा सभी विचारशील व्यक्तियों को विभाजित कर दिया है। ऐसा नहीं है कि आरक्षण की व्यवस्था निष्प्रभावी रही हो। वास्तविकता तो यह है कि आरक्षण की व्यवस्था ने भारतीय समाज को राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक इत्यादि प्रत्येक दृष्टि से प्रभावित किया है। आरक्षण की व्यवस्था ने भारतीय समाज पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रभाव डाले हैं।

सकारात्मक प्रभाव : आरक्षण व्यवस्था के सकारात्मक प्रभाव निम्नलिखित हैं –

सामाजिक स्तर में सुधार

आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप कमजोर वर्ग के व्यक्ति सार्वजनिक सेवाओं में उच्चतम सेवाओं में उच्चतम पदों पर भी पहुंचने में सफल हो पाए हैं। आज विभिन्न उच्च प्रशासनिक सेवाओं में कमजोर वर्गो के अनेक व्यक्ति कार्यरत हैं। इससे इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है। इन वर्गो के व्यक्ति भी अब उच्च वर्गों की ही तरह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक इत्यादि सुविधाओं का लाभ उठाने में सक्षम हो सके हैं। इन कमजोर वर्गो के लोगों के साथ अछूतों जैसा अमानवीय व्यवहार करने वाले उच्च वर्ग के लोग भी अब इनके साथ समानता का व्यवहार करने लगे है। इस प्रकार आरक्षण की राजनीति ने कमजोर वर्गो के सामाजिक स्तर में सुधार किया है।

राजनीतिक चेतना में वृद्धि

आरक्षण के परिणामस्वरूप कमजोर वर्गो को अनेक सुविधाएं प्राप्त हो सकी हैं। जहां इनका आर्थिक एवं सामाजिक विकास हुआ है वहीं इनका शैक्षणिक विकास भी हुआ हो इससे इन वर्गो में राजनीतिक चेतना आई है। अब राजनीति को प्रभावित करने

में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे हैं। निःसन्देह आरक्षण के कारण ही दलितों की राजनीति को बढ़ावा मिला है।

राजनीतिक भागीदारी बढ़ी है

पहले इन वर्गो को राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय तौर पर भागीदारी निभाने से रोका जाता था। आरक्षण की व्यवस्था के परिणामस्वरूप इन कमजोर वर्गो को भी राजनीति में अपनी सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर मिला है। आजकल आरक्षण की व्यवस्था लोकसभा तथा राज्य विधान सभाओं के लिए की गई है। यह आरक्षण की नीति का ही प्रभाव है कि आज अनेक राजनीतिक नेता इन्हीं कमजोर वर्गो से आ रहे हैं। इस वर्ग में राजनीतिक चेतना आई हे जिससे यह वर्ग राजनीतिक में अपनी सक्रिय भागीदारी निभाने लगा है।

कमजोर वर्गो में शिक्षा के प्रति जागृति आई है

आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप ही आज कमजोर वर्ग शिक्षा के प्रति आकर्षित हुआ है। जिस कमजोर वर्ग को शताब्दियों से शिक्षा से वंचित किया जाता रहा था वही वर्ग आज उच्च शिक्षा प्राप्त करके अन्यों को ज्ञान दे रहा है। कमजोर वर्गो से आज अनेक डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, अध्यापक आदि निकल रहे है। यह सब आरक्षण की व्यवस्था का ही सकारात्मक प्रभाव है।

कमजोर वर्ग समाज की मुख्य धारा से जुड़ पाए हैं

आरक्षण की राजनीति का एक सकारात्मक प्रभाव यह भी पड़ा है कि इससे समाज के वे कमजोर वर्ग जो एक लम्बे समय तक शोषित, दलित, दुर्व्यवहार ग्रस्त और उपेक्षा के शिकार रहे और जो समाज की मुख्य धारा से कटे रहे, को समाज का पुनः अभिन्न अंग समझा जाने लगा और उन्हें पुनः सामाजिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा है। इस बात में पर्याप्त सच्चाई है कि कमजोर वर्गो के उच्च पद प्राप्त व्यक्तियों का काफी सम्मान किया जाता है। यह सब आरक्षण की राजनीति का ही प्रभाव है।

कमजोर वर्गो का आर्थिक विकास होना

शुरू में आर्थिक विकास के सभी साधनों पर उच्च वर्ग का ही एकाधिकार था। कमजोर एवं निम्न वर्ग के लोग उद्योग एवं व्यवसाय स्थापित नहीं कर सकते थे जिसके परिणामस्वरूप ये वर्ग आर्थिक रूप से अत्यन्त दयनीय बन गए थे। लेकिन आरक्षण की व्यवस्था से इन वर्गो के लिए आर्थिक विकास के अनेक अवसर खुल गए। इन वर्गो के लोग भी अब मन चाहे उद्योग–धन्धे स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकार इन वर्गो का आर्थिक विकास हुआ है।

लोक सेवाओं में पिछड़े वर्गो, अनुसूचित जातियों तथा जन–जातियों को प्रतिनिधित्व बढ़ना

समाज के पिछड़े वर्ग एक लम्बे समय तक सार्वजनिक सेवाओं से दूर रहे क्योंकि ये वर्ग शैक्षणिक दृष्टि से अत्यन्त कमजोर थे। लेकिन आरक्षण की राजनीति के माध्यम से इन वर्गो को अनेक शैक्षणिक सुविधाएं प्रदान की गई जिसके परिणामस्वरूप इन वर्गो का लोक सेवाओं में प्रतिनिधित्व बढ़ा हैं। आजकल अनेक सार्वजनिक पदों पर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों कबीलों के लोग नियुक्त हैं।

नकारात्मक प्रभाव : आरक्षण व्यवस्था के नकारात्मक प्रभाव निम्नलिखित है –

प्रशासन में जातिवाद को बढ़ावा मिलना

चूंकि आरक्षण का लाभ कुछ विशेष दलित जातियों को ही मिला है, अतः इससे जातिवाद की व्यवस्था को और भी अधिक बढ़ावा मिला है। जातिवाद प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में दाखिल हो गया है। इतना ही नहीं जातिवाद ने राजनीति का जातीयकरण किया हैं, चुनावों के समय उम्मीदवार के चयन में उसकी भूमिका विशेष महत्व रखती है। प्रायः दलित बाहुल्य वाले क्षेत्र में दलित जाति के ही किसी उम्मीदवार को चुनाव में खड़ा किया जाता है। चुनावों के बाद मन्त्रिमण्डल के गठन में भी उम्मीदवारों की जाति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रायः सभी राजनीतिक दलों के नेता अपने आपको दलित वर्ग के उच्चे हितैषी कहते हैं। इस प्रकार दलितों को प्रदान की गई सुविधाओं में राजनीति एवं प्रशासन का जातीयकरण किया है।

दलितों के अभिजन वर्ग का उदय

दलितों और पिछड़े वर्गो की राजनीति से इस वर्ग में भी नए विशिष्ट वर्ग (Elite Class) बनने लगे है। यद्यपि आरक्षण की व्यवस्था इन वर्गो के सभी लोगों के लिए की गई थी लेकिन इसका लाभ इन वर्गो के कुछ एक व्यक्ति हो उठा पाए हैं। इन थोड़े से लोगों ने ही राजनीतिक आर्थिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्र में प्रवेश किया है। इन्होंने आरक्षण से मिलने वाले लाभों व सुविधाओं को अपने तक ही सीमित कर लिया है। विशेषतौर से आरक्षण का लाभ अब वे ही व्यक्ति उठा रहे हैं जो अन्य दलितों से उच्चे हैं। यह उच्च दलित वर्ग राजनीति में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इनका रहन–सहन किसी भी तरह से अन्य उच्च वर्ग से कम नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार आरक्षण के परिणामस्वरूप दलित वर्ग में एक नया विशिष्ट वर्ग उभरा है। इस नए विशिष्ट वर्ग ने आरक्षण के सारे लाभ अपने सम्बन्धियों, श्तिेदारों, मित्रों आदि के लिए सुरक्षित रख लिए है। दलितों में आज भी एक ऐसा बड़ा वर्ग है जो आरक्षण की सुविधाओं से कोसों दूर है।

राजनीतिक दल तथा दबाव समूह जाति पर आधारित बनने लगे हैं

भारतीय राजनीति में पिछड़े वर्गो का एक लम्बे समय तक मात्र एक वोट बैंक के रूप में प्रयोग किया गया है। इन वर्गो को मात्र राजनीति में वोट डालने के लिए ही प्रयोग किया जाता रहा। लेकिन आरक्षण की व्यवस्था के परिणामस्वरूप पिछड़े वर्गो में भी चेतना आई है और इनकी राजनीतिक भागेदारी बढ़ी है। ये वर्ग अब अन्य वर्ग के प्रतिनिधियों को चुनने अथवा शासक बनने की अपेक्षा अपने प्रतिनिधि चुनते हैं। ये वर्ग अब राजनीतिक शक्ति को अपने हाथों में लेने के लिए प्रयास कर रहे हैं। अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ (All India Scheduled Castes Federation) पिछड़े वर्गो का ही एक दबाव समूह माना जाता है। बहुजन समाज पार्टी को भी पिछड़े वर्गो की पार्टी माना जाता है और इस पार्टी ने दलितों के संगठित करने का प्रयास किया है।

आरक्षण के कारण मतदान व्यवहार पर प्रभाव पड़ना

पिछड़े वर्गो की राजनीति के परिणामस्वरूप मतदान व्यवहार पर भी काफी प्रभाव पड़ा है। एक तरफ से दलितों की राजनीति मतदान व्यवहार का एक प्रमुख निर्धारक

तत्व बन गई है। दलित वर्ग अब उस राजनीतिक दल को अपना वोट देना पसन्द करते हैं। जो उनके हितों की पूर्ति अच्छी प्रकार कर सकें। दूसरी और राजनीतिक दल भी चुनाव प्रचार के दौरान पिछड़े वर्गो की भावनाओं को उत्तेजित करते हैं। पिछड़े वर्गो की राजनीति से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित कबीलों के लोगों के मतदान व्यवहार पर ही प्रभाव नहीं पड़ा है। बल्कि अन्य उच्च जातियों के लोगों का मतदान व्यवहार भी प्रभावित हुआ है।

पिछड़े वर्गो का वोट बैंक के रूप में प्रयोग

दलितों की राजनीति का प्रभाव यह पड़ा है कि इससे दलितों को वोट बैंक के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है। कांग्रेस पार्टी ने अपने लम्बे शासन में पिछड़े वर्गो को एक वोट बैंक से ज्यादा कभी कुछ नहीं समझा। कांग्रेस पार्टी ही नहीं बल्कि अन्य पार्टियां भी अपने आपको पिछड़े वर्गो का हितैषी बताती है। लेकिन ये अब पिछड़े वर्गो को वास्तव में एक वोट बैक के रूप में ही प्रयोग कर रही है। अनेक राजनीतिक पार्टियां तथा उनके नेता पिछड़े वर्गो को विभिन्न सुविधाएं उपलब्ध कराने का वचन देते हैं। लेकिन चुनावों के बाद राजनीतिक दल इन वर्गो को भूल जाते है। इस प्रकार आरक्षण की व्यवस्था अथवा दलितों की राजनीति ने पिछड़े वर्ग को एक वोट बैंक बनाया है।

आरक्षण का विरोध

यह स्पष्ट है कि आरक्षण की व्यवस्था का लाभ कुछेक पिछड़ी जातियों को ही मिला है। इस व्यवस्था के परिणामस्वरूप निम्न जातियों के लोग सभी क्षेत्रों में उच्च पदों को प्राप्त कर रहे हैं। इतना ही नहीं अनेक राजनीतिक दल पिछड़े वर्गो के लिए और भी अधिक आरक्षण की व्यवस्था करना चाहते हैं। दूसरी ओर इन वर्गो को मिलने वाली आरक्षण की सुविधाओं ने उच्च वर्गो के युवाओं में तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न की हैं जहाँ निम्न वर्गो के विद्यार्थी आरक्षण के कारण सफलता से उच्च शिक्षण संस्थाओं अथवा सरकारी सेवाओं में प्रवेश पा जाते है वहीं उच्च वर्ग के बहुत से प्रतिभाशाली युवक इससे वंचित रह जाते हैं। अतः उच्च वर्ग आरक्षण की व्यवस्था को द्वेष से रोकता है और इसे समाप्त करना चाहता है।

लोक सेवाओं के स्तर का पतन

दलित अथवा कमजोर वर्गो के लिए आरक्षण की व्यवस्था के परिणामस्वरूप ही जहां इन वर्गो के सामान्य बुद्धि वाले अभ्यार्थी (Candidate) लोक सेवा में स्थान पा जाते हैं, वहीं दूसरी और उच्च वर्गो के अनेक प्रतिभावान नवयुवक एवं नवयुवतियां इससे वंचित रह जाते हैं। अधिक संख्या में निम्न वर्गो से लोक सेवाओं में अभ्यार्थी जाने से इन सेवाओं का स्तर गिरा हैं दलित राजनीति चाहे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों कबीलों आदि को लोकसेवाओं में अधिक प्रतिनिधित्व दिलाने में सफल हुई हैं। लेकिन इससे लोक सेवाओं के स्तर में गिरावट आई हैं।

निम्न वर्गो की सरकार पर निर्भरता बढ़ना

दलित राजनीति के परिणामस्वरूप दलित वर्गो की सरकार पर निर्भरता बढ़ गई हैं। ये जातियां स्वेच्छा से अपना विकास करने की अपेक्षा सरकार से आरक्षण के माध्यम से अधिक सुविधाओं को उठाना चाहती है। निम्न जातियां आरक्षण को अपने विकास की एक सीढ़ी मानती हैं। इसके सहारे विकास करना चाहती हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में ये वर्ग सरकार पर अधिक निर्भर हो गए है।

4.5.4 निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दलित राजनीति ने आरक्षण के माध्यम से भारतीय समाज पर नकारात्मक और सकारात्मक दोनों ही प्रभाव डाले हैं। हालांकि वर्तमान में तेजी से आगे बढ़ती दलित राजनीति में ठहराव सा आ गया है, क्योंकि दलित राजनीति को आगे बढ़ाने के लिए दलितों के कल्याण के लिए ठोस कार्य किए जाने चाहिए। दलित नेताओं के नाम पर पार्क बनाने, दलित नेताओं की मूर्तियाँ स्थापित करने, पार्टी के चुनाव–चिन्हों की विशाल प्रतिमाएँ लगाने से दलितों का कल्याण नहीं हो सकता है। दलित राजनीति को आगे ले जाने के लिए दलितों के कल्याण के लिए योजनाएं बनाना आवश्यक है।

4.5.5 मुख्य शब्द

- राजनीतिक चेतना : राजनीतिक अधिकारों का ज्ञान होना।

- अभिजन वर्ग : जिस वर्ग का राजनीतिक सत्ता और आर्थिक शक्ति पर आधिपत्य होता है, उसे अभिजन वर्ग कहा जाता है।

4.5.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत में दलित राजनीति के विभिन्न कारकों की समीक्षा कीजिए।
2. दलित राजनीति पर एक लेख लिखिए।
3. भारत में दलित आन्दोलनों पर निबन्ध लिखिए।
4. भारत में दलित आन्दोलनों के जन्म के कारणों पर प्रकाश डालिए।
5. भारत में दलित राजनीति के उदय का वर्णन कीजिए।

4.5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976

- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977

- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.6 क्षेत्रीयतावाद (Regionalism)

4.6.1 परिचय

क्षेत्रीयतावाद ने भारतीय राजनैतिक व्यवस्था को बहुत अधिक प्रभावित किया है। पंजाब की समस्या क्षेत्रीयतावाद की एक बहुत ही महत्वपूर्ण समस्या बनकर उभरी थी जो राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा बन गई थी। डॉ० इकबाल नारायण का कथन है कि ''भारतीय राजनीति का एक प्रमुख निर्धारक तत्व क्षेत्रीयतावाद है जिसके कारण लोक भारतीय संघ की तुलना में उस क्षेत्र या राज्य विशेष को महत्व देते है जिसमें वे रहते हैं।''

क्षेत्रवाद से तात्पर्य है एक देश में या देश के किसी भाग में उस छोटे से क्षेत्र से है जो आर्थिक, भौगोलिक, सामाजिक आदि कारणों से अपने पृथक अस्तित्व के लिए जागरूक है। साधारण शब्दों में क्षेत्रवाद का अर्थ किसी क्षेत्र के लोगों की उस भावना एवं प्रयत्नों से है जिनके द्वारा वे अपने क्षेत्र विशेष के लिए आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक शक्तियों में वृद्धि चाहते हैं।

भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में क्षेत्रीयतावाद से अभिप्राय है – राष्ट्र की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष अथवा राज्य या प्रान्त की अपेक्षा एक छोटे क्षेत्र से लगाव, उसके प्रति भक्ति या विशेष आकर्षण दिखाना। इस दृष्टि से क्षेत्रीयतावाद राष्ट्रीयता की वृहद् भावना का विलोम है और इसका ध्येय संकुचित स्वार्थो की पूर्ति होना है, भारतीय राजनीति के सन्दर्भ में यह एक ऐसी धारणा है जो भाषा, धर्म, क्षेत्र आदि पर आधारित है और जो विघटनकारी प्रवृतियों को प्रोत्साहन देती है। क्षेत्रीयता की भावना सारे देश में व्याप्त है जो कि प्रायः सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित आन्दोलनों तथा अभियानों के रूप में प्रकट होती हैं।

4.6.2 उद्देश्य

- क्षेत्रवाद का अर्थ जानना

- क्षेत्रवाद के क्या कारण है
- भारतीय राजनीति को क्षेत्रवाद कैसे प्रभावित करता है
- क्या क्षेत्रवाद राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा है

4.6.3 क्षेत्रीयतावाद के कारण (Causes of Regionalism)

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं –

1. **भौगोलिक :** भौगोलिक दृष्टि से भारत के कई राज्य आज भी बहुत बड़े हैं। इन बड़े राज्यों, जैसे मध्यप्रदेश में छोटे–छोटे महत्वपूर्ण क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इकाई बन सकते हैं। राजस्थान में मारवाड़ तथा मेवाड़ का क्षेत्र को यदि पृथक् राज्यों का दर्जा दे दिया जाए तो भी वे केरल, नागालैण्ड से तो बड़े राज्य ही बनेगें।
2. **सांस्कृतिक :** कुछ राज्यों में कई भाषा भाषी एवं संस्कृति के लोग रहते हैं। उन्हें अपनी भाषा एवं संस्कृति पर गर्व है। इसी आधार पर द्रविड़ मुनत्र कड्गम ने भारतीय संघ से अलग होने की बात कही थी।
3. **ऐतिहासिक :** राज्य पुनर्गठन के बाद कई पुरानी रियासतों को राज्यों में मिला दिया गया था। आज भी इन रियासतों के लोग यह महसूस करते हैं कि यदि उनकी रियासत का ही पृथक राज्य होता तो व अधिक लाभ की स्थिति में होते। केवल ऐतिहासिक सम्बन्धों के आधार पर ही पुराने क्षेत्रों की चर्चा की जाती है। दूसरे शब्दों में, सारे भारत का इतिहास सामान्य न होकर क्षेत्रों के आधार पर भिन्न है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक विरासत लोक परम्पराओं, सामाजिक मिथकों तथा लक्षणों (Symbolism) के आधार पर क्षेत्रवाद के अस्तित्व को सहायता मिलती है।
4. **आर्थिक कारण :** भारत के कुछ राज्यों में अधिक आर्थिक विकास हुआ और आर्थिक विकास की दृष्टि से कुछ क्षेत्र पिछड़ गए। इससे इन पिछड़े क्षेत्रों में असन्तोष फैलने लगा और क्षेत्रीयतावाद की भावना फैलने लगी। उदाहरण के तौर पर आन्ध्रप्रदेश में तेलंगाना का क्षेत्र, राजस्थान में दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान,

महाराष्ट्र में विदर्भ में तेज रफ्तार से विकास नहीं हो पाया और वे अपने लिए पृथक राज्य की मांग करने लगे।

5. **भाषा :** भारत में भाषागत विविधता रही है। उत्तर और दक्षिण की भाषा एक–दूसरे से भिन्न रहती है। भाषा को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने की प्रवृति बढ़ी। भाषा को प्रश्न को लेकर उत्तर तथा दक्षिण राज्यों में हिंसात्मक आन्दोलन हुए और राष्ट्रीय एकता संकट में पड़ गयी।

6. **धार्मिक कारण :** क्षेत्रीयतावाद के विकास में धर्म की भी प्रधानता रही है। उदाहरण के लिए पंजाब में खालिस्तान की मांग बहुत सीमा तक धर्म पर आधारित है।

7. **अन्तर्राज्यीय विवाद :** राज्यों के आपसी विवाद भी क्षेत्रीयता की भावना को बढ़ाने में सहायक हुए हैं। उदाहरण के तौर पर चंडीगढ़ के विषय पर हरियाणा और पंजाब में तनाव पूर्ण स्थिति पैदा हो गई है। दोनों ही राज्यों की जनता ने अपने –अपने क्षेत्रों में आन्दोलन चलाए जिससे की वातावरण काफी अशान्त हो गया है। नर्मदा नदी के जल–प्रयोग के कारण मध्यप्रदेश, राजस्थान और गुजरात के मध्य काफी तनावपूर्ण स्थिति रही। भाखड़ा जल–विद्युत के प्रयोग के लिए पंजाब और हरियाणा तथा पंजाब और राजस्थान में संघर्ष चल रहा हैं। कहने का अर्थ यह है कि राज्यों के आपसी विवाद भी क्षेत्रीयता की भावनाओं को बढ़ाते हैं।

8. **राजनैतिक कारण :** क्षेत्रीयतावाद के जन्म के कारणों में राजनीतिज्ञों की भी मुख्य हाथ रहा है। वे सोचते है कि यदि अलग राज्य की स्थापना कर दी जाएगी तो सत्ता उनके हाथों में आ जाएगी। इसी उद्देश्य के कारण उत्तरप्रदेश को विभाजित करने की मांग समय–समय पर उठती रहती थी।

भारत में क्षेत्रीयतावाद

भारत में स्वतंत्रता के बाद राजनीति में जो प्रश्न उभरे हैं, उनमें क्षेत्रीयतावाद का प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। 1950 से लेकर आज तक क्षेत्रीयतावाद की समस्या भारत सरकार को घेरे हुए है और विभिन्न क्षेत्रों में आन्दोलन चलते हैं। भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद की चर्चा निम्नलिखित शीर्षकों के आधार पर की जा सकती है –

1. भारतीय संघ से पृथक होने की मांग
2. पृथक राज्यत्व को प्राप्त करने की मांग
3. पूर्ण राजस्व को प्राप्त करने की मांग
4. अन्तर्राज्यीय विवाद
5. राज्य के लोगों के हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन

(1) भारतीय संघ से पृथक होने की मांग

कई बार क्षेत्रीय आन्दोलन संघ से अलग होने के लिए किए जाते रहे हैं।

1. **तमिलनाडु में आन्दोलन :** संघ से अलग होने की आवाज मद्रास राज्य के लोगों ने उठाई। 1960 में डी०एम०के० तथा अन्य तमिल दलों ने इस मांग को पूरा करवाने के लिए व्यापक आन्दोलन संगठित किया। 1962 के चुनाव में डी०एम०के० दल को मद्रस विधानसभा में 50 स्थान प्राप्त हुए, जबकि 1957 के चुनाव में इस दल को 15 स्थान प्राप्त हुए। डी०एम०के० दल के नेता अन्नादुराई ने संघ से अलग होने की मांग को दोहराया। स्वर्गीय प्रधानमंत्री नेहरू ने इस मांग को अनुचित बताया। मद्रास के वातावरण को देखते हुए संसद ने 1963 में संविधान में 16वां संशोधन किया। इस संशोधन के अनुसार संसद को अधिकार दिया गया कि वह भारत की प्रभुसत्ता को ललकारने वाले व्यक्ति को सजा देने के लिए कानून बनाए। इस संशोधन के अनुसार संसद तथा अन्य विधानसभा के चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को संविधान के प्रति और राष्ट्र की प्रभुसत्ता व एकता को बनाए रखने के लिए शपथ लेनी होगी। इस संशोधन के फलस्वरूप डी०एम०के० ने भारत से अलग होने की मांग को छोड़ दिया। परन्तु 1971 में तमिलनाडु (मद्रास) के मुख्यमंत्री करूणानिधि ने कहा कि तमिलनाडु का भारत से अलग होना निश्चित एवं अनिवार्य है।
2. **पंजाब आन्दोलन :** मद्रास राज्य की तरह पंजाब में मास्टर तारा सिंह ने पंजाब को एक अलग सिख राज्य बनाने की मांग रखी। 1950 से लेकर 1966 तक अकाली दल ने पंजाबी सूबा बनाने के लिए कई आन्दोलन चलाए। 1 नवम्बर, 1966 को पंजाब का पुनर्गठन करके पंजाब और हरियाणा दो राज्यों की स्थापना

की गइ। 1971 में डॉ० जगजीत सिंह ने खालिस्तान की मांग को दोहराया जिसकी पंजाब के नेताओं ने कड़ी आलोचना की। 1973 में पास किए गए आनन्दपुर प्रस्ताव के आधार पर अकाली दल ने भारत के भीतर ऐसे सिख राज्य की स्थापना की मांग की जिसमें चार विषयों–प्रतिरक्षा, विदेशी मामलें, मुद्रा और यातायात व संचार साधनों को छोड़कर अन्य सभी विषय राज्य सरकार को सौंप देने चाहिए। अपनी इस मांग को पूरा करवाने के लिए अकाली दल के एक धड़े ने जत्थेदार जगदेव सिंह के नेतृत्व में आन्दोलन चलाया इस आन्दोलन के अतिरिक्त 8 अगस्त, 1982 को एक अन्य आन्दोलन अमृतसर में अकाली दल ने शुरू किया। इस आन्दोलन में दमदमी टकसाल के मुखिया संत जरनैल सिंह भिंडरावाले और उसके समर्थक भी शामिल थे। जून 1984 में सरकार को विवश होकर आतंकवादियों को पकड़ने के लिए स्वर्ण मन्दिर परिसर में तथा अन्य स्थानों पर सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी। जुलाई 1985 में शिरोमणी अकाली दल के प्रधान संत हरचंद सिंह लौगोवाल और प्रधानमंत्री राजीव गांधी में एक समझौता हुआ जिसको पंजाब समझौता कहा जाता है।

3. **मिजो आन्दोलन :** असम के मिजो हिल (Miza Hill) जिले के लोगों ने भारत से अलग होने की मांग की और इस मांग को पूरा करवाने के लिए उन्होंने Mizo National Front (M.N.F.) की स्थापना की चीन के आक्रमण के समय (M.N.F.) इस को अवैध घोषित कर दिया और मिजो हिल (Mizo Hills) को संघीय क्षेत्र (Union Fintry) बना दिया गया। इस संघीय क्षेत्र को मिजोरम (Mizoram) का नाम दिया गया और इसका उद्घाटन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने 21 जनवरी, 1972 को किया। मिजो नेशनल फ्रन्ट ने लालडेंगा के नेतृत्व में स्वतंत्रता मिजोरम के लिए अपनी आतंकवादी गतिविधियाँ जारी रखी। 1972 में लालडेंगा इंग्लैण्ड भाग गए और वहाँ से मिजो नेशनल फ्रन्ट को निर्देश देते रहे। 1976 और 1980 में लालडेंगा के समझौते के लिए बातचीत हुई तो विफल रही। तीसरी बार बातचीत अक्टूबर 1984 में शुरू हुई और 25 जून 1986 के

केन्द्रीय सरकार और मिजो फ्रन्ट में समझौता हुआ और लालडेंगा को मुख्यमंत्री बनाया गया और 1987 में मिजोरम को पूर्ण राज्य बनाया गया।

4. **नागालैण्ड आन्दोलन :** मिजो लोगों की तह असम के नागा पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों ने स्वतंत्र नागरा राज्य की मांग की। उन्होंने नागा राज्य की मांग को मनवाने के लिए नागा नेशनल कौंसिल (Naga National Council) की स्थापना की। नागों ने अपनी मांगों को पूरा करवाने के लिए हिंसक तथा अराजकता की कार्यवाही की। जिससे सेना को बुलाना पड़ा। 1962 में 13वें संशोधन द्वारा नागालैण्ड को भारतीय संघ का 16वां राज्य बनाया गया। इसके बाद भी नागालैण्ड में कई विद्रोही नागाओं ने अपना आन्दोलन जारी रखा।

5. **आजाद कश्मीर की मांग :** जम्मू–कश्मीर में अलगाववाद की जड़े बड़ी गहरी है। 1947 में शेख अब्दुल्ला जम्मू–कश्मीर के शासक थे और उन्होंने 1951 से स्वतन्त्र कश्मीर का सपना देखना शुरू कर दिया। इसीलिए अगस्त 1953 में शेख अब्दुल्ला को बन्दी बनाया गया। कश्मीर में अलगाववाद का एक महत्वपूर्ण कारण भारतीय संविधान का अनुच्छेद 370 हैं जिसने कश्मीर को विशेष दर्जा दे रखा था। जिसे अब समाप्त कर दिया है। 1987–88 से अलगाववादी गतिविधियाँ तेज हो गई। इन अलगाववादियों को पाकिस्तान का पूर्ण समर्थन प्राप्त हैं जिस कारण ये कश्मीर में विभिन्न स्थानों पर आतंकवादी गतिविधियाँ कर रहे हैं। उन्हें पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षण, सहायता और प्रोत्साहन मिल रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय विरोधी तत्व विदेशी पर्यटकों का अपहरण करके उनकी हत्या कर देते हैं। उन अलगाववादियों से निपटने के लिए प्रशासन बड़े पैमाने पर कार्यवाही कर रहा है। उनकी मुख्य मांग कश्मीरियों को आत्म निर्णय का अधिकार देना और आजाद कश्मीर की है। इस मांग की पूर्ति के लिए ये अलगाववादी तत्व पाकिस्तान की उकसाहट के कारण खूनी संघर्ष का रास्ता अपनाए हुए हैं।

(2) पृथक राजस्व को प्राप्त करने की मांग

कई बार क्षेत्रीयता आन्दोलन अलग राज्य की स्थापना के लिए किया जाता रहा है। 1956 के राज्यों के पुनर्गठन से प्रत्येक राज्य सन्तुष्ट नहीं था। बम्बई राज्य के लोगों ने पहले अलग राज्य की मांग की, जिसके फलस्वरूप दो न राज्यों महाराष्ट्र व गुजरात की स्थापना हुई। पंजाब में अकाली दल ने पंजाबी सूबा की मांग की। 1966 में अकाली दल की मांग को स्वीकार किया गया और पंजाब दो राज्यों में विभक्त कर दिया गया – पंजाब व हरियाणा।

1. **गोरखालैंड आन्दोलन :** 1985 ई० में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग पवर्तीय क्षेत्र के निवासियों ने सुभाष के नेतृत्व में गोरखालैंड राज्य बनाए जाने की मांग की। गोरखा नेशनल लिबेरशन फ्रंट ने गोरखा राज्य के लिए व्यापक आन्दोलन चलाए और अन्त में अगस्त, 1988 में एक समझौता हुआ। जिसके अन्तर्गत दार्जिलिंग पवर्तीय गोरखा परिषद् की मांग को स्वीकार कर लिया गया। दार्जलिंग पवर्तीय गोरखा परिषद् के चुनाव दिसम्बर, 1988 में हुए और गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे को 28 सीटें प्राप्त हुई।
2. **बोडो आन्दोलन :** 1987 में असम में बसे बोडो कबीले के लोगों ने 'बोडोलैंड' की मांग को लेकर 'आल बोडो स्टूडैंटस यूनियन' (All Bodo Students Union) के नेतृत्व में आंदोलन शुरू किया। आल बोडो स्टूडैंटस यूनियन ब्रह्मपुत्र नदी के उतरी किनारे पर बसे बोडो कबीलें के लोगों के लिए अलग राज्य की मांग कर रही है ताकि वे अपनी संस्कृति एवं भाषा की रक्षा कर सकें और अपना सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास कर सकें। 15 अगस्त, 1989 को अखिल बोडो छात्र संघ ने एक हजार घण्टे के असम बन्द का आन्दोलन शुरू किया। इस आन्दोलन में बोडो और गैरबोडो समुदायों में हिंसक घटनाएं हुई। 28 अगस्त, 1989 को नई दिल्ली में त्रिपक्षीय वार्ता हुई और बोडो आन्दोलनकारी बातचीत के लिए उचित वातावरण बनाने के उद्देश्य से अपना आन्दोलन स्थगित करने तथा हिंसक गतिविधियाँ रोकने पर सहमत हो गए। बोडोलैंड आन्दोलन, 20 फरवरी को आन्दोलन के नेताओं, केन्द्र और राज्य

सरकार के बीच हुए एक समझौते के साथ ही समाप्त हो गया। समझौते के अनुसार असम राज्य के बोडो लोगों की आशाओं के पूरा करने और सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए एक 40 सदस्यीय स्वायतशाही परिषद् बनाई गई। इस परिषद् के 35 सदस्य निर्वाचित थे और 5 सदस्यों को राज्यपाल द्वारा मनोनीत किए गए। 19 मई 1993 को बोडोलैण्ड अन्तरिम परिषद् की स्थापना की गई। अन्तरिम परिषद् का गठन बोडो समझोते के पालन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हैं।

3. **झारखण्ड आन्दोलन :** झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और मध्यप्रदेश के 21 जिलों को मिलाकर झारखण्ड राज्य की स्थापना की मांग की रहा है। झारखण्ड मुक्ति मोर्चा ने 4–5 वर्षो में कई बार जोरों से आन्दोलन चलाए। झारखण्ड नेताओं ने 15 सितम्बर, 1992 को झारखण्ड बन्द और 18 से 30 सितम्बर तक बिहार में आर्थिक नाकेबन्दी का आह्वान किया। 15 मार्च 1993 को झारखण्ड बन्द किया गया और 16 मार्च से आर्थिक नाकेबन्दी को 20 अप्रैल को प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने समस्या के निदान हेतु द्विपक्षीय बैठक बुलाने के आश्वासन के बाद स्थगित कर दिया। वार्ता के कई दौर चले पर झारखण्ड समस्या का कोई हल नहीं निकला। 17 मार्च 1994 का अखिल झारखण्ड विद्यार्थी संघ व झारखण्ड पीपुल्स पार्टी के आह्वान प 48 घंटे के बन्द के दौरान कई जगहों पर हिंसक वारदातें भी हुई। 22 सितम्बर, 1994 को केन्द्र सरकार ने बिहार सरकार व झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के साथ मिलकर किया, जिसके अन्तर्गत झारखण्ड के विकास के लिए एक स्वायत्तशाही विकास परिषद् की स्थापना की जाएगी। इस परिषद् में 100 सदस्य होंगे जिनमें से 90 सदस्य निर्वाचित और मनोनीत होंगे। परन्तु इन व्यवस्थाओं के बावजूद भी झारखण्ड आन्दोलन चलता रहा। अन्ततः केन्द्र सरकार ने झारखण्ड वालों की बात मानते हुए, नवम्बर 2000 में झारखण्ड नाम का एक नया राज्य बना दिया।

4. **उत्तराचंल राज्य की मांग :** उत्तरप्रदेश में उत्तराचंल की मांग जोरो से चली। जनवरी, 1990 में भारतीय जनता पार्टी के महासचिव डॉ० मुरली मनोहर जोशी

के नेतृत्व में एक उत्तरांचल राज्य संघर्ष समिति का प्रतिनिधिमण्डल गुहमंत्री से मिला और उसने उत्तरप्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों को मिला कर उत्तराचंल राज्य की स्थापना की मांग की। दिसम्बर, 1993 में उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह यादव ने भी उत्तराचंल राज्य की मांग का समर्थन किया। 1994 में उत्तराखंड आन्दोलन तीव्र गति से चला। 2 अक्टूबर, 1994 को जब उत्तराखंड के आन्दोलनकारी बसों में दिल्ली आ रहे थे तब मुजफ्फरपुर नगर में पुलिस ने उन पर हर तरह के अत्याचार किए। मई, 1998 में भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने उत्तरांचल को राज्य बनने की घोषणा की। केन्द्र सरकार ने उत्तरांचल वासियों की मांग को मानते हुए नवम्बर, 2000 में उत्तरांचल नामक नया राज्य बना दिया।

5. **पूर्ण राज्यत्व को प्राप्त करने की मांग :** क्षेत्रीयता की समस्या का तीसरा रूप पूर्ण राज्यत्व की मांग है। संविधान में 14वां संशोधन 1962 में किया गया था, जिसके अनुसार हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, पाण्डिचेरी तथा गोवा में विधानमण्डल की स्थापना की गई। हिमाचल प्रदेश के लोग बड़ी देर से हिमाचल को पूर्ण राज्य बनाने की कर रहे थे, अतः 31 जुलाई 1970 को हिमाचल को पूर्ण राज्य घोषित कर दिया गया। 1970 में दिल्ली की मेट्रोपोलिटन परिषद् (Metropolitan Councial) ने दिल्ली को पूर्ण राज्य बनाए जाने की मांग की, परन्तु केन्द्रीय सरकार ने इस मांग का दृष्टिगत रखते हुए संविधान में 69वें संशोधन अधिनियम द्वारा दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र घोषित किया जिसमें एक विधान सभा की व्यवस्था की गई है। नवम्बर, 1993 में इसके चुनाव हुए और मदन लाल खुराना पहले मुख्यमंत्री बने। 1972 में मणिपुरा तथा त्रिपुरा भी पूर्ण राज्य बना दिए गए। दिसम्बर, 1986 में गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा देने के लिए आन्दोलन शुरू हुआ और संसद ने मई 1987 में गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा देने का बिल पास किया।

6. **अन्तर्राज्यीय विवाद :** क्षेत्रीयता की समस्या का एक अन्य रूप राज्यों के बीच पारस्परिक विवाद हैं। इस तरह का पहला विवाद मैसूर और महाराष्ट्र में हुआ

पंजाब और हरियाणा के बीच 1966 से विवाद चला आ रहा है। आज भी चण्डीगढ़ दोनों राज्यों में विवाद का मुख्य कारण बना हुआ है। असम–नागालैंड सीमा विवाद बहुत समय से चल रहा है और नवम्बर, 1987 में इस विवाद ने पुनः उग्र रूप धारण कर लिया और दोनों राज्यों में अनेक खूनी मुठभेड़ हो चुकी हैं। नदियों के पानी के इस्तेमाल के लिए राज्यों में विवाद होते रहते हैं। नर्मदा नदी के पानी पर मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र में काफी समय तक विवाद चलता रहा और इसका हल मार्च, 1975 में हुआ। महाराष्ट्र, मैसूर और आन्ध्रप्रदेश में कृष्णा नदी के पानी के लिए काफी देर तक विवाद चलता रहा। पंजाब और हरियाणा में पानी का बंटवारा विवाद का एक महत्वपूर्ण कारण है। कावेरी जल विवाद कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यों में तनाव का मुख्य कारण है। 29 जुलाई, 1991 को केन्द्रीय श्रम मंत्री के० राममूर्ति ने कावेरी जल विवाद के मसले पर मन्त्रिमण्डल से त्याग–पत्र दे दिया। कावेरी जल विवाद का मामला अगस्त 1991 में उच्चतम न्यायालय के पास ले जाया गया। 22 नवम्बर, 1991 में अपने फैसले के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय ने कर्नाटक सरकार का अध्यादेश असंवैधानिक घोषित कर दिया। जुलाई 1998 में अन्ना डी०एम०के० की नेता सुश्री जयजलिता ने केन्द्र सरकार से आग्रह किया कि कावेरी जल विवाद को शीघ्रता से निपटाया जाए।

7. **राज्य के लोगों के हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन :** कई बार क्षेत्रीय आन्दोलन राज्य के लोगों के हितों की रक्षा के लिए किए जाते हैं। असम आन्दोलन इस तरह का ही था। असम आन्दोलन 1979 से लेकर 1985 तक चला। यह आन्दोलन असम में विदेशियों की समस्या को लेकर चलाया गया, क्योंकि असमिया मूल के लोगों में यह आशंका घर कर चुकी थी कि वे अल्पसंख्यक बन जाएगे क्योंकि बंग्लादेश से आकर लाखों लोग असम में बसते जा रहे थे। इस आन्दोलन को छात्रों ने आल असम स्टूडैण्ट्स यूनियन नामक संगठन के तहत चलाया। आन्दोलनकारियों ने मांग की कि चुनाव करवाने से पहले विदेशियों की समस्या को हल किया जाए और विदेशियों के नाम मतदाता सूची

से निकाले जाऐ। केन्द्र सरकार ने आन्दोलनकारियों के साथ कई बार बातचीत की, पर विवाद को लटकाए रखा। फरवरी, 1993 में असम में चुनाव करवाने का प्रयास किया गया जिसमें बहुत बड़ी हिंसक वारदातें हुई। दिसम्बर, 1984 के लोकसभा चुनाव असम में नहीं हुए। राजीव गांधी ने सत्ता में आने पर असम समस्या को हल करने के लिए प्रयास किए और अन्त में 15 अगस्त, 1985 को असम समझौता हुआ। दिसम्बर, 1985 में असम विधानसभा के चुनाव हुए। चुनाव लड़ने के लिए छात्रों और अन्य आन्दोलनकारियों ने असम गण परिषद् की स्थापना की। असम गण परिषद् को चुनाव में बहुमत प्राप्त हुआ और प्रफुल्ल कुमार महंत मुख्यमंत्री बने। असम आन्दोलन इन्हीं के नेतृत्व में चलाया गया था। असम गण परिषद् की सरकार समझौते को लागू करने के लिए वचनबद्ध रही। इस समझौते की मुख्य बातें हैं। ''1966 से 1971 के बीच आए विदेशियों को पहचानना और उनके नाम मतदाता सूची से 10 वर्ष के लिए हटवाना तथा 1971 के बाद विदेशियों को बाहर निकालना।''

क्षेत्रीयतावाद को रोकने के उपाय

राष्ट्रीय जीवन के लिए क्षेत्रीयता कोई अच्छी चीज नहीं है। इस पर रोक लगाना ही उचित है इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उपायों को सुझाया जा सकता है –

1. केन्द्रीय सरकार की नीति कुछ इस प्रकार की होनी चाहिए कि सभी उपसांस्कृतिक क्षेत्रों (Sub-Cultural Regious) का सन्तुलित आर्थिक विकास सम्भव हो जिससे कि विभिन्न क्षेत्रों के बीच तनाव कम से कम हो।
2. सभी क्षेत्रों के लोगों को समान आर्थिक सुविधाएँ प्रदान की जाए जिससे कि आवश्यक प्रतिस्पर्द्धा व ईर्ष्या की भावना न पनप सके।
3. भाषा सम्बन्धी झगड़ों का हल शीघ्र ही ढूंढ लिया जाए। इस सम्बन्ध में सबसे उचित हल यह है कि सभी क्षेत्रीय भाषाओं को समान मान्यताः प्रदान की जाए।
4. हिन्दी भाषा को किसी भी क्षेत्रीय समूह पर जबरदस्ती लादा न जाए। अपितु इस भाषा का प्रचार व विस्तार इस ढंग से किया जाए कि विभिन्न क्षेत्रीय समूह स्वतः ही इसे सम्पर्क भाषा (Link Language) के रूप में स्वीकार कर ले।

5. प्रचार के विभिन्न साधनों के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों के सांस्कृतिक लक्षणों के विषय में लोगों के सामान्य ज्ञान को बढ़ाया जाए जिससे कि एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र के प्रति अधिक सहनशीलता की भावना को पनपा सकें।
6. केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में सभी क्षेत्रों के नेताओं का सन्तुलित प्रतिनिधित्व हो जिससे कि क्षेत्रीय पक्षपातपूर्ण नीतियों को खण्डन हो सके और केन्द्रीय सरकार के इरादों पर किसी को भी सन्देह न रहे।
7. जहाँ तक सम्भव व व्यावहारिक हो उप–सांस्कृतिक क्षेत्रों की उचित आकांक्षाओं की पूर्ति की जाए यदि उनका कोई बुरा प्रभाव राष्ट्रीय जीवन व संगठन पर न पड़ता हो।
8. भारतीय संघ के राज्यों की सकीर्ण मानसिकता को दूर करने के लिए केन्द्र एवं राज्य सम्बन्धों को इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि उनमें असन्तोष न पैदा हो, वे मजबूत केन्द्र की आवश्यकता को समझे और केन्द्र को भी उनके सहयोग की अनिवार्यता की अनुभूति हो। इन दिनों केन्द्र राज्य सम्बन्ध भी चर्चा का विषय बना हुआ है। इस सम्बन्ध में सरकारी आयोग का भी गठन किया गया था जिसने सन् 1987 में अपनी रिर्पोट प्रस्तुत की है। इस आयोग की सिफारिशों के माध्यम से केन्द्र राज्य सम्बन्धों का पुनर्निर्धारण एवं अन्य सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में एक सन्तुलित नीति निर्धारित करने की ओर प्रयास भी किए गए।

क्षेत्रीयवाद : आलोचनात्मक मूल्यांकन (Regioalism : Critical Apprasal)

स्वतंत्रता के बाद भारतीय जनमानस में नवीन आकांक्षाएं उठने लगी। राज्य के नीति निर्देशक तत्व, पंचवर्षीय योजनाएं आदि कार्यक्रम आदर्श थे, लेकिन व्यवहार में गरीबी और आर्थिक विषमता ही बढ़ती गयी। इस स्थिति का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय एकता तथा हितों की अपेक्षा क्षेत्रीयतावाद को बढ़ावा मिलने लगा। असन्तोष के इस वातावरण में विभिन्न वर्गो द्वारा शक्ति के लिए संघर्ष की शुरूआत हुई। ऐसे नवीन राजनीतिक दलों का उदय होने लगा, जो कि क्षेत्रीय हितों के लेकर शक्ति अर्जित करने लगे।

क्षेत्रीयता के आधार पर राज्य केन्द्र से सौदेबाजी करने लगे और अपनी जड़ों को मजबूत करने के लिए राजनीतिक दल प्रादेशिकता की भावना का प्रचार करने लगे प्रादेशिकता के आधार पर चुनावों में उम्मीदवार का मनोनयन किया जाने लगा। सरकार के गठन में क्षेत्रीयता को मानदण्ड बनाया जाने लगा।

क्षेत्रीयतावाद का भारतीय राजनीति की शैली पर काफी प्रभाव पड़ा तथा आन्दोलनात्मक राजनीति को बढ़ावा मिला। क्षेत्रीय आन्दोलनों को चलाने के लिए आर्थिक विषमता, धर्म, जाति और भाषा का सहारा लिया गया। यथार्थ में, क्षेत्रीयता की समस्या आज भारत की राष्ट्रीयता एकता के मार्ग में कण्टक बन गयी है। संघर्षात्मक प्रादेशिकता की भावना को समाप्त कर उदार सहयोगी प्रादेशिकता की भावना के प्रसार की आवश्यकता हैं।

डॉ० रशीदउदीन खां ने क्षेत्रीयतावाद के सकारात्मक पक्ष की चर्चा करते हुए लिखा है कि यह धारणा गलत साबित हुई कि क्षेत्रीयतावाद के कारण भारतीय संघ छिन्न–भिन्न हो जाएगा अपितु यह मत अधिक सही साबित हुआ कि क्षेत्रीयतावाद या उप–राष्ट्रवाद में सह–अस्तित्व सम्भव है। वस्तुतः भारत में क्षेत्रवाद सामान्यतः पृथकतावादी नहीं है। क्षेत्रवाद का लक्ष्य केवल क्षेत्र अथवा समुदाय विशेष के लिए अधिक सुविधाएं प्राप्त करना है। इसका अनिवार्य अर्थ यह नहीं है कि वह अन्य क्षेत्रों के विकास अथवा राष्ट्र की अखण्डता के विरूद्ध है, बल्कि एक सीमा तक इस प्रकार के क्षेत्रवाद ने भारत के विकास को गति प्रदान की है। अनेक ऐसी योजनाएं और कार्यक्रम है जो शायद धीमें पड़े हुए थे, क्षेत्रीय दबावों के कारण तीव्र हुए है। साथ ही क्षेत्रवादी नेतृत्व ने सत्ता में रहकर अपने दावों को उचित साबित करने के लिए अपने राज्यों के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए हैं। इन राज्यों के विकास से सारे देश को भी लाभ होता है। तमिलनाडु, पंजाब और हरियाणा में विकास की गति इसका प्रमाण हैं। निस्संदेह खालिस्तान समय–समय पर कश्मीर तथा उत्तरी–पूर्वी सीमान्त राज्यों में कुछ आन्दोलन पृथकतावादी भी हैं, परन्तु इनका समर्थन और प्रभाव अधिक नहीं हैं।

कुल मिलकर यह कहा जा सकता है कि भारत जैसे विशाल, विविधतापूर्ण और लोकतान्त्रिक देश में क्षेत्रवाद और उपक्षेत्रवाद स्वाभाविक अवधारणाएं हैं। पूंजीवाद व्यवस्था पर आधारित विकास की प्रक्रिया इसके विकास को संगठित और सक्रिय रूप प्रदान करती है। यदि स्त्रोतों के बंटवारे विकास की गति और विभिन्न समुदायों की आकांक्षाओं को कुछ सीमा तक नियन्त्रित किया जाए तो क्षेत्रवाद हानिकारक न होकर एक सामान्य संघीय प्रक्रिया तक ही सीमित रहता है और विभिन्न अल्पसंख्यकों और क्षेत्रीय वर्गो को राजनीति में भागीदरी को संतुष्टि दिलवाता है।

4.6.4 निष्कर्ष

क्षेत्रीयवाद का भारतीय राजनीति की शैली पर काफी प्रभाव पड़ा तथा आन्दोलनात्मक राजनीति को बढ़ावा मिला। क्षेत्रीय आन्दोलनों को चलाने के लिए आर्थिक विषमता, धर्म, जाति और भाषा का सहारा लिया गया। यथार्थमें, क्षेत्रीयता की समस्या आज भारत की राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बड़ी बाधा है। अतः हमें संघर्षात्मक प्रादेशिकता की भावना को समाप्त कर उदार सहयोगी प्रादेशिकता की भावना के प्रसार की आवश्यकता है।

4.6.5 मुख्य शब्दावली

- अन्तर्राज्यीय विवाद : किन्ही दो या दो से अधिक राज्यों के बीच किसी विषय की वजह से संघर्ष या तनाव।
- खालिस्तान : पंजाब से अलग एक अन्य राज्य खालिस्तान की मांग की गई। पृथकतावादियों के द्वारा।
- भूमि–पुत्र की धारणा : किसी राज्य अथवा क्षेत्र के निवासियों द्वारा उस राज्य में बसने और रोजगार प्राप्त करने आदि के संबंध में विशेष संरक्षण की मांग।

4.6.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत में क्षेत्रवाद के उत्थान के मुख्य कारणों की व्याख्या कीजिए। यह भारतीय राजनीति को कैसे प्रभावित करता है ?

2. क्षेत्रीयवाद से आप क्या समझते हैं ? भारत में क्षेत्रीयवाद के विकास के लिए कौन से कारण उत्तरदायी हैं ?
3. क्षेत्रीयवाद से आपका क्या अभिप्राय है ? भारत में इसके विभिन्न रूपों की व्याख्या करें।
4. भारत में क्षेत्रीयवाद की समस्या पर एक निबन्ध लिखिए।
5. भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में क्षेत्रवाद की भूमिका की आलोचनात्मक समीक्षा करे।
6. क्षेत्रवाद की समस्या के समाधान के लिए कोई दो सुझाव दें।
7. आर्थिक तथ्य भारत में क्षेत्रवाद को कैसे उभारते हैं ?

4.6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976

- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977

- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.7 राष्ट्र–निमार्ण की समस्या एवं राष्ट्रीय एकीकरण
(Problem of Nation-Building or National Integration)

4.7.1 परिचय

भारत के सामने आज कई गम्भीर समस्याएं है जोकि किसी बाहरी खतरे से कम नहीं हैं। 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा था, ''आज आवश्यकता इस बात की है कि भारत को यह सब कुछ करना चाहिए जो एक राष्ट्र युद्ध के समय करता है, अपने सभी स्त्रोतों का प्रयोग किया जाए और सभी मतभेदों को भुलाकर दुश्मन को हराने का प्रयास किया जाए। देश में अशान्ति, आर्थिक स्थिति में गिरावट, कीमतों में वृद्धि, सत्तारूढ़ कांग्रेस का 'गरीबी हटाने' में असफल होना, बिहार, गुजरात तथा अन्य क्षेत्रों में गड़बड़ी का होना आदि वाद–विवाद के महत्वपूर्ण विषय बने हुए हैं।

4.7.2 उद्देश्य

- राष्ट्र–निर्माण के नियामक तत्त्व क्या होते है
- भारत में राष्ट्र–निर्माण में क्या–क्या बाधाएं है
- इन बाधाओं को कैसे दूर किया जा सकता है
- राष्ट्र–निर्माण क्यों आवश्यक है

4.7.3 राष्ट्र–निर्माण व राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या

15 अगस्त 1980 को लालकिले से भाषण देते हुए श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद और सम्प्रदायवाद के खतरों की चेतावनी दी और इस बात पर जोर दिया कि इनको समाप्त करके ही राष्ट्र आगे बढ़ सकता है। चालीसवें स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्र के नाम अपने सन्देश में राष्ट्रपति ने कहा कि साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद ओर संकीर्णता की विषैली ताकतें हम पर हावी होने की कोशिश कर रही है। 15 अगस्त 1990 को स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर

लालकिले से भाषण देते हुए प्रधानमंत्री वी०पी० सिंह ने भी साम्प्रदायिकता, जातिवाद क्षेत्रवाद और आतंकवाद की समस्याओं की और भारतीयों का ध्यान दिलाया। ये समस्याएं राष्ट्र–निर्माण में रोड़ा अटकाती हैं। ये समस्याएं मुख्यतः निम्नलिखित हैं :

1. **राजनीति में धन–शक्ति (Money Power in Politics)** : हमारे राजनीतिक विकास को सबसे महत्वपूर्ण कीड़ा यह लग गया है कि चुनावों में और अन्य राजनीतिक कार्यो में धन का प्रयोग बहुत अधिक किया जाने लगा है। निर्वाचन –खर्च से सम्बन्धित कानून को मानने की अपेक्षा उल्लंघन करके उसका अधिक पालन किया जाता है। यद्यपि चुनाव के दिन मतदाताओं को परिवहन की सुविधाएं प्रदान करना, भ्रष्टाचार हैं, फिर भी सभी राजनीतिक दल और आजाद उम्मीदवार मतदाताओं को यह सुविधा प्रदान करके भ्रष्टाचार को फैलाते हैं।
2. **साम्प्रदायिता (Communalism)** : साम्प्रदायिक भावनाएं राष्ट्र–निर्माण के रास्ते में बहुत बड़ी बाधा है। कई बार साम्प्रदायिक दंगे फसाद उग्र रूप धारण कर लेते हैं। जैसा कि 1980 में मुरादाबाद, अलीगढ़, मेरठ, दिल्ली, कश्मीर इत्यादि स्थानों में हुआ। जुलाई 1986 में आतंरिक सुरक्षा राज्यमंत्री पी० चिदम्बरम ने लोकसभा में स्वीकार किया कि पिछले पांच वर्षों के दौरान साम्प्रदायिक स्थिति और बिगाड़ी हैं। 6 दिसम्बर 1992 को अयोध्या में विवादास्पद ढांचा गिराए जाने पर एक बार फिर साम्प्रदायिक दंगे फैल गए और सारा देश तनावग्रस्त हो गया।
3. **बहुमत काल्पनिक होना (Majority is merely a Myth)** : यह आम कहा जाता है कि बहुमत दल सभी निर्णय साधारण बहुमत से लेते हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि बहुमत दल के नेता सभी निर्णय पहले से ही ले लेते हैं और अन्य सदस्यों पर इन निर्णयों को थोप दिया जाता हैं। भारत में संसदीय शासन बहुमत का शासन न होकर अल्पमतों का शासन हैं।
4. **केन्द्र–राज्य तनाव (Centre-State Confict)** : भारतीय संविधान के अन्तर्गत संघात्मक शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई हैं। नेहरू और शास्त्री के काल में केन्द्र और राज्यों में अच्छे सम्बन्ध बने रहे क्योंकि समस्त भारत में कांग्रेस पार्टी

का ही शासन था। 1967 के आम–चुनावों के बाद कई राज्यों में गैर–कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हो गई जिससे केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों की समस्या उत्पन्न हो गई। गैर–कांग्रेसी सरकारों ने केन्द्र सरकार के विरूद्ध शिकायतें करनी शुरू कर दी और अधिक अधिकारों की मांग करनी आवश्य कर दी। 1967 में केरल के मुख्यमंत्री नम्बूदरीपाद ने केन्द्र से यह शिकायत थी कि उन्हें यदि पर्याप्त मात्रा में खाद्य वस्तुएं न मिली तो वह चीन से इसकी व्यवस्था करने के लिए मजबूर हो जाएगे। मार्च 1967 में पश्चिमी बंगाल के संयुक्त मोर्चे की सरकार और केन्द्र के सम्बन्धों में, राज्यपाल धर्मवीर के विधानमण्डल में दिए गए भाषण के कारण तनावपूर्ण स्थिति पैदा हो गई। 28 जून 1969 को पंजाब के मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह ने केन्द्र की आलोचना की। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री सी०बी० गुप्ता ने केन्द्र के विरूद्ध यह शिकायत थी कि केन्द्र उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग नहीं दे रहा है।

1971 के चुनावों के बाद केन्द्र–राज्यों के सम्बन्धों की स्थिति में परिवर्तन आया और केन्द्र–राज्यों के सम्बन्धों की स्थिति में परिवर्तन आया और केन्द्र तथा अधिकांश राज्यों में कांग्रेस की सरकारें स्थापित हुई। दिसम्बर 1973 में ये मांग की गई कि केन्द्र को अपने पास केवल चार विभाग–सुरक्षा, विदेश मुद्रा एवं संचार रखने चाहिए और शेष सभी विषय राज्यों के अधीन होने चाहिए। मार्च 1977 में केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार बनी। जनता सरकार ने अप्रैल 1977 में 9 राज्यों की विधानसभाओं को भंग करके चुनाव करवाए। फरवरी 1978 में पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने राज्यों को स्वायत्तता देने के प्रश्न पर राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने की मांग की लेकिन तत्कालीन प्रधानमंत्री देसाई ने इस मांग को अस्वीकार कर दिया। 1980 में कांग्रेस (इ) की सरकार बनी। श्रीमती गांधी के पुनः सत्ता में आने पर केन्द्र–राज्यों के सम्बन्धों में थोड़ा सुधार हुआ। पश्चिमी बंगाल की मार्क्सवादी पार्टी, तमिलनाडु की डी०एम०के० पार्टी तथा पंजाब के अकाली दल पिछले कुछ वर्षो से राज्यों को अधिक अधिकार देने की मांग करते आ रहे हैं और आज भी कुरेद रहे है। नब्बे के दशक से 2014

तक केन्द्र में किसी भी एक दल के स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पा रहा था। ऐसी स्थिति में क्षेत्रीय दलों के सहयोग से सरकार का निर्माण किया गया। इससे क्षेत्रीय दलों ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए राज्यों के लिए अधिक से अधिक स्वायत्तता की मांग करनी शुरू कर दी। इसके परिणामस्वरूप केन्द्र पर निरन्तर दबाव बढ़ा।

5. **दल–बदल (Defection)** : भारत में राष्ट्र–निर्माण तथा राजनीतिक विकास में एक महत्वपूर्ण बाधा दल–बदल हैं। इसने भारतीय राजनीति को इतना गन्दा कर दिया है कि पढ़े–लिखे व्यक्ति तो दूर, साधारण जनता भी प्रजातंत्र के भविष्य के बारे में शंकित हो उठी है क्योंकि दल ने राजनीति और शासन में अस्थिरता ला दी हैं। 1985 में संविधान में 52वां संशोधन किया गया ताकि दल–बदल की बुराई को समाप्त किया जा सके। इसके कारण दल–बदल करने वाले सदस्य की संसद या राज्य विधानमण्डल की सदस्यता समाप्त हो जाती है। परन्तु दल–बदल की बुराई पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। खुदरा दल–बदल को रोकने की अभी भी आवश्यकता है।

6. **एक दल का प्रभुत्व होना (Single Party Dominance)** : यह आम कहा जाता है कि एक दल का प्रभुत्व और विरोधी दलों का बंटे होना स्वस्थ प्रजातंत्र के लिए हानिकारक है। 1950 से लेकर 1977 तक केन्द्र में कांग्रेस की सरकार चली। 1967 के आम चुनाव के बाद कई राज्यों में गैर–कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हो गई थी परन्तु वे दल–बदल तथा अन्य कारणों से अधिक समय तक न चल सकी। मार्च 1977 में पहली बार केन्द्र में गैर–कांग्रेसी अर्थात् जनता पार्टी की सरकार बनी जोकि अधिक समय तक न चल सकी। जनवरी 1980 में कांग्रेस (इ) की श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में सरकार बनी। 1980 से लेकर 1989 तक कांग्रेस का प्रभुत्व रहा। इस प्रकार हमारे देश में अधिकांश समय में कांग्रेस का प्रभुत्व रहा है।

7. **बेरोजगारी की समस्या (Problem of Unemployment)** : राष्ट्र–निर्माण के रास्ते में एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या बेरोजगारी की समस्या है। बेरोजगारी की

स्थिति में व्यक्ति काम तो करना चाहता है, परन्तु उसे काम मिलता नहीं। आजकल भारत में अनपढ़ व्यक्तियों का तो कहना ही क्या, पढ़े–लिखे व्यक्तियों को भी रोजगार नहीं मिलता। जुलाई 1982 तक देश के रोजगार कार्यालयों के चालू रजिस्टरों पर मैट्रिक से अधिक शिक्षा प्राप्त और अन्य नौकरी चाहने वालों की कुल संख्या एक करोड़ 76 लाख 60 हजार थी परन्तु 1996 में पढ़े लिखे बेरोजगारों की संख्या 3 करोड़ से अधिक थी। बेरोजगारी कई प्रकार की आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याएं उत्पन्न करती है। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी०पी० गिरि ने कहा था कि बेरोजगारी ने हमारे नौजवानों को नक्सलवादी बना दिया है। बेकार व्यक्ति लोकतंत्र के प्रति उदासीन रहता है। वह चुनाव में दिलचस्पी नहीं लेता और वोट को भी बेच डालता है। बेरोजगारी से बेईमानी, चोरी, ठगी तथा भ्रष्टाचार में बढ़ोतरी हुई है। बेकार व्यक्ति नौकरी पाने के लिए अनैतिक कार्यो को भी करने के लिए तैयार हो जाता है। राष्ट्र के निर्माण के लिए बेकारी को जल्दी समाप्त करना अति आवश्यक है।

8. **जनसंख्या में वृद्धि (Over Population)** : राष्ट्र निर्माण एवं आर्थिक विकास के रास्ते में एक अन्य रूकावट बढ़ती हुई जनसंख्या भी है। भारत में जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है कि कृषि और उद्योगों में पर्याप्त मात्रा में उन्नति होने के बावजूद भारत की अधिकांश जनता गरीब है। 1966 में भारत की जनसंख्या 50 करोड़ थी जो 1971 में 55 करोड़ हो गई और आजकल 130 करोड़ से अधिक है। यदि जनसंख्या की वृद्धि इसी प्रकार होती रही तो भारत आर्थिक दृष्टि से कभी विकास नहीं कर पाएगा।

9. **संगठित विरोधी दल का अभाव पाया जाना (Lack of Organised Opposition)** : निर्माण और राजनीतिक विकास के लिए संगठित विरोधी दल का होना अनिवार्य है। परन्तु भारत में इसका अभाव रहा है। संसदीय लोकतंत्र की सफलता के लिए संगठित विरोधी दल अनिवार्य है। विरोधी दल सत्तारूढ़ दल को अनुचित कार्य करने से रोकता है और आवश्यकता पड़ने पर सरकार को सम्भालता है। 24 जुलाई 1982 को राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने राष्ट्र के नाम

अपने विदाई सन्देश में विपक्ष की मौजूदा स्थिति पर असंतोष व्यक्ति करते हुए सभी राजनीतिज्ञों का आह्वान किया कि वे स्थिरता और लोकतंत्र की मजबूती के लिए जिम्मेदार जागरूक और प्रभावी विपक्ष का निर्माण करें। उन्होंने कहा कि मजबूत विपक्ष न होने पर सत्तारूढ़ दल में मतभेद और विभाजन होने की स्थिति में देश की राजनीतिक प्रणाली में अस्थिरता आ जाएगी। सितम्बर–अक्टूबर 1999 के 13वीं लोकसभा के चुनावों के बाद भारतीय कांग्रेस को विरोधी दल के रूप में मान्यता दी गई। 2004 और 2009 के चुनावों के बाद भाजपा को विरोधी दल की भूमिका मिली। वर्तमान में कांग्रेस फिर से विपक्ष की भूमिका में है।

10. **गरीबी की समस्या (Problem of Poverty)** : राष्ट्र के निर्माण में एक अन्य बाधा गरीबी है स्वतंत्रता के 70 वर्षो के बाद भी बड़ी जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रही है। गरीबी कई बुराईयों की जड़ है। गरीब नागरिक को पेट भर भोजन न मिल सकने के कारण उसका शारीरिक और मानसिक विकास नहीं हो सकता। वह सदा अपना पेट भरने की चिन्ता में लगा रहेगा और उसके पास समाज और देश की समस्याओं पर विचार करने का न समय होता है और न ही इच्छा। गरीब नागरिक अपनी वोट को बेचने के लिए तैयार हो जाता है। प्रत्येक राजनीतिक दल भारतीयों की गरीबी का राजनीतिक लाभ उठाना चाहता है। चुनाव के समय सभी राजनीतिक दल गरीबी हटाने का वायदा करते हैं ताकि गरीबों की वोट प्राप्त की जा सके लेकिन बाद में सब भूल जाते हैं। गरीबी ने हिंसात्मक गतिविधियों को जन्म दिया है। अतः यदि हम राष्ट्र का निर्माण करना चाहते है तो गरीबों को दूर करना होगा।

राष्ट्रीय एकीकरण (National Integration)

किसी भी राज्य की राष्ट्रीय अखण्डता तथा एकता उसके लिए सर्वोपरि होती है। कोई भी राज्य यह सहन नहीं कर सकता कि उसकी अखण्डता का विनाश हो। राष्ट्रीय एकीकरण राज्य की प्रथम आवश्यकता है। राज्य के विकास के लिए यह आवश्यक है कि राज्य के अन्दर रहने वाले विभिन्न लोगों में एकता की भावना हो और

यही भावना राष्ट्रीय एकीकरण का सार है। राष्ट्रीय एकीकरण की भावना द्वारा विभिन्न धर्मो, जातियों व भाषाओं के लोगों में परस्पर मेलजोल बढ़ा कर एकता का विकास किया जाना है।

प्रो० माइनर वीनर (Myron Weiner) के अनुसार : राष्ट्रीय एकीकरण का अभिप्रायः उन विघटनकारी आन्दोलनों पर निगरानी रखना है जो राष्ट्र को खण्डित कर सकते है और सम्पूर्ण समाज में ऐसी अभिवृतियों का होना है जो संकीर्ण हितों की उपेक्षा राष्ट्रीय और सार्वजनिक हितों को प्राथमिकता देती है।

एच०ए० गन्नी (H.A. Gani) के अनुसार, राष्ट्रीय एकीकरण एक ऐसी, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और शैक्षणिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोगों के दिलों में एकता, दृढ़ता, सम्बद्धता की भावना विकसित होती है और उनमें सामान्य नागरिकता की भावना अथवा राष्ट्र के प्रति वफादारी की भावना का विकास होता है।

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार, ''राष्ट्रीय एकीकरण एक घर नहीं है जो चूने और ईंटों से बनाया जा सकता है। यह एक औद्योगिक योजना भी नहीं है जिस पर विशेषज्ञों द्वारा विचार किया जा सकता है और रचनात्मक रूप दिया जा सकता है। इसके विपरीत एकीकरण एक ऐसा विचार है जिसका विकास लोगों के दिलों में होता है। यह एक चेतना है जिसने जनसाधारण को जागृत करना है।

अतः राष्ट्रीय एकीकरण उस भावनात्मक तथा विचारात्मक एकता का नाम हैं जो सभी भारतवासियों को प्रान्त, भाषा, जाति, मजहब, क्षेत्र आदि की सकीर्णताओं से ऊपर उठकर उन्हें एक सूत्र से बांधती है और उन्हें इस राष्ट्र की सनातन परम्परा के अनुसार विविधता में एकता का साक्षात्कार करती है।

भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के आयाम

(Dimesnsion or Aspects of National Integration in India)

राष्ट्रीय एकीकरण एक व्यापक अवधारणा है जिसके कई आयाम (पक्ष) हैं। इसका विवरण निम्नलिखित है –

1. **राजनीतिक आयाम (Political Dimension)** : राष्ट्रीय एकीकरण का राजनीतिक आयाम देश के क्षेत्रीय संगठन से सम्बन्धित है। इसके लिए राज्य–

निर्माण (State building) का होना अनिवार्य है। सन् 1956 में भारतीय संसद द्वारा राज्य पुनर्गठन अधिनियम (State Recrograniसation Act, 1956) पास किया गया जिसके अनुसार भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। उसके बाद भी भाषा के आधार पर कई नए राज्यों का गठन किया गया जिसके परिणामस्वरूप राज्यों की संख्या 29 हो गई है। कई विद्वानों द्वारा भाषा के आधार पर राज्यों के इस गठन को दोषपूर्ण माना जाता है क्योंकि विशुद्ध भाषा के आधार पर राज्यों का गठन व्यावहारिक रूप में असम्भव है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक राज्य में कई भाषाएं बोलने वाले लोग रहते है। यही कारण है कि आज भी इस आधार पर भारत के कई भागों पर नए राज्यों के गठन की मांग जोर पकड़ रही है। राष्ट्रीय एकीकरण को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि देश के क्षेत्रीय संगठन का कार्य उचित आधारों पर एक बार ही कर दिया जाए। ऐसी मांगे राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा बनती है।

2. **सामाजिक आयाम (Social Dimension)** : राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सामाजिक एकता तथा सामाजिक एकीकरण का होना आवश्यक है। यद्यपि भारतीय संविधान द्वारा छुआछूत को समाप्त कर दिया है, फिर भी समाज में जाति–पाति की इस समस्या का पूर्ण रूप से अन्त नहीं हुआ है। आज भी अनुसूचित जातियों के लोगों के साथ बहुत ही अपमानजनक व्यवहार किया जाता है। भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, राजस्थान आदि राज्यों में जातिवाद आज भी बड़ी मात्रा में मौजूद है। इसके अतिरिक्त भाषा तथा धर्म के आधार पर भारतीय लोगों में भेदभाव बना हुआ है। जब तक इन सीमाओं को नष्ट नहीं कर दिया जाता भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या बनी रहेगी।

3. **आर्थिक आयाम (Economic Dimension)** : भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग निर्धनता तथा मुखमरी का शिकार है, जबकि कई लोग विलासिता का जीवन व्यतीत करते हैं। इसके अतिरिक्त देश के कुछ भाग अन्य भागों की अपेक्षा बहुत ही अविकसित तथा पिछड़े हुए है। भारत में विभिन्न क्षेत्रों

का असन्तुलित आर्थिक विकास भी राष्ट्रीय एकीकरण के लिए बहुत बड़ी बाधा है।

4. **सांस्कृतिक आयाम (Cultural Dimension)** : सभी लोगों को अपनी संस्कृति से घनिष्ठ लगाव होता है और यह उन्हें राष्ट्रीय मुख्य धारा (National Main Stream) से दूर रखने का एक कारण बनता है। लोग अपनी संस्कृति की अलग पहचान बनाए रखना चाहते है और इसके कारण कई बार उग्रवादी और आतंकवादी आन्दोलन भी किए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर, सन् 1980 के दशक में पंजाब में उग्रवाद के फैलने का एक मुख्य कारण सिक्खों की अपनी अलग पहचान (Separate Indentity) को बनाए रखना था। यदि देश में खण्डित संस्कृति मौजूद है तो वह राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा बन सकती है।

5. **मनोवैज्ञानिक आयाम (Psychological Dimension)** : डॉ० राधाकृष्णन ने एक बार कहा था, ''राष्ट्रीय एकीकरण कोई मकान नहीं है जिसे ईटों और गारे से बनाया जा सकता है। यह कोई औद्योगिक योजना भी नहीं है जिसे विशेषज्ञों द्वारा विचार और लागू किया जा सकता है। इसके विपरीत एकीकरण एक विचार है जो अवश्य ही लोगों के मन में समा जाना चाहिए। यह एक चेतना है जिसे बड़े पैमाने पर लोगों को अवश्य जागृत करना है।'' इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रीय एकीकरण एक विचार है जिसे व्यवहारिक रूप तभी दिया जा सकता है यदि लोगों ने अपने मन में इस विचार को ग्रहण कर लिया हो। देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों में इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक भावना पैदा किए बिना राष्ट्रीय एकीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना बहुत कठिन है।

6. **सामान्य उद्देश्य आयाम (Common Purpose Dimension)** : माईनर वीनर ने लिखा है कि किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लोगों का इक्ट्ठा होना राष्ट्रीय एकीकरण का आधार बनता है। परन्तु लोगों में इतनी योग्यता तथा क्षमता होनी चाहिए कि वे ऐसे उद्देश्य के बारे में जो उनके लिए आवश्यक हो, जन भावनाओं को प्रेरित कर सके।

इस प्रकार हम देखते है कि राष्ट्रीय एकीकरण के अनेक आयाम (पक्ष) है और इसके प्रत्येक पक्ष का उचित हल ही इसकी प्राप्ति को सम्भव बना सकता है।

राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में आने वाली बाधाएं

(Hindrances in the Way of National Intergration)

भारत के राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या अथवा उसके मार्ग में उपस्थित बाधक तत्वों का विचार करते समय अभी तक अपने देश के बुद्धिजीवियों, राजनीतिक दलों और उनके नेताओं ने पश्चिम की भौतिकवादी जीवन प्रणाली द्वारा विकसित किए गए पैमानों के आधार पर विचार किया है तथा उनके द्वारा बताए गए उपायों का सहारा लिया गया है लेकिन उससे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या हल होने के स्थान पर और भी अधिक जटिल होती चली गई है। उदाहरण के लिए सन् 1976 में पारित 42वें संविधान संशोधन की प्रस्तावना में पथ–निरपेक्षता (Secularism) शब्द शामिल करते समय यह आशा की गई कि इससे साम्प्रदायिकता पर पूरी तरह नियंत्रण पाने में सफलता मिल सकेगी। लेकिन सन् 1976 में आज तक यह घटना चक्र यही बता रहा है कि साम्प्रदायिकता का राक्षस और अधिक सशक्त हो गया है। अतः हमें राष्ट्रीय एकीकरण का हल भारतीय संदर्भ में खोजना पड़ेगा क्योंकि रोग का निदान करते समय रोगों की प्रकृति को भी समझना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस दृष्टि से नीचे दिए गए कारण बहुत अधिक विचारणी हैं –

- **जातिवाद (Casteism)** : जातिवाद की समस्या ने राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा पहुँचाई है। श्री जयप्रकाश नारायण ने एक बार कहा था। ''भारत में जाति सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक दल है।'' जातिय संगठनों ने भारत की राजनीति में वही हिस्सा लिया है जो पश्चिमी देशों में विभिन्न हितों व वर्गो ने लिया है। चुनाव के समय उम्मीदवारों का चयन जाति के आधार पर किया जाता है और चुनाव प्रचार में जाति के नाम पर वोट मांगी जाती हैं। प्रशासन में भी जातियता का समावेश हो गया है।

- **भाषायी उन्माद (Linguistic Fanaticism)** : पश्चिमी विचारधारा पर आधारित इस घातक मानसिक सोच ने राजनीतिक दलों के नेताओं को इतना अधिक भ्रमित कर रखा है कि वे भारत की सभी भाषाओं में मौजूद भावनात्मक और सांस्कृतिक एकता के सूत्र को पहचानकर विभिन्न भाषायी लोगों को लड़ाते रहते हैं। इसी के फलस्वरूप राष्ट्रीयता की भावना के लिए अत्यन्त घातक अंग्रेजी का बोलबाला आज भी देश में बना हुआ है और भारतीय भाषाऐं अपना उचित स्थान प्राप्त नहीं कर सकी हैं।

  भारत एक बहुभाषी राज्य सदैव से ही रहा है। 1927 में जो भाषा सर्वेक्षण प्रकाशित किया गया था उसके अनुसार भारत में 179 भाषाएं, 544 बोलियां तथा कुल मिलाकर 1652 मातृ–भाषाएं थी। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में 1018 भाषाएं बोली जाती हैं। जिनमें 26 मुख्य हैं। संविधान की आठवीं अनुसूची में 18 भाषाओं का वर्णन किया गया हैं।

- **क्षेत्रवाद (Regionalis)** : भारत की सांस्कृतिक एकता को न पहचानने के कारण जनता में जो अज्ञान फैला हुआ है, राजनीतिज्ञ उससे लाभ उठाने के उद्देश्य से राजनीतिक क्षेत्रीयता की संकुचित भावनाएं फैलाते हैं। अनेक राजनीतिक दल भारत को एक राष्ट्र के स्थान पर बहु–राष्ट्रीय राज्य का झूठा प्रचार करके क्षेत्रवाद को ओर भी अधिक पुष्ट करते हैं। कार्यकुशला के स्थान पर धरती के सपूत (Sons of the Soil) का नारा इसी की उपज है तथा देश में अनेक क्षेत्रीय दल खड़े हो गए हैं। वे सभी राजनीतिक स्वार्थो के कारण राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा बनते हैं।

- **निरक्षरता (Illiteracy)** : भारत की अधिकांश जनता अशिक्षित है, जिस कारण स्वार्थी नेता स्वार्थो की पूर्ति के लिए आम जनता को आसानी से मनचाहे रास्ते पर ले जाते है और अनपढ़ जनता स्वार्थो नेताओं की बातों में आकर आन्दोलन के पथ पर चल पड़ती हैं। कई बार आन्दोलनकारियों को यह भी पता नहीं होता कि उनके आन्दोलन का लक्ष्य क्या है और वे किस ओर जा रहे हैं।

स्वार्थी नेता धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि के नाम पर सीधे–सादे लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ करते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं।

- **असन्तुलित विकास (Imbalanced Growth)** : भारत जैसे विशाल देश में समरसता पैदा करने के लिए उसके सभी भागों और इलाकों का सन्तुलित विकास का लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग और व्यक्ति को मिलना चाहिए। लेकिन सन् 1947 से आज तक यह सम्भव नहीं हुआ है। इससे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या और अधिक जटिल हुई है।

- **साम्प्रदायिकता (Communalism)** : भारत एक बहुधर्मी राज्य है। यहाँ अनेक धर्मो के लोग रहते है। भारतीय संविधान में यद्यपि धर्म–निरपेक्ष शासन–प्रणाली की व्यवस्था की है, परन्तु भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या ने दिन प्रतिदिन अधिक गम्भीर रूप धारण किया है। वर्तमान समय में लोगों को अपने राष्ट्र की अपेक्षा अपने धर्म के साथ अधिक प्रेम हैं। लोग धर्म के आधार पर साम्प्रदायिक समूहों में विभाजित किए जा रहे हैं तथा धर्म के नाम पर अनेक साम्प्रदायिक विवाद पैदा होते रहते हैं। विभिन्न धर्मों के लोगों में साम्प्रदायिक सद्भावना की अपेक्षा घृणा तथा अविश्वास की भावना बढ़ी है। यह साम्प्रदायिकता ही 1947 में भारत के दो भागों में विभाजन का कारण बनी थी। 6 दिसम्बर, 1992 को अयोध्या में कार सेवकों ने विवादित ढांचे बाबरी मस्जिद को तोड़ दिया जिस पर देश के विभिन्न भागों में भीषण साम्प्रदायिक दंगे–फसाद हुए। इन दंगों ने 1947 के साम्प्रदायिक दंगों की याद ताजा कर दी। ऐसे दंगों से भारत की एकता तथा अखण्डता खतरे में पड़ गई।

- **गरीबी (Poverty)** : गरीबी राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में महत्वपूर्ण बाधा है। भारतीय समाज की एक विशेषता गरीबी है। गरीब व्यक्ति अपने आपको और अपने परिवार को जीवित रखने के लिए संघर्ष में जुटा रहता है। जब एक गरीब व्यक्ति या गरीब वर्ग किसी दूसरे व्यक्ति या वर्ग को खुशहाल पाता है तो उसमें निराशा और घृणा की भावना उत्पन्न होती है और निराशा राजनीतिज्ञ ऐसे

अवसरों का लाभ उठाकर आन्दोलन करवाते हैं। जो क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से पिछड़े होते हैं, वे आर्थिक विकास के लिए आन्दोलन करते हैं और कई बार अलग राज्य की मांग भी करते हैं।

- **समाजवाद की असफलता (Failure of Socialism)** : समाजवाद की असफलता ने भी राष्ट्रीयकरण की समस्या को पैदा किया है। यदि समाजवाद सफल हो जाता तो आर्थिक विकास का फल सभी को चखने को मिलता, अब बेरोजगारी, पिछड़ापन, गरीबी, आर्थिक असमानता आदि ऐसे ही विघटनकारी आर्थिक तत्व हैं जो देश में भावनात्मक एकता पैदा नहीं होने देते, जिससे गम्भीर राजनीतिक समस्याएं उठ खड़ी होती हैं और देशकी राजनीतिक व्यवस्था को खतरा पहुँचता है।
- **भ्रष्टाचार (Corruption)** : भारतीय प्रशासन एक महत्वपूर्ण भ्रष्टाचार है और इसने भी राष्ट्रीय एकीकरण में बाधा पहुँचाई है। प्रशासन में भ्रष्टाचार का बोलबाला है और चारों तरफ भाई–भतीजावाद चल रहा है। जिसके कारण जनता का विश्वास प्रशासन के प्रति नहीं रहा। इसके फलस्वरूप दंगे–फसाद होते हैं जो राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधक हैं हिंसा और अराजकता के वातावरण ने राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या को और अधिक गम्भीर बनाया है।
- **क्षेत्रीय दल (Regional Parties)** : क्षेत्रीय दलों में वृद्धि राष्ट्रीय एकीकरण के लिए एक समस्या है। भारत में राष्ट्रीय दलों के मुकाबले में क्षेत्रीय दलों की संख्या बहुत अधिक है। क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय हित को महत्व न देकर क्षेत्रीय हितों पर जोर देते हैं। क्षेत्रीय दल अपने राजनीतिक लाभ के लिए लोगों की क्षेत्रीय भावनाओं को भड़कते हैं। आजकल कई राज्यों में क्षेत्रीय दल सत्ता में हैं। क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय हितों को हानि पहुंचाते हैं।
- **विदेशी ताकतें (Foreign Powers)** : विदेशी ताकतें कुछ वर्षो से भारत में अस्थिरता पैदा करने की कोशिश कर रही हैं। भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने कई बार कहा कि विदेशी ताकतों से भारत की एकता व अखण्डता को खतरा

है। पाकिस्तान खुले रूप में पंजाब तथा जम्मू–कश्मीर से आतंकवादियों को आधुनिक हथियार और वितीय सहायता दे रहा हैं।

- **समतायुक्त समाज निर्माण में असफलता (Failure in Building of the Equalitarian Society)** : संविधान निर्माताओं ने धनी–निर्धन, ऊँच–नीच, छोटे –बड़े स्पर्श्य–अस्पर्श्य आदि के सभी भेदभावों को समाप्त करके देश में समतायुक्त समाज के निर्माण का स्वप्न संजोया था। किन्तु देश के आजाद होने के बाद से गरीब व्यक्ति और अधिक गरीब हुआ है तथा अमीर और अधिक अमीर हुआ है। फलतः महलों के साथ झुग्गी–झोपड़ियों की संख्या में हुई बेतहाशा वृद्धि से आर्थिक और सामाजिक असन्तुलन लगातार बढ़ता जा रहा है। इससे जहाँ अमीर वर्ग निर्धन एवं गरीब वर्ग के प्रति अत्यन्त हीनता का भाव रखता है वहाँ दूसरी और साधन हीन वर्ग के मन में इस समृद्धिशाली वर्ग के विरूद्ध जबरदस्त ईर्ष्या, द्वेष और घृणा पनपती है। ऐसे हालात के राष्ट्रीय एकीकरण को बनाए रखना कठिन है।
- **दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली (Defective Educational System)** : भारत की शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। हमारी शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों में चरित्र का निर्माण और अनुशासन कायम करने में सफल नहीं हुई। नैतिक और राष्ट्रीय मूल्यों का विकास नहीं हो रहा। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि अधिकांश शिक्षा संस्थाएं निजी व्यक्तियों तथा संस्थाओं के हाथ में हैं। भारतीय शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय एकीकरण की भावना विकसित करने में सफल नहीं रही।

राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधाओं को दूर करने के उपाय

(Methods to remove the Hindrances in the way of National Inlegzation)

भारत की अखण्डता व एकता को बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय एकीकरण अति आवश्यक है। बिना राष्ट्रीय एकीकरण के राष्ट्रीय अखण्डता को कायम नहीं रखा जा सकता। अतः राष्ट्रीय अखण्डता को बनाए रखने के लिए उन बाधाओं को दूर करना

आवश्यक हैं जो राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में रोड़ा अटकाए हुए हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिए :

- **आर्थिक विकास (Economic Development)** : राष्ट्रीय एकीकरण लाने के लिए देश का आर्थिक विकास करना अति आवश्यक है। बेरोजगारी को दूर करके आर्थिक विषमता को कम करके, गरीबी को दूर करके तथा आर्थिक लाभों को न्यायपूर्ण ढंग से वितरित करके ही राष्ट्रीय एकीकरण की सम्भावना को बढ़ाया जा सकता है।
- **समुचित शिक्षा व्यवस्था (Proper Educational System)** : समुचित शिक्षा व्यवस्था राष्ट्रीय एकीकरण लाने के लिए महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा प्रणाली देश की आवश्यकताओं के अनुकूल होनी चाहिए। शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिससे सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद आदि की समस्याओं को हल किया जा सके। विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रम ऐसे होने चाहिए जिससे विद्यार्थियों में यह चेतना पैदा हो कि वे पहले भारतीय हैं और बाद में पंजाबी, बंगाली, मराठी। पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो विद्यार्थियों में धर्म–निरपेक्ष दृष्टिकोण तथा नैतिक मूल्यों को विकसित करने में सहायक हो।
- **भाषायी समस्या का समाधान (Solution of Language Problems)** : राष्ट्रीय एकीकरण को बनाए रखने के लिए भाषायी समस्या का समाधान करना अति आवश्यक हैं। राज्यों के पुनर्गठन पर दुबारा विचार करना चाहिए तथा जिन लोगों की भाषा के आधार पर मांग न्यायसंगत है, उस राज्य की स्थापना की जानी चाहिए।
- **सामाजिक समानता (Social Equality)** : समाज में विशेष रूप से हिन्दू समाज में प्रचलित ऊँच–नीच की भावना प्रभावशाली ढंग से दूर की जानी चाहिए। पिछड़े हुए वर्ग और हरिजनों में किसी प्रकार की हीनता न रहे और कानूनी संरक्षण दिया जाए। इसी प्रकार की व्यवस्था अल्पसंख्यकों के लिए भी करनी चाहिए।

- **प्रशासन में जनता का विश्वास होना (Faith of People in Administration)** : प्रशासनिक क्षेत्र में मन्त्री और सरकारी कर्मचारी ईमानदार, निष्पक्ष और कार्यकुशल हो। इससे जनता में उनके प्रति विश्वास पैदा होगा। विश्वास के अभाव में बहुत से व्यर्थ के आन्दोलन चलाए जाते है और राष्ट्र को उससे हानि होती है।
- **राष्ट्रीय संस्कृति का विकास (Development of National Culture)** : भारत की संस्कृति प्राचीन और आदर्शमय है। यदि उसका ठीक रूप से विकास किया जाए तो एक राष्ट्रीय संस्कृति का विकास हो सकेगा। जिससे सामाजिक, भावनात्मक और राष्ट्रीय संस्कृति का विकास हो सकेगा और सामाजिक, भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहन मिलेगा।
- **समस्याओं का शीघ्र–से–शीघ्र निराकरण (Quick Solution of Problems)** : भारत में बहुत से आन्दोलन इस कारण से हिंसात्मक बन जाते हैं क्योंकि उनकी समस्या को सुलझाने का उचित प्रयत्न नहीं किया जाता। असम और पंजाब के आन्दोलन इस तथ्य के उदाहरण है। समस्या चाहे भाषा से सम्बन्धित हो या अर्थ से सम्बन्धित हो या अन्य कोई भी हो उसका शीघ्र से शीघ्र निराकरण होना चाहिए।
- **संकीर्ण भावनाओं को दूर करने के प्रयत्न (Removal of Narrow Feelings)** : राष्ट्र की अखण्डता के लिए सबसे अधिक हानिकारक तत्व लोगों की संकीर्ण भावनाएं है। इनको दूर करने के लिए जहाँ उदार शिक्षा एक साधन है, वहाँ समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं और प्रचार के साधनों द्वारा लोगों में उदार दृष्टिकोण का विकास किया जाना चाहिए।
- **विदेशियों पर निगाह रखना (To Watch the Foreigners)** : संसार के बहुत से राज्य भारत के विकास से प्रसन्न नहीं हैं। वे चाहते है कि भारत में ऐसी गतिविधियां पैदा की जाए जिससे कि यह एक महान राष्ट्र न बन सके। भारत में देश द्रोहियों का अभाव नहीं हैं। विदेशी ताकतें इनके सहारे से देश में

गड़बड़ी कराती रहती है। इन पर कड़ी निगरानी रखी जाए। यदि इन विदेशियों की गतिविधियाँ भारत के अहित में हो तो कठोर–से–कठोर कार्यवाही की जाए। ऐतिहासिक आधार पर सिद्ध हुए विदेशी शत्रुओं का किसी भी रूप में विश्वास नहीं किया जाना चाहिए।

- **भ्रष्टाचार को दूर करना (To end corruption)** : राष्ट्रीय एकीकरण लाने के लिए प्रशासन से भ्रष्टाचार समाप्त करना आवश्यक है। भाई–भतीजावाद बन्द होना चाहिए।
- **राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान (To Honour National Symbols)** : राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि सभी भारतीय राष्ट्रीय प्रतीकों को सम्मान करें। राष्ट्रीय झण्डे और राष्ट्रीय गीत का सम्मान करना सभी का कर्त्तव्य हैं।
- **मूल्यों पर आधारित राजनीति (Value-based Polities)** : राष्ट्रीय एकीकरण के विकास के लिए यह आवश्यक है कि राजनीति सिद्धांतों व मूल्यों पर आधारित हो। राजनीतिज्ञों को धर्म, जाति, भाषा, अल्पसंख्यक आदि की राजनीति से मुक्त होना पड़ेगा। पिछले कुछ वर्षो से कुछ नेताओं ने मूल्यों पर आधारित राजनीति की बात कही है, परन्तु आवश्यकता इसको अपनाने की है।
- **साम्प्रदायिक संगठनों पर प्रतिबन्ध (Restrictions on Communal Organisations)** : राष्ट्रीय अखण्डता व एकता को बनाए रखने के लिए साम्प्रदायिक संगठनों एवं दलों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाने चाहिए। परन्तु इसके साथ–साथ ही आवश्यक है कि आम जनता को इस प्रकार के प्रतिबन्धों के औचित्य के सम्बन्धों में प्रशिक्षित किया जाए। 10 दिसम्बर, 1992 को केन्द्रीय सरकार ने विश्व हिन्दू परिषद्, बजरंग दल, शिव सेना, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, जमायते इस्लामी हिंदू, मजलिसए–मुशावरत तथा इस्लामिक सेवक संघ पर प्रतिबंध लगाया था।

भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सरकारी तथा गैर–सरकारी स्तर पर किए गए विभिन्न प्रयास

(Efforts made at Governmental and Non-Governmental Level to Promote National Integration in India)

भारत में राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता को बनाए रखने के लिए समय–समय पर जो प्रयास किए गए हैं, वे निम्नलिखित हैं :

राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन, 1961 (National Integration Conference, 1961)

पं० जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से 28 सितम्बर, 1961 को राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन हुआ जिसमें राष्ट्रीय एकता की समस्या पर विचार किया गया। जो मुख्य निर्णय लिए गए थे वे इस प्रकार हैं –

- प्रथम, प्रत्येक व्यस्क नागरिक यह प्रतिज्ञा करे कि वह झगड़े का निपटारा शान्ति –पूर्वक ढंग से करेगा।
- दूसरे, शिक्षा पद्धति में इस प्रकार सुधार लाया जाए जिससे हिन्दी का विकास हो।
- तीसरे, राजनीतिक दलों, समाचार पत्रों, छात्रों और जनता के लिए आचार संहिता को निश्चित किया जाए।
- चौथे, आर्थिक विकास में पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाए।

इस एकता सम्मेलन में अपनी सिफारिशों को लागू करने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना भी की गई थी।

1963 में संविधान का 16वां संशोधन किया गया। इस संशोधन का उद्देश्य भारत की अखण्डता और प्रभुसत्ता को सुरक्षित रखना है। इस संशोधन द्वारा यह निश्चित किया गया कि राज्य विधानमण्डल या संसद का लड़ने से पहले तथा चुने जाने के बाद प्रत्येक उम्मीदवार को यह शपथ लेनी पड़ती है कि ''मैं भारतीय संविधान के प्रति वफादार रहूंगा और भारत की अखण्डता को बनाए रखूंगा।'' 42वें संशोधन

द्वारा प्रस्तावना में संशोधन करके राष्ट्र की एकता के साथ अखण्डता शब्द भी जोड़ दिया गया है।

राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनर्गठन, 1968

(Re-organisation of National Inligration : Council 1968)

भारत सरकार ने मार्च, 1968 में राष्ट्रीय एकता परिषद् की स्थापना की, जिसमें सभी क्षेत्रों के 55 सदस्य थे। जून, 1968 में इसकी बैठक हुई, जिसमें निम्नलिखित विषयों पर सुझाव दिए गए थे। ये सुझाव क्षेत्रीय एकता, साम्प्रदायिकता और शिक्षा सम्बन्धी थे। यह भी सुझाव दिया गया कि जो व्यक्ति अफवाहें फैलाते हैं, उन्हें दण्ड देना चाहिए। पुलिस अधिकारी, जो अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते, उन्हें पद से हटाने का सुझाव दिया गया था। राज्यों को अधिक सहायता उनके पिछड़ेपन के आधार पर दी जानी चाहिए।

राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सात–सूत्री कार्यक्रम

(Seven Point Action Programme for National Integration)

जून 1975 में आन्तरिक आपातकालीन घोषणा के बाद श्रीमती गांधी ने राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या पर विचार करने के लिए दो समितियों का गठन किया। इनमें एक समिति के अध्यक्ष ब्रह्मानन्द रेड्डी और दूसरी समिति के अध्यक्ष प्रो० नुरूल हसन थे। ब्रह्मानन्द रेड्डी की अध्यक्षता में 28 नवम्बर, 1976 को दिल्ली में एक बैठक आयोजित की गई, जिसमें राष्ट्रीय एकता के लिए सात–सूत्री कार्यक्रम तैयार किया गया ये सात सूत्र छात्र हिंसा, औद्योगिक सम्बन्ध उग्रपंथियों की हिंसा, अल्पसंख्यक, हरिजनों से अच्छा बर्ताव, अनुसूचित जन–जातियों तथा क्षेत्रीय समता से सम्बन्धित है।

1. इसमें कहा था कि विद्यार्थियों की उचित भागों पर विचार किया जाना चाहिए और छात्रों को राजनीति से दूर रहने के लिए कहा जाना चाहिए।
2. एक में एक ही मजदूर संघ के आदर्श का प्रचार करना चाहिए।
3. आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों का आर्थिक विकास करना चाहिए।
4. अल्पसंख्यक वर्ग के छात्रों को देश के प्रगतिशील शिक्षा संस्थानों में भर्ती होने के लिए प्रेरणा और सुविधाएं दी जानी चाहिए।

5. स्वयंसेवी संस्थाओं को चाहिए कि अल्पसंख्यक समाज को युवकों और औरतों को रोजगार कार्यालय में नाम दर्ज कराने और लोक सेवा संघ आयोग विज्ञाप्ति रिक्त स्थानों के लिए प्रार्थना–पत्र देने के लिए प्रेरित करें।

6. अल्पसंख्यक छात्रों से दूर रहने और नफरत पैदा करने वाले तत्वों के विरूद्ध प्रशासनिक कार्यवाही की जानी चाहिए।

7. हरिजनों के बर्ताव के सम्बन्ध में आठ सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। हरिजनों के विरूद्ध भेदभाव को रोकने और विशेष मामलों की तुरन्त जांच करने तथा अपराधियों को प्रभावशाली और उचित सजा देने की मांग की गई है। जनजातियों के विकास के लिए व्यापक नीति बनाई गई। आर्थिक असमानता को दूर करने के लिए पिछड़े क्षेत्रों को केन्द्रीय सहायता देने की मांग की गई है।

हम एक हैं, प्रदर्शनी का आयोजन

1979 में गांधी जयन्ती के अवसर पर हम एक है, प्रदर्शनी का आयोजन किया गया, जिसमें यह दिखलाया गया कि भारत की एकता को बनाए रखने के लिए क्या किया जाए।

राष्ट्रीय एकता की दिशा में

1981 में साम्प्रदायिक सद्भाव सम्बन्धी राष्ट्रीय परिषद् की सिफारिशों के अनुसार गठित की गई। उसकी बैठक 24 अप्रैल, 1981 को हुई, जिसमें ये सिफारिशें की गई : प्रथम, राज्य तथा जिला स्तरों पर राष्ट्रीय एकता समितियों गठित की जाएं। दूसरे, साम्प्रदायिक विवादों को राजनीति से ऊपर रखा जाए। तीसरे, राज्य सरकारें इस विषय में अपने कोष का मूल्यांकन करे। इसी प्रकार की दो बैठकें 4 अप्रैल, 1981 और 22 सितम्बर 1981 को हुई थी।

राष्ट्रीय एकता के लिए प्रयत्न

राष्ट्रीय एकता के लिए 1981 और 1983 में भी इसी प्रकार की बैठकें की गई तथा 1984–1985 में भी ऐसी बैठकें हुई।

राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् का बैठक अप्रैल 1986

जनवरी 1984 के बाद राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की बैठक 7 अप्रैल, 1986 को हुई, जिसमें मुख्य 'पंजाब' में उग्रवादियों की समस्या पर विचार करना था। इस परिषद् का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमन्त्री राजीव गांधी द्वारा किया गया। इस परिषद् में राज्यों के मुख्य मन्त्रियों, राजनीतिक दलों के नेताओं और सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने भाग लिया। इस परिषद् ने साम्प्रदायिकता को दूर करने के लिए राष्ट्रीय नीति का निश्चित करने पर विचार हुआ। पंजाब में लगातार हिंसा तथा सामाजिक तनाव से जो खतरा पैदा हुआ हैं, उसे दूर करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए :

1. धार्मिक स्थानों के प्रयोग के विषय में सहमति होनी चाहिए।
2. उग्रवादियों की समस्या गांधीवादी सिद्धान्तों के आधार पर सुलझानी चाहिए।
3. जनता को खुलकर उग्रवादियों का विरोध करना चाहिए।
4. राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता निश्चित की जाए।
5. धर्म निरपेक्षता के आधार पर शिक्षा संस्थानों में शिक्षा दी जानी चाहिए।
6. अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं पर चौकसी बरतनी चाहिए।

तत्कालीन गृहमन्त्री पी०वी० नरसिम्हा राव ने इस बात पर बल दिया कि राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् को राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए कार्य करना चाहिए।

राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनर्गठन 3 फरवरी, 1990

(Re-organisation of National Integration Council, February 3, 1990)

राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार 3 फरवरी, 1990 को राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनर्गठन किया। तत्कालीन प्रधानमन्त्री वी०पी० सिंह की अध्यक्षता में गठित इस परिषद् के सदस्यों में सात केबिनेट मन्त्री, आठ राष्ट्रीय परिषद् राजनीतिक दलों के प्रमुख, सत्रह मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय दलों के प्रतिनिधि, 40 प्रतिष्ठित व्यक्ति, तेरह पत्रकार, पांच महिलाएं, 5 श्रमिक प्रतिनिधि, 3 आयोगों के अध्यक्ष तथा उद्योग क्षेत्र के राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक हुई, जिसमें तत्कालीन प्रधानमन्त्री वी०पी० सिंह ने घोषणा की कि देश की एकता व अखण्डता को तोड़ने के लिए सक्रिय विरोधी ताकतों से सरकार

किसी तरह का समझौता नहीं करेगी। परिषद् ने असम में बढ़ते पृथकतावाद, कश्मीर के आतंकवाद, पंजाब की हिंसा तथा देश के अन्य भागों में फैलते जातिवाद और साम्प्रदायिकता पर गहरी चिन्ता व्यक्त की। साम्प्रदायिकता पर अकुंश लगाने के लिए कार्य योजना समिति बनाने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किया गया। राम जन्मभूमि बनाम बाबरी मस्जिद विवाद के बारे में एकता परिषद् ने सभी सम्बन्ध पक्षों में अधिकतम संयम बरतने का आग्रह किया और यह अपील की कि इस विवाद को जल्द से जल्द निपटाया जाएगा। तत्कालीन प्रधानमन्त्री वी०पी० सिंह ने कहा था कि राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक वर्ष में तीन बार होगी।

राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनर्गठन व बैठक

अक्तूबर 1991 में तत्कालीन प्रधानमन्त्री नरसिम्हा राव ने राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनर्गठन किया और 2 नवम्बर 1991 के राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक राम जन्मभूमि बनाम बाबरी मस्जिद मामले की पृष्ठभूमि में देश में साम्प्रदायिक सद्भाव कायम रखने के उपायों पर विचार करने के लिए बुलाई गई। राम जन्मभूमि बनाम बाबरी मस्जिद विवाद पर एकता परिषद् की बैठक सफल रही। राव ने परिषद् की बैठक में आम राय बनाने का प्रस्ताव रखा और इसके उत्तर में लगभग सभी नेताओं ने यही कहा कि या तो सभी सम्बद्ध पक्ष अदालत का आदेश माने या फिर बातचीत द्वारा विवाद को हल करें। उत्तरप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री कल्याण सिंह को आश्वासन देना पड़ा कि सरकार हर हालत में बाबरी मस्जिद की रक्षा करेगी। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक साम्प्रदायिक तनाव को कम करने में सहायक सिद्ध हुई।

अनौपचारिक संगठनों द्वारा किए गए कार्य

अनौपचारिक संगठनों में दो संगठन महत्वपूर्ण है : (1) इन्सानी बिरादरी तथा (2) अखिल भारतीय साम्प्रदायिकता विरोधी समिति। इन्सानी बिरादरी की स्थापना अगस्त 1970 में की गई। श्री जयप्रकाश नारायण को संगठन का अध्यक्ष और शेख अब्दुल्ला को उसका उपाध्यक्ष बनाया गया। परन्तु यह संगठन प्रभावशली समिति नहीं हुआ क्योंकि यह संगठन यह भी निश्चित नहीं कर पाया कि देश में किन संगठनों को साम्प्रदायिक संगठन कहा जाए। अखिल भारतीय साम्प्रदायिकता विरोधी समिति की

नेता श्रीमती सुभद्रा जोशी थी। इस संगठन का विश्वास है कि देश में साम्प्रदायिक दंगों के लिए साम्प्रदायवाद की संगठित शक्तियां उत्तरदायी हैं इनमें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ सबसे अधिक प्रमुख हैं। इस समिति का छठा सम्मेलन 1974 में दिल्ली में हुआ था। इस सम्मेलन में साम्प्रदायिक संगठनों पर कानूनी प्रतिबंधों को लगाने की बात कही गई। इस समिति का कहना था कि जनसंघ जैसे साम्प्रदायिक संगठनों के प्रतिनिधियों को राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् में स्थान नहीं दिया जाना चाहिए तथा शिक्षा प्रणाली को धर्म–निरपेक्ष बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। मार्च 1987 में पंजाब के कई स्थानों पर सर्वदलीय सम्मेलन हुए। इन सम्मेलनों में राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को बनाए रखने के संकल्प किए गए। कांग्रेस (इ) ने राजीव गाँधी के नेतृत्व में 10 मई 1990 को राष्ट्रीय एकता, अखण्डता तथा साम्प्रदायिक सौहार्द की और लोगों का ध्यान खींचने के लिए 12 घंटे का देशव्यापी उपवास कार्यक्रम आयोजित किया।

4.7.4 निष्कर्ष

भारत एक विशाल देश है। भारत में संविधान के अन्तर्गत लोकतंत्र धर्म–निरपेक्षता तथा समाजवाद की धारणा को अपनाया गया है। लेकिन इतना होने के बावजूद भी कुछ समाज–विरोधी तथा राष्ट्र–विरोधी तत्व भारत की एकता एवं अखण्डता के मार्ग में बाधा बने हुए हैं। भारत में किसी भी नागरिक के साथ किसी भी आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता है। लेकिन फिर भी राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या एक गम्भीर समस्या बनी हुई हैं। इस समस्या के उचित समाधान पर भी भारतीय राष्ट्र सरकार, राजनीतिक दलों तथा गैर–सरकारी संस्थाओं और संगठनों द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण के कार्य की सफलता को विश्वसनीय बनाने के लिए भरपूर प्रयत्न किए जाने चाहिए। इस मन्तव्य के लिए जो भी कदम उठाए जाने अनिवार्य हैं, उन कदमों को उठाने में देरी नहीं की जानी चाहिए। वर्तमान समय में भारतीय राष्ट्र काफी गम्भीर अवस्था में से गुजर रहा है। इसलिए यह अनिवार्य है कि राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की सिफारिशों को वास्तविक रूप देने के अतिरिक्त अन्य प्रत्येक प्रकार के ऐसे कदम उठाए जाए जिससे भारतीय लोगों का भावनात्मक तथा राष्ट्रीय एकीकरण हो सके।

अनेक रूपता भारतीय जीवन का विशिष्ट गुण रहा है। संविधान द्वारा 'अनेकता में एकता' की प्राप्ति का अनूठा प्रयास किया गया, किन्तु संविधान के क्रियान्वयन के पश्चात् इन विविधताओं से देश की एकता को खतरा पैदा हो गया और प्रादेशिकता, भाषावाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, आर्थिक विषमता, अस्पृश्यता आदि देश की प्रमुख समस्याएं बनी हुई है। अतः इन समस्याओं के निराकरण का प्रयास प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है।

4.7.5 मुख्य शब्दावली

- साम्प्रदायिकता – धर्म के आधार पर लोगों में वैमनस्य
- अस्पृश्यता – छुआछूत
- अल्पसंख्यक – वो जातियाँ जिनकी जनसंख्या कम है

4.7.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत में राष्ट्र–निर्माण गतिविधियों के लिए खतरा उत्पन्न करने वाले प्रमुख विषयों और समस्याओं को पहचानिए।
2. राष्ट्रीय एकीकरण से आप क्या समझते हैं ? भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में कौन–कौन सी बाधाएँ हैं ?
3. भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा डालने वाले विभिन्न कारकों की समीक्षा कीजिए।
4. राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में कौन–सी बाधाएँ है।
5. राष्ट्रीय एकीकरण के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए ?

4.7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966

- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998

- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.8 पंचायती राज (Panchayati Raj)

4.8.1 परिचय

लोकतंत्र की वास्तविक क्रियान्वित तभी पूरी मानी जाती है जब शासन के सभी स्तरों पर लोगों की भागीदारी हो। जनसाधारण का शासन से सीधा सम्पर्क तथा उनकी नागरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का आरम्भ स्थानीय स्तर से ही आरम्भ होता है। यह स्थानीय क्षेत्र चाहे शहर हो या गाँव। इसलिए इन स्तरों पर नागरिक सुविधाओं को पहुंचाने, विकास कार्यो सम्बन्धी निर्णय लेने, उन्हें लागू करने तथा इस स्तर पर लोगों की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को एकत्रित करने के लिए किसी न किसी रूप में संस्थाएं बनाई जाती है। लोकतांत्रिक सिद्धान्तों की मांग है कि यह संस्थाएं प्रतिनिधितात्मक और उत्तरदायी हो। इसलिए लोकतांत्रिक देशों में स्थानीय स्वशासन को महत्व दिया जाता है। भारत की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गाँवों में रहती है। इसलिए ग्रामीण स्तर पर स्वशासन का विशेष महत्व है। इस सम्बन्ध में देश में पंचायती राज की स्थापना की गई है। परन्तु पंचायती राज संस्थाएं केवल संरचनात्मक ढांचे ही नहीं हैं लोगों को राजनीति में लाने तथा ग्रामीण स्तर पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया को ले जाने में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए इनका विश्लेषण तथा मूल्यांकन आवश्यक हो जाता हैं।

भारत में अंग्रेजी उपनिवेशिवाद के समय से ही स्थानीय शासन के महत्व को समझा जाने लगा था। प्रशासन की इकाई जिला स्थापित की गई थी। जिला स्तर पर प्रशासन की व्यवस्था जिला अधिकारी के अधीन थी। जिला अधिकारी को कलक्टर, जिलाधीश (Collector, District, Matgistrate) इत्यादि नामों से भी पुकारा जाता था। जिले में कानून तथा शान्ति की व्यवस्था करना, राजस्व इक्ट्ठा करना तथा विकासीय कार्यो को करना, तीनों ही क्षेत्र जिला अधिकारी के अधीन थे। जिला अधिकारी सामान्यतः भारतीय प्रशासनिक सेवा का अफसर हुआ करता था।

1882 में लार्ड रिपन के शासन के कार्य काल में स्थानीय स्तर पर प्रशासन में लोगों को शामिल करने के कुछ प्रयास आरम्भ हुए। इसके लिए जिला स्तर पर जिला बोर्डो की स्थापना की गई। इनमें स्थानीय लोगों को मनोनीत किया जाता था। भारत के गांवों में सदियों से प्रचलित पंचायत व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के प्रति भी कुछ कदम उठाए गए। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में पंचायतों की परम्परा को छोटे गणराज्य कह कर उनकी प्रशंसा की जाती थी। महात्मा गांधी विशेष रूप से पंचायतों के प्रशंसक थे। भारत में स्वशासन की अत्यन्त पुरानी परम्परा के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। इसलिए गांधी जी की यह धारणा भी थी कि स्वतंत्र भारत का आधार गांवों से ही आरम्भ होगा। हर गांव, उन मामलों को छोड़कर जहां अन्यों के साथ निर्भरता आवश्यक है, अपने आप में स्वतंत्र तथा आत्म निर्भर होगा। राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा महत्व दिए जाने के कारण तथा स्वयं ब्रिटिश शासन द्वारा लोगों को अपने प्रशासन में शामिल करने के लिए 1930 तथा 1940 के दशक में अनेक प्रान्तों में पंचायती राज लागू करने के कुछ कानून बनाए गए। स्वाभाविक रूप से यह सीमित तथा अपर्याप्त थे।

4.8.2 उद्देश्य

- पंचायती राज का गठन कैसे होता है
- पंचायती राज से सम्बन्धी संवैधानिक प्रबन्धों को जानना
- भारतीय लोकतन्त्र में पंचायत राज की महत्ता क्या है
- पंचायती राज–व्यवस्था की क्या कमियाँ है
- इन कमियों को कैसे दूर किया जा सकता है

4.8.3 संविधान तथा पंचायती राज (Constitution and Panchayati Raj)

राष्ट्रीय आन्दोलन के समय महात्मा गांधी ग्रामीण स्वतंत्रता तथा स्थानीय प्रशासन की वकालत करते रहते थे, वहां आन्दोलन के अन्य प्रमुख नेता पश्चिमी विचारों से प्रभावित थे। उनके अनुसार राज्य निर्माण तथा विकास के लिए केन्द्रीकृत राष्ट्र राज्य की अवधारणा महत्वूपर्ण थी। अतः जब संविधान निर्माण का कार्य शुरू

हुआ। उस समय गांधी जी के विचारों के विशेष महत्व नहीं दिया गया। संविधान के प्रथम प्रारूप में पंचायती राज संस्थाओं का कोई प्रयोजन नहीं रखा गया। जब महात्मा गांधी और उनके समर्थकों को यह पता चला तो उन्होंने अपना असन्तोष प्रकट किया और इस बात के लिए दबाव डाला कि पंचायती राज को संविधान में स्थान दिया जाए ताकि भविष्य में निर्मित होने वाले भारत का आधार लोकशक्ति बन सकें। इस दबाव के कारण तथा गांधी जी की भावनाओं का आदर मात्र करने के लिए संविधान के अन्तिम रूप में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अध्याय में अनुच्छेद 40 में राज्य को निर्देश दिया गया कि वह गांवों में पंचायतों की स्थापना करने तथा उन्हें ऐसी शक्तियां देने के लिए उचित कदम उठाएगा जो स्थानीय स्वशासन करने का कार्य राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया क्योंकि पंचायती राज विषय राज्य सूची में रखा गया था। निस्संदेह अन्य नीति निर्देशक सिद्धान्तों की तरह अनुच्छेद 40 भी न्यायबाध्य नहीं था और इसका लागू करना राज्यों की इच्छा पर था। संविधान लागू होने के आरम्भिक वर्षो में इस दिशा में कोई विशेष कदम नहीं उठाये गए। बाद में नियोजन के संदर्भ में लोगों की भागीदारी की आवश्यकता को देखते हुए इस दिशा में कुछ सोच आवश्यक हुई।

सामुदायिक विकास तथा मेहता कमेटी

(Community Development and Mehta Committee)

विकास के लिए नियोजन के आदर्श को मानने तथा योजना आयोग की स्थापना के पश्चात् 1952 में इस विचार के साथ कि योजनाओं की क्रियान्वित में लोगों की भागीदारी उचित है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य था कि एक गांव या गांवों के समूह में सामाजिक कार्यकर्त्ताओं तथा विशेषज्ञों की एक टीम भेजी जाए जो गांव के लोगों से उनकी आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त कर उन्हें यह सुझाएं कि वह किस तरह सामुदायिक आधार पर एक दूसरे की सहायता से तथा उचित संगठनों के माध्यम से स्वयं गांव या गांवों के समूह के स्तर पर ही उन आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं। सामुदायिक विकास का यह कार्यक्रम सफल नहीं रहा। इस विफलता के कारण दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान योजना

आयोग ने इस कार्यक्रम को समीक्षा के लिए 1956 में श्री बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की।

मेहता कमेटी ने अपनी रिर्पोट में कहा कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम इसलिए विफल रहा क्योंकि यह स्थानीय लोगों में आवश्यक रूचि पैदा नहीं कर सका। कमेटी ने सुझाव दिया कि पुराने जिला बोर्डो को समाप्त करके तीन स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की जाए। यह तीन स्तर होगें जिला, ब्लॉक तथा गांव और इनमें सीधा सम्बन्ध और सम्पर्क होगा। हर स्तर को उसकी क्षमता तथा आवश्यकता के अनुसार शक्तियाँ हस्तान्तरित की जाएगी।

तीन स्तरों में सबसे नीचे थी ग्राम पंचायत यह ग्राम पंचायत ग्राम सभा के द्वारा चुनी जाती थी और उसके प्रति उत्तरदायी थी। गांव के सभी व्यस्क निवासी ग्राम सभा के सदस्य होने थे। वर्ष में कम से कम दो बार इसकी बैठक अनिवार्य थी। ग्राम पंचायत की सदस्य संख्या 5 से 30 के बीच सुझाई गई। इसका कार्यकाल 5 वर्ष सुझाया गया। एक गांव या गांवों के समूह के लिए एक ग्राम पंचायत की व्यवस्था सुझाई गई। पंचायती राज का दूसरा स्तर ब्लॉक समिति सुझाया गया। ब्लॉक गांवों के क्षेत्रीय समूह से बनता है। ब्लॉक समिति में कुछ सदस्य पंचायतों द्वारा चुने हुए रखे गए और कुछ पदेन जैसे ग्राम पंचायतों के सरपंच। तीसरा स्तर था जिला परिषद् जिला प्रशासन की मूल इकाई माना जाता है। पंचायती राज की तीन स्तरीय व्यवस्था में यह शिखर पर रखा गया। इनमें कुछ चुने सदस्य कुछ पदेन सदस्य जैसे ब्लॉक समितियों के अध्यक्ष तथा कुछ मनोनीत सदस्य अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं के रखे गए। जिला अधिकारी जिला परिषद् का अध्यक्ष रखा गया। इस प्रकार बलवन्त राय मेहता कमेटी ने स्थानीय स्वशासन के लिए एक तीन स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिश की। इस पर कानून बनाने या इन्हें मानने का अधिकार राज्य सरकारों को था।

पंचायती राज व्यवस्था के रूप (Pattern of Panchayati Raj)

बलवन्त राय मेहत कमेटी की रिर्पोट के बाद राजस्थान तथा आन्ध्र प्रदेश पहले राज्य थे। जिन्होंने इस रिर्पोट के आधार पर पंचायती राज व्यवस्था लागू की। इन

राज्यों में मूलतः रिर्पोट के आधार पर ही तीन स्तरीय ढांचा स्थापित किया 1960 के दशक में अनेक अन्य राज्यों ने भी कानून बनाकर पंचायती राज लागू किया। राज्यों में इस व्यवस्था के अपने अपने कानून थे। इसलिए सभी में इसका स्वरूप एक समान नहीं था। परन्तु मुख्यतः यह व्यवस्था दो प्रकार की थी। राजस्थान तथा आन्ध्रप्रदेश ने मुख्यतः मेहता कमेटी की रिर्पोट को आधार माना। इसमें जिला परिषद् ब्लॉक समिति तथा ग्राम पंचायत का गठन किया गया। सर्वाधिक महत्व ब्लॉक समिति को दिया गया। जिलाधिकारी की सक्रिय भूमिका रखी गई। अनेक अन्य राज्यों ने भी इस प्रणाली को अपनाया।

महाराष्ट्र, गुजरात तथा कुछ अन्य राज्यों ने भी मूलतः मेहता कमेटी के सुझावों को माना परन्तु उन्होंने परिषद् को अधिक महत्व दिया। हरियाण, जम्मू–कश्मीर, केरल तथा कुछ अन्य राज्यों ने दो स्तरीय व्यवस्था स्थापित की। इसमें जिला परिषद् नहीं थी। तमिलनाडु तथा कर्नाटक में जिला परिषद् के स्थान पर जिला विकास परिषद् बनाई गई।

कुल मिलाकर 1980 के दशक के अन्त तक अधिकतर राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में किसी न किसी प्रकार की पंचायत राज व्यवस्था कार्य कर रही थी। इन संस्थाओं को अपने लिए धन इक्ट्ठा करने के लिए कुछ साधन उपलब्ध थे जैसे भूमि राजस्व का एक भाग, गांव में मेलों बाजारों इत्यादि पर कर लगाने का अधिकार इत्यादि। परन्तु मुख्य रूप से धन के लिए संस्थाएं राज्य सरकार पर निर्भर थी। केवल धन ही के लिए नहीं अपितु अपने अस्तित्व के लिए भी यह राज्य सरकार की कृपा दृष्टि पर निर्भर थी, क्योंकि राज्य सरकारें इन्हें अपनी इच्छा पर निलम्बित या भंग कर सकती थी। सिद्धान्त गांव में सत्ता की राजनीति से अलग रखने के विचार से अधिकतर राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव में राजनीतिक दलों के भाग लेने पर रोक थी। व्यवहार में राजनीतिक दल अपने दलीय चिन्ह के बिना चुनावों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे।

व्यवस्था की विफलता

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के लोकतान्त्रिकरण तथा विकास के लिए पंचायतीराज एक महत्वपूर्ण प्रयोग था। सम्भावना यह थी कि लोगों के पास निर्णय लेने की शक्ति आने से तथा पंचायत संस्थाओं के सफल कार्य से ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक सहयोग, भाईचारा और आत्मविश्वास बढ़ेगा तथा सामाजिक न्याय की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिलेगा। परन्तु दुर्भाग्यवंश व्यवहार में ऐसा कुछ नहीं हुआ। शीघ्र ही पंचायत संस्थाएं राजनीति सत्ता संघर्ष में फस गई। यह ग्रामीण क्षेत्रों में पहले से स्थापित विशिष्ट और उच्च वर्गो के हितों की रक्षा का साधन बनने लगी। अपने धन, जातीय सम्बन्धों तथा सामाजिक शक्ति के आधार पर इन लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से पंचायतों पर अपना अधिकार स्थापित करना शुरू कर दिया। सरकारी अफसर तथा कार्यकर्त्ता एक ओर अपने जातीय तथा अन्य सम्बन्धों के कारण इन वर्गो के प्रति संवेदनशील थे तो दूसरी और अपनी प्रकृति तथा पृष्ठभूमि से ग्रामीण विकास तथा लोकतान्त्रिक उत्तरदायित्व के अनुकूल नहीं थे। इस प्रकार पंचायती राज संस्थाओं को चलाने के लिए जो आवश्यक प्रशासनिक सहयोग तथा समर्थन चाहिए था वह उपलब्ध नहीं था। तीसरे, राज्य सरकारें तथा विधायक पंचायतों के महत्वपूर्ण एवं सक्रिय बनने से चिन्तित थे। उन्हें भय था कि इस प्रकार जन साधारण से उनका सीधा सम्पर्क कम हो जाएगा तथा चुनावों में समर्थन के लिए वह पंचों तथा सरपंचों के सहयोग पर आश्रित हो जाएगे। इसलिए राज्य सरकारों ने पंचायती राज संस्थाओं एवं अधिकार देने में विशेष रूचि नहीं ली।

1970 के दशक के शुरू से भारत में व्यक्तिवादी तथा शक्तियों के केन्द्रीकरण की राजनीति का विकास होने लगा। इसके साथ ही इस समय से प्रशासनिक अधिकारियों तथा राजनीतिज्ञों में सांठ–गांठ भी बढ़ने लगी। इसका सीधा परिणाम था जन प्रतिनिधियों की अवहेलना विशेष रूप से निचले स्तर पर प्रधानमंत्री द्वारा तथा राज्य स्तर पर मुख्यमंत्रियों द्वारा सत्ता के निजीकरण की प्रक्रिया ने पंचायतों को लगभग पूरी तरह से निष्क्रिय कर दिया। 1980 के दशक तक आते–आते पंचायती राज संस्थाओं की विफलता स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी। संक्षेप में इसके कारण निम्नलिखित कहे जा सकते हैं :

1. राज्य सरकारें पंचायती संस्थाओं के चुनाव नियमित रूप से नहीं करवाती थी।
2. यदि चुनाव करवाये भी जाते थे तो किसी न किसी बहाने इन संस्थाओं को निलम्बित या भंग कर दिया जाता था और लम्बे समय तक इन्हें सीधा प्रशासिनक अधिकारियों के अधीन रखा जाता था।
3. पंचायत राज संस्थाओं के पास धन के अपने संसाधन नाम मात्र थे और राज्य सरकारें अनुदान देने में अनेक प्रकार की आनाकानी करती थी।
4. ग्रामीण तथा स्थानीय स्तर पर धनी तथा शक्तिशाली वर्ग धन, हिंसा तथा बेईमानी के तरीकों से इन संस्थाओं पर नियन्त्रण बनाए हुए थे।
5. पंचायती राज संस्थाओं को प्रदान की गई प्रशासनिक सेवाएं न केवल अपर्याप्त तथा अकुशल थी अपितु अनेक मामलों में नकारात्मक थी।

अशोक मेहता कमेटी (Ashok Mehta Committee)

1977 में आपातकालीन के बाद जनता पार्टी की सरकार बनी। अपने चुनाव घोषणा पत्र में इस सरकार ने गांधीवादी व्यवस्था तथा विकेन्द्रीकरण के प्रति अपनी वचनबद्धता की घोषणा की थी। वैसे भी इस समय तक तत्कालीन पंचायती राज कार्यप्रणाली की बहुत अधिक आलोचना हो रही थी। अतः जनता पार्टी सरकार ने 1977 में ही अशोक महता की अध्यक्षता में 13 सदस्यों की एक समिति गठित की और इसे पंचायती राज व्यवस्था में सुधार के लिए सुझाव देने को कहा।

अशोक महता कमेटी ने अपनी रिर्पोट में कहा कि पंचायतों को कार्य करने के उचित अवसर नहीं दिए गए, अफसरशाही ने उनके कार्यो में रूकावट डाली है, राज्य सरकारों ने धन तथा अधिकार प्रदान में संकोच किया है तथा अधिकार प्रदान में संकोच किया है तथा धनी एवं विशिष्ट वर्गो ने इस संस्थाओं को अपने अधीन रखा है। विकास तथा नियोजन में पंचायतों की भागीदारी न होने के कारण भारत में नियोजित विकास जन आकांक्षाओं के अनुकूल नहीं रहा। इसलिए मेहता कमेटी ने पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने और उन्हें कार्यशील बनाने की सिफारिश की।

अशोक मेहता कमेटी का यह विचार था कि सारे देश के लिए कोई एक निश्चित व्यवस्था होना अनिवार्य नहीं है। परिस्थितियों के अनुसार अलग–अलग राज्यों

में इनके भिन्न स्वरूप हो सकते हैं। फिर भी कमेटी का मत था कि जिला विकेन्द्रीकरण का पहला स्तर होना चाहिए। ब्लॉक नियोजन का स्तर न होकर केवल जिला परिषद् का कार्यकारिणी अंग होना चाहिए। कमेटी का सुझाव था कि कुछ गांवों को इक्ट्ठा करके मण्डल पंचायतों की स्थापना की जाए। विकासीय कार्यो का मुख्य केन्द्र यह मण्डल पंचायतें हो। कमेटी ने एक प्रकार से दो स्तरीय व्यवस्था का समर्थन किया।

अशोक मेहता कमेटी ने जिला परिषद् तथा ग्राम पंचायत दोनों ही के लिए चुनाव का सुझाव दिया यद्यपि जिला स्तर पर कुछ पदेन सदस्यों की व्यवस्था भी थी। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए जनसंख्या में उनके अनुपात के अनुसार स्थान सुरक्षित रखने का सुझाव दिया गया सीधे चुनावों के साथ–साथ चुनावों में राजनीतिक दलों के भाग लेने को भी समिति ने उचित माना। आशानुसार समिति ने पंचायतों को निश्चित तथा अधिक शक्तियां तथा संसाधन प्रदान करने की सिफारिश की। 1980 में जनता पार्टी की सरकार समाप्त होने तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में पुनः कांग्रेस सरकार के गठन से समिति के सुझाव चर्चा का विषय बन कर रह गए।

पंचायती राज : संविधान संशोधन

1980 में कांग्रेस (इ) के सत्ता के आने व श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा केन्द्रीकरण की राजनीति के बावजूद देश में निर्धनता समाप्त करने के लिए चलाए जाने वाले कार्यक्रमों, विकास की आवश्यकताओं तथा जनसंतोष के लिए प्रशासन तथा विकास में पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी का महत्व स्पष्ट हो रहा था। 1983 में जिला स्तर पर नियोजन के लिए अध्ययन के लिए स्थापित श्री सी०एच० हन्नुमंततीया की अध्यक्षता में गठित समिति तथा 1985 में ग्रामीण विकास तथा गरीबी के विरूद्ध प्रशासनिक व्यवस्था के पुनर्निरीक्षण के लिए श्री जी०वी०के० राओ की (G.V.K. Rao) अध्यक्षता में बनाई गई समिति दोनों ने पंचायती राज की आवश्यकता पर जोर दिया। 1987 में पंचायती राज पर सुझाव देने के लिए श्री एल०एम० सिंघवी को अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने सुझाव दिया कि निचले स्तर पर नियोजन

के लिए पंचायती राज संस्थाओं का सहयोग आवश्यक है। समिति ने कहा कि पंचायत संस्थाओं को सुनिश्चित रूप देने के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन किए जाए। केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर अपनी रिर्पोट में सरकारिया आयोग ने भी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को सुदृढ़ करने तथा उसके लिए संविधान में आवश्यक संशोधन की सिफारिश की। संसद सदस्य श्री पी०के० थुगन की अध्यक्षता में जिला स्तर पर राजनीतिक, प्रशासनिक तथा नियोजन विधि के अध्ययन के लिए गठित संसदीय समिति ने 1988 में अपनी रिर्पोट में कहा कि जिला स्तर पर नियोजन तथा विकास के लिए केवल जिला परिषद् ही उचित माध्यम है। इस समिति ने सुझाव दिया कि पंचायती संस्थाओं के चुनाव तथा कार्यकाल को निश्चित करने के लिए संवैधानिक व्यवस्था की जाए।

इन सब समितियों की सिफारिशों और बुद्धिजीवियों तथा विशेषज्ञों द्वारा सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर जोर देने के साथ–साथ श्री राजीव गांधी भी उत्तरदायी प्रशासन की स्थापना के प्रति चर्चा कर रहे थे। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने अनेक राज्यों में जिला अधिकारियों के सम्मेलन बुलाए। इन सम्मेलनों में यह बात उभर कर आई कि उत्तरदायी प्रशासन तथा नियोजन के लिए आवश्यक था कि पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों को संवैधानिक आधार पर सुनिश्चित किया जाए। 30 जुलाई 1988 को दिल्ली में बुलाए गए मुख्य सचिवों के सम्मेलन में प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने घोषणा की कि पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए संविधान में संशोधन किया जाएगा।

उपरोक्त घोषणा के बाद सरकार ने 1989 में संसद में संविधान संशोधन के लिए 64वां संशोधन बिल प्रस्तुत किया। इस प्रस्तावित संशोधन बिल के मुख्य तत्व इस प्रकार थे :

1. सभी राज्यों में तीन स्तरीय पंचायती राज संस्थाएं होगी।
2. इन संस्थाओं के लिए चुनाव आयोग के निरीक्षण में प्रत्येक पांच वर्ष के बाद चुनाव होंगे।

3. पंचायती राज की सभी संस्थाओं में सभी स्थानों को चुनाव द्वारा भरा जायेगा, पदाधिकारी सीधे चुने हुए सदस्यों में से होंगे।
4. इन संस्थाओं में 30 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे तथा अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए जनसंख्या में प्रतिशत के आधार पर स्थान आरक्षित रहेंगे।
5. पंचायती राज संस्थाओं को राज्य सरकार से धन मिलेगा। इसके अतिरिक्त यह संस्थाएं निर्धारित मुद्दों पर कर, ड्यूटी तथा टोल आदि लगाकर भी धन इक्ट्ठा कर सकेगी।
6. पंचायती राज संस्थाएं अपने क्षेत्र के लोगों के लिए आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय तथा सामाजिक कल्याण के लिए योजनाएं बनाएगी।
7. पंचायती राज संस्थाओं के लेखों की कड़ी जांच की जाएगी। भारत का महालेखों परीक्षक पंचायतों के हिसाब–किताब का निरीक्षण करेंगे।

यद्यपि संविधान संशोधन प्रस्तुत करने के पीछे यह विचार व्यक्त किया गया था कि इसका लक्ष्य पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ़ करना और शक्तियों का विकेन्द्रीकरण था परन्तु और परिस्थितियों में यह बिल लाया गया और इसमें शामिल कुछ प्रयोजनों के कारण सामान्यतः राज्यों को यह संदेह हुआ कि संविधान का वास्तविक लक्ष्य केन्द्र सरकार द्वारा गांवों के लोगों से सीधा सम्पर्क स्थापित करना था। दूसरे शब्दों में केन्द्र राज्य सरकारों की शक्ति तथा भूमिका को कम करना चाहता था और अखिल भारतीय सेवाओं के जिला अधिकारियों की शक्ति बढ़ाना चाहता था। इस सन्देह के कारण अधिकतर विरोधी दल 64वें संशोधन के प्रस्तुत रूप से सन्तुष्ट नहीं थे। कांग्रेस के व्यापक बहुमत के कारण यह बिल लोकसभा में तो पारित हो गया। परन्तु आवश्यक बहुमत के अभाव में यह राज्य सभा में पारित नहीं हो सका।

संविधान का 73वां संशोधन (73rd Amendment of the Constitution)

राज्यों के संदेह तथा विरोधी दलों के विरोध के कारण 64वां संशोधन बिल पारित नहीं हो सका। परन्तु इस समय तक पंचायती राज के पुनर्जीवन की आवश्यकता तथा इसको महत्वपूर्ण बनाने की आकांक्षाएं आम चर्चा का विषय बन चुकी थी। 1989

के चुनावों में लगभग सभी राजनीतिक दलों ने अपने घोषणा पत्रों में इसके लिए उचित कदम उठाने की बात कही। अतः राष्ट्रीय मोर्चे के सत्ता में आने से एक उचित विधि बनने की आशा बनी। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने संशोधन बिल में कुछ परिवर्तन किए। इनके अनुसार पंचायती राज संस्थाओं का कार्य काल पांच वर्ष के लिए सुनिश्चित किया गया। इनकी स्वायत्तता की व्यवस्था की गई। चुनाव करवाने का अधिकार तथा कार्य केन्द्रीय चुनाव आयोग के स्थान पर राज्य चुनाव आयोग को सौंपा गया। इसी प्रकार लेखा परीक्षा की शक्ति राज्य लेखा परीक्षक को सौंपी गई। महिलाओं तथा अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए साधारण सदस्यों के अतिरिक्त अध्यक्ष पद के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था की गई। नये संशोधन बिल को राज्य सरकारों तथा विरोधी राजनीतिक दलों के साथ विचार–विमर्श के बाद 2 सितम्बर 1990 को लोकसभा में 74वें संविधान संशोधन बिल के रूप में प्रस्तुत किया गया। इस बिल पर चर्चा शुरू होने से पहले ही राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का पतन हो गया तथा बाद में लोकसभा भंग हो गई। परिणामस्वरूप बिल समाप्त हो गया।

1991 में चुनाव के बाद श्री पी०वी० नरसिम्हा राव के नेतृत्व में पुनः कांग्रेस की सरकार बनी। अपने स्पष्ट बहुमत की कमी तथा देश में बन चुके वातावरण के कारण इस सरकार को भी सर्वमान्य कानून बनाने की आवश्यकता महसूस हुई। अतः अनेक दलों से विचार विमर्श करके नया संशोधन बिल 16 सितम्बर 1991 को लोक सभा में पेश किया गया। सदन ने गहन विचार के लिए इस बिल को संसद के 30 सदस्यों की संयुक्त समिति को सौंप दिया। संसद के दोनों सदनों तथा विभिन्न दलों के सदस्यों से गठित इस समिति के विचार तथा सुझावों के बाद 22 सितम्बर 1992 को संविधान संशोधन (73वां) बिल लगभग पूर्ण सहमति से पारित हो गया। शीघ्र ही इस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो गए तथा 20 अप्रैल 1993 को अधिसूचना जारी होने पर देश संवैधानिक रूप से स्थापित नई पंचायती राज व्यवस्था लागू हो गई। संविधान के 73वें संशोधन से स्थापित पंचायत राज व्यवस्था के मूल तत्व निम्नलिखित हैं :

1. पंचायती राज की स्थापना के लिए संविधान में नए अनुच्छेद 243 ए से 243 डी तथा एक नई अनुसूची 11 जोड़ी गई हैं। इन अनुच्छेदों तथा अनुसूची द्वारा पंचायती राज संस्थाओं का गठन, प्रक्रिया तथा शक्तियों का वर्णन किया है।
2. सभी राज्यों में पंचायती राज का स्वरूप एक समान होगा। यह तीन स्तरीय व्यवस्था पर आधारित होगा।
3. तीनों स्तरों के सदस्यों के चुनाव सीधे प्रत्यक्ष व्यस्क मताधिकार के आधार पर होंगे जिला तथा ब्लॉक स्तर पर अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होगा। चुनाव अनिवार्य तथा निश्चित पांच वर्ष के कार्यकाल के लिए होंगे। यदि निर्धारित व्यवस्था के अनुसार किसी स्तर को पांच वर्ष से पहले भंग किया जाता है तो 6 महीने के अन्दर–अन्दर दुबारा चुनाव कराऐं जाऐगें।
4. अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए जनसंख्या में प्रतिशत के अनुपात में स्थान सुरक्षित होंगे। कम से कम एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों के लिए चुनाव क्षेत्रों को समय–समय पर बदला जा सकता है। अध्यक्ष पद तथा अन्य पदों के लिए भी इन वर्गो के लिए आरक्षण की व्यवस्था होगी।
5. संविधान की ग्याहरवीं सूची में वर्णित शक्तियों और अधिकारों के अतिरिक्त आर्थिक नियोजन तथा विकास और सामाजिक न्याय इत्यादि सम्बन्धित योजनाएं बनाने और उन्हें लागू करने के अन्य अधिकार भी राज्य की विधायिका कानून बनाकर पंचायती राज संस्थाओं को दे सकती है।
6. राज्य विधायिका को शक्ति दी गई है कि वह कानून द्वारा पंचायती राज्य संस्थाओं को कर, टोल आदि लगाने, उन्हें एकत्रित करने तथा इस्तेमाल करने का अधिकार दे। राज्य सरकारें इन संस्थाओं को अनुदान भी दे सकती है। यह व्यवस्था भी की गई है कि प्रत्येक राज्य हर पांच वर्ष या उससे पहले एक वित्त आयोग का गठन करेगा। यह आयोग राज्य सरकार तथा स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में संसाधनों के वितरण के बारे में सुझाव देगा।

7. पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव राज्य चुनाव आयोग के द्वारा करवाये जाऐंगे। इसी प्रकार पंचायती राज्य संस्थाओं के हिसाब–किताब की जांच राज्य लेखा परीक्षक के द्वारा की जाएगी।

कुल मिलाकर अब पंचायती राज संवैधानिक रूप से स्थापित तथा अनिवार्य व्यवस्था बन गया है। कुछ आलोचकों ने स्थापित की गई व्यवस्था की कुछ कमजोरियों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। यह निम्नलिखित हैं :

1. नई व्यवस्था के अनुसार सभी राज्यों में एक ही प्रकार की व्यवस्था की स्थापना की गई। कई राज्यों में यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, परम्पराओं तथा वहां के सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिकूल हो सकती है।
2. विभिन्न स्तरों पर संसद सदस्यों तथा विधायकों को संस्थाएं का पेदन सदस्य बनाया गया है यद्यपि इन सदस्यों को मत का अधिकार नहीं होगा फिर भी इनकी उपस्थिति तनाव या मतभेद उत्पन्न कर सकती है।
3. राज्यों को पंचायती राज संस्थाओं को निलम्बित तथा भंग करने के अधिकार दिए गए है। यद्यपि भंग करने के पश्चात् चुनाव अनिवार्य है परन्तु संविधान उन कारणों तथा परिस्थितियों का स्पष्ट वर्णन नहीं करता जिनसे ऐसा किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में राज्य सरकारें इस शक्ति का प्रयोग राजनीतिक दृष्टिकोण से कर सकती है।
4. संविधान केवल मूल आधार प्रदान करता है प्रत्येक राज्य में निश्चित व्यवस्था के लिए राज्य विधायिकाए कानून बनाती है। अनेक राज्यों द्वारा बनाए कानून इस ओर इशारा करते है कि जनता द्वारा चुने गए सदस्यों को कम तथा सरकारी अफसरों को अधिक अधिकार दिए गए है अर्थात् नई व्यवस्था में पंचायती राज संस्थाएं राज्य सरकारों तथा प्रशासनिक अधिकारियों के अधीन ही हैं।

इन कमजोरियों के बावजूद भी यह महत्वपूर्ण है कि पंचायती राज अब संवैधानिक रूप से स्थापित है तथा इसकी शक्तियाँ तथा कार्यकाल सुनिश्चित हैं। इसने जन साधारण में आशाएं तथा आकांक्षायें भी जगाई है। इनके आधार पर लोग

अपने अधिकारों के लिए संगठित हो सकते हैं तथा सरकारों को उत्तरदायित्व के लिए बाध्य कर सकते हैं।

सफलता के लिए शर्ते (Conditions for Success)

पंचायती राज संस्थाओं तथा इनके साथ ही शहरी क्षेत्रों में नगरपालिकाओं को संविधान में स्थान प्राप्त होने से स्थानीय स्तर पर स्वशासन तथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए महत्वपूर्ण आधार स्थापित हुआ है। लेकिन किसी भी व्यवस्था की सफलता मात्र संस्थाओं अथवा कानूनों पर ही निर्भर नहीं करती इसके लिए आवश्यक वातावरण, राजनैतिक इच्छा तथा जनता की जागरूकता पर निर्भर करता है। इस संदर्भ में पंचायती राज व्यवस्था की सफलता के लिए आवश्यक शर्ते निम्न मानी जा सकती है :

1. पंचायती राज की मात्र स्थानीय शासन तथा नागरिक सुविधा को प्रदान करने वाली संस्थाओं के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यह आर्थिक सामाजिक विकास तथा परिवर्तन के लिए नियोजन, कार्यवाही तथा वातावरण बनाने के उचित साधन के रूप में मानी जानी चाहिए।
2. पंचायती राज संस्थाओं में समाज के विभिन्न वर्गो की भागीदारी तथा सहयोग सुनिश्चित तथा व्यवहारिक बनाना आवश्यक है। आरक्षण केवल दिखावा तथा छल बन कर न रह जाए इसके लिए आवश्यक कदम उठाने आवश्यक है।
3. आम व्यक्ति की समझ, क्षमता तथा भागीदारी की इच्छा पर विश्वास किया जाना चाहिए। केन्द्र तथा राज्य स्तर के राजनीतिज्ञों तथा अधिकारियों को अपनी स्थिति, शिक्षा अथवा प्रशिक्षण के आधार में ग्रामीण जनों की क्षमता तथा अनुभव की अवहेलना नहीं करनी चाहिए।
4. पंचायती राज संस्थाओं के चुने हुए सदस्यों तथा उनके साथ काम करने वाले अधिकारियों को समय–समय पर उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इसमें उन्हें इन सदस्यों के महत्व, भूमिका, कार्यप्रणाली, अधिकारों तथा संसाधन एकत्रित करने के तरीकों के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए।

6. पंचायती राज व्यवस्था चलाने के लिए तथा देश के विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विकासीय लोक प्रशासन अत्यन्त अनिवार्य हैं देश में इसकी स्थापना तथा निर्माण को ओर अधिक नहीं टाला जाना चाहिए।

4.8.4 निष्कर्ष

उपरलिखित शर्तो को पूरा करने के लिए केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों गैर–सरकारी संगठनों, प्रशासन, समाचार पत्रों, रेडियों, दूरदर्शन तथा बुद्धिजीवियों सभी के सहयोग की आवश्यकता है। पंचायती राज की सफलता के लिए ग्रामीण स्तर पर स्थानीय स्वशासन की सक्रियता के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है अपितु यह देश में लोकतंत्र के विकास के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रशिक्षण स्थल तथा राजनीतिक समाजीकरण के लिए उचित साधन के रूप में लगभग अनिवार्य है। इसलिए आवश्यक है कि पहले की तरह पंचायती राज को ग्रामीण स्तर पर सत्ता संघर्ष का अखाड़ा और विशिष्ट वर्गो के हाथ का खिलौना न बनने दे तथा देश में उचित लोकतांत्रिक वातावरण के विकास के लिए इसका सम्भावित उपयोग करें।

4.8.5 मुख्य शब्दावली

- ग्राम सभा : ये एक तरह से गाँव की पंचायत का विधानमण्डल होती है जिसमें प्रत्येक मतदाता सदस्य होता है।
- शक्ति विकेन्द्रीकरण : शासन की शक्तियों का कुछ हाथों में केन्द्रित न होकर उनका विभिन्न स्तरों पर लोकतांत्रिक संस्थाओं में बंटवारा होना।

4.8.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. 73वें संवैधानिक संशोधन के बाद भारत में पंचायती राज व्यवस्था पर एक नोट लिखिए।
2. भारत में पंचायती राज संस्थाओं के विकास की विवेचना कीजिए।
3. भारत में पंचायती राज संस्था की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।
4. भारतीय संविधान में 73वें संशोधन के अन्तर्गत पंचायती राज के कार्यकरण का आलोचनात्मक आंकलन तथा मूल्यांकन कीजिए।

5. भारत में पंचायती राज की कार्य–प्रणाली का विवेचन करें।
6. भारत में पंचायत राज प्रणाली का महत्त्व बताएँ।
7. पंचायती राज का गठन कितने स्तरों पर किया गया है।
8. 73वां संवैधानिक संशोधन कब किया गया ?
9. भारत में पंचायती राज की समस्याएँ बताएँ ?
10. पंचायती राज संस्थाओं की कार्य–प्रणाली के प्रमुख दोषों का वर्णन कीजिए ?

4.8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967

- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012